ॐ अर्हम्

हमारा इतिहास

*

मूल लेखिका

विदुषी महासती श्री चन्दनकुमारी जी म०

*

सम्पादक

आचार्य श्री अमृतकुमार

अध्यापक

एस एस सुबोध जैन कॉलेज, जयपुर

*

प्रकाशक

श्री तिलोक रत्न स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड

पाथर्डी (अहमदनगर)

वीर सम्वत् २४९१] [मूल्य १.५०

प्राक्कथन

इतिहास बीती हुई महत्त्वपूर्ण घटनाम्रो म्रौर चली म्राती हुई विशिष्ट परम्पराम्रो का यथार्थ चित्रण है। कहना न होगा कि व्यष्टि की म्रपेक्षा समष्टि को म्रधिक महत्त्व देने के कारण भारतीय परम्परा मे इतिहास-लेखन की प्रवृत्ति नही रही। इतिहास लिखना तो दूर रहा, इतिहास लेखन के विविध स्रोत भी यहा सुरक्षित नही रहे। म्रपने बारे मे किसी म्राचार्य, मनीषी या दार्शनिक का कुछ कहना बडप्पन के विरुद्ध माना गया। यही कारण है कि राष्ट्रीय जीवन को प्रभावित करने वाले व्यक्तित्व के बारे मे भी हम बहुत कम जान सके हैं म्रौर जो कुछ जानते भी हैं, वह विसगतियो से खाली नही। वैसे इतिहास-लेखन की परम्परा म्रत्यन्त प्राचीन है, बीच मे यह परम्परा कुछ लुप्तसी हो गई। सतरहवी शताब्दी मे इतिहास-लेखन का व्यवस्थित कार्य मुगलो ने पुन म्रारम्भ किया। स्वयं बादशाह म्रकबर ने म्रपने राज्य में इतिहास लेखन का एक म्रलग ही विभाग खोला। तभी से म्रन्य रियासतो एव स्वतत्र राज्यो मे प्रतिस्पर्धा की भावना से इतिहास लेखन के स्फुट-प्रयत्न होते रहे। मुगल शासक इतिहास प्रेमी थे। वे स्वय "नामा" सज्ञक ग्रथो के रूप मे म्रपना म्रात्म-चरित्र लिखा करते थे। उन्ही को म्राधार बनाकर बाद में मध्यकालीन इतिहास लिखे गये।

इस प्रकार जो इतिहास लिखे जाते थे, उनमे राजनैतिक परिवर्तनो म्रौर घटनाम्रो को ही प्रमुखता दी जाती थी। सामाजिक परिवर्तनो म्रौर धार्मिक म्रान्दोलनो को दृष्टि मे रखकर सास्कृतिक इतिहास-लेखन का कार्य प्राय- उपेक्षित ही रहा। किसी भी राष्ट्र का सच्चा इतिहास वहाँ के शासको की कार्य-प्रणालियो तक ही सीमित नही है। उसमे सामान्य जनता

की मनोवृत्तियो का प्रतिपादन भी अपेक्षित है। विभिन्न स्रोतो से पडने वाले प्रभावो और उनको आत्मसात् करने की धारण-शक्ति का विवेचन भी अभीष्ट है। क्योंकि इतिहास केवलमात्र गडे हुए मुर्दों को उखाडने का कार्य नही है। उसके अन्तस मे भावी समाज-रचना की कई निर्माणकारी प्रवृत्तियाँ भी काम करती हैं। स्वतन्त्रता के बाद इस दिशा मे कई प्रयत्न हुए है।

सस्कृति के निर्माण एव विकास मे धर्म का बहुत बडा हाथ रहा है। कर्ममूलक सस्कृति और पुरुषार्थवाद की प्रतिष्ठा में जैन-धर्म की देन उल्लेखनीय है। जैनधर्म के सिद्धान्त विज्ञान सम्मत होने के कारण सार्वजनीन हैं, पर ऐतिहासिक क्रम मे उनको पूर्ण प्रतिष्ठा नही मिली। जैन-इतिहास का सर्वमान्य रूप भी सामने नही आया। इस दिशा मे जो भी प्रयत्न हुए, वे खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति और मतवाद के आग्रह से अछूते न रह सके। यह परम प्रसन्नता और सन्तोष की बात है कि विदुषी सती श्री सुमतिकु वर जी म० की सुयोग्य शिष्या श्री चन्दनकुमारी जी म ने प्रस्तुत ग्रथ की सामग्री का सकलन बहुत ही सावधानी से किया है।

यह सम्पूर्ण इतिहास २४६ पृष्ठो के आठ प्रकरणो मे विभाजित है। प्रथम प्रकरण (पृष्ठ १ से १६) मे युगादिदेव भगवान् ऋषभदेव और उनके पूर्व के भारत का सामान्य-परिचय दिया गया है। द्वितीय प्रकरण (पृ० १७ से ४६) में ऋषभदेव को छोडकर अवशिष्ट २३ तीर्थङ्करो की पिता-माता, जन्म एव निर्वाण स्थान के क्रम से परिचय-तालिका देकर पाच तीर्थकरो-शान्तिनाथ, मल्लिनाथ, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी-का विशेष परिचय दिया गया है। इसी प्रकरण मे महावीर स्वामी की शिष्य-परम्परा के क्रम मे होने वाले गौतम-गणधर सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी, प्रभवस्वामी, शय्यभवाचार्य, यशोभद्र और सभूतिविजय का सक्षिप्त परिचय है। अब तक श्रमण-परम्परा अविच्छिन्न रूप से चली आ रही थी। तृतीय प्रकरण (४७ से ६८) मे अन्तिम श्रुतकेवली

भद्रबाहु स्वामी से लेकर देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण तक की परम्परा का वर्णन किया है। चतुर्थ प्रकरण (पृ० ६६ से ८६) मे आचार्य सिद्ध-सेन दिवाकर से लेकर आचार्य हेमचन्द्र जी तक का सप्रमाण वर्णन किया है। पाँचवें प्रकरण (पृ० ८७ से ११०) मे लोकाशाह की धार्मिक-क्रांति, लोकागच्छ की स्थापना, उसकी समाचारी, उसकी परम्परा आदि का वर्णन दिया गया है। छठे प्रकरण (पृ० १११ से १६५) मे धार्मिक विकृति को दूर करने वाले पाँच क्रियोद्धारको—पूज्य श्री जीवराजजी म०, पूज्य श्री लवजीऋषिजी म०, पूज्य श्री धर्मसिहजी म०, पूज्य श्री धर्मदासजी म०, और पूज्य श्री हरजीऋषिजी म० से सम्बन्धित है। सातवें प्रकरण (पृ० १६६ से २२६) मे इन पच क्रियोद्धारको की परम्परा मे होने वाले अधुनातन प्रमुख सन्तो का परिचय दिया गया है। अन्तिम आठवें प्रकरण (पृ० २२७ से २४६) मे अजमेर सम्मेलन से लेकर वर्तमान श्रमण सघ की स्थापना आदि का आधुनिक समय तक का वर्णन किया गया है।

यह ग्रथ श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी के सिद्धान्त विशारद के स्तर वाले छात्रो के लिए तैयार किया गया है। स्तरीय पाठ्य पुस्तक के अनुरूप ही इसमे भाव-भाषा का सौष्ठव, प्रवाह और प्राजल रूप देखने को मिलता है। आचार्यों के परिचय-क्रम मे उनके वश माता-पिता, दीक्षा, साधना-काल, स्वर्गवास, कुल आयु, दीक्षा-आयु, आचार्य-काल एव सयमी जीवन की विशिष्ट घटनाओ का उल्लेख किया गया है। स्पष्ट भावाभिव्यक्ति के लिए प्रत्येक प्रकरण को कई उपशीर्षको मे विभक्त किया गया है।

ग्रथ का नामकरण 'हमारा इतिहास, व्यापक परिवेश का सूचक है। इसमें अपने आपको जानने, पहचानने एव पूर्वजो के उदात्त-आदर्शो को आत्मसात् करने की ध्वनि है। इसको पढकर अन्य धर्मावलम्बी भी जैन-धर्म की ऐतिहासिक, सास्कृतिक एवं दार्शनिक परम्परा से परिचित हो

सकते है। जैन-धर्मानुयायियो के लिए तो यह अपना इतिहास है ही।

इतिहास-लेखन के लिए तटस्थ वृत्ति अनिवार्य शर्त है। पर इस शर्त का पूरा होना असभव तो नही, कठिन अवश्य है। जब व्यावसायिक-दृष्टि से इतिहास लिखा जाता है, तब इतिहासकार निरपेक्ष बनकर नही रह सकता। यह सौभाग्य की बात है कि इस ग्रन्थ की लेखिका स्वय एक विदुषी सती हैं। वे सासारिक प्रपचो से दूर एव व्यावसायिक बुद्धि से परे है। इसीलिए इस ग्र थ मे विवादास्पद तथ्यो का सामान्य रूप से उल्लेख तो किया गया है, पर उसके खण्डन-मण्डन मे व्यर्थ का विवाद नही पैदा किया गया है। समन्वयात्मक ढग से अपनी बात कह दी गई है।

जैन सत एव सतियो का दैनन्दिन कार्य है, स्वपर कल्याण में निरत रहना। तथ्य निरूपण के साथ-साथ जो उपदेश देने की वृत्ति कही-कही दिखाई पडती है, वह ऐतिहासिक तथ्यो को और भी अधिक चमत्कृत करती है। प्रथम प्रकरण मे ब्राह्मी सुन्दरी के प्रतिबोध से बाहुबलि के मान-भग होने का जो प्रसग वर्णित है, ठीक उसके बाद विनय के माहात्म्य के सम्बन्ध मे एक पूरा अनुच्छेद लिखा गया है, जो इतिहास के इसी तथ्य को स्पष्ट करता है।

प्रस्तुत ग्रथ का सम्पादन तथा व्यवस्थित लेखन-कार्य आचार्य श्री अमृतकुमार जी ने किया है। यही कारण है कि इतिहास जैसा अतीत का विषय बडा ही हृदयग्राही और सरस होकर पाठक के सन्मुख उपस्थित हो सका है। सम्पादन-कार्य जितनी कुशलता से किया गया है, यदि प्रूफ सशोधन का भी ऐसा ही ध्यान रखा जाता तो सभव है ग्रन्थ में रही हुई अशुद्धिया न रह पाती। फिर भी ये अशुद्धिया ग्रन्थ के महत्त्व को कम नही करती। इतिहास जैसे नीरस विषय को सरस बनाकर प्रस्तुत करना

साधारण काम नही है। जिसमे प्रसार भाषा-क्षमता, तथ्यो की सूक्ष्म पकड और अन्तरग में पैठने की अद्भुत शक्ति होती है वही इस दुष्कर कार्य मे सफल हो सकता है, कहना न होगा कि सम्पादक महोदय को इस गुरुतर कार्य में पूर्ण सफलता मिली है।

इतिहास लेखन में दो कठिनाइया सदा सामने रहती है– एक तो इतिहास की विलुप्त परम्पराओ को जोडकर उन्हे सर्वमान्य बना देने की तडप और दूसरे छात्रो को सहजभाव से इतिहास जैसे गूढ विषय का परिचय करा देने का उत्साह। दोनो की कहाँ सगति ? एक में शोध मस्तिष्क को बार-बार कुरेदने की आवश्यकता और दूसरे मे गहन तथा जटिल विषय को सरल-सुगम बनाकर प्रस्तुत करने की समस्या। पर मुझे यह कहते हुए गौरव का अनुभव होता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ में दोनो भिन्न लक्षित होने वाले बिन्दुओ को बडी तत्परता और सजगता के साथ मिलाने का प्रयत्न किया है। यही कारण है कि इस ग्रन्थ मे एक ओर शोध मस्तिष्क की अन्तरग पकड है तो दूसरी ओर कथाकार की सहज वृत्ति।

आशा है, विद्वानो और छात्रो को यह ग्रथ परितोषकर सिद्ध होगा।

२७ अक्तूबर, १९६४
हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

डॉ० नरेन्द्र भानावत
एम ए पी एच डी
साहित्य रत्न,

अपनी बात

श्रमण संस्कृति का इतिहास, त्याग और तपस्या का इतिहास है। यह संस्कृति आत्म-विकास की संस्कृति है। अतीत के अनंतकाल से यह संस्कृति समस्त प्राणीजगत् को आत्म-कल्याण का सन्देश देती आ रही है। श्रमण संस्कृति, आत्म-श्रम पर आधारित है। जो प्राणी जितना भी वास्तविक आत्म-श्रम करता है, उसका उतना ही आत्म-विकास हो जाता है। हमारा-श्रमण इतिहास इस सत्य का स्पष्ट प्रमाण है। इस इतिहास के अध्ययन से जीवन को विकास की प्रेरणा मिलती है, जीवन को गति मिलती है। अत जीवन-निर्माण और विकास के लिए हमे अपनी संस्कृति के इतिहास का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। प्रस्तुत इतिहास इस उद्देश्य की पूर्ति का एक प्रारंभिक कदम है।

'हमारा इतिहास' की मूल सामग्री—परमविदुषी महासती श्री—सुमति कुंवर जी महाराज की विदुषी शिष्या श्री चन्दनकुमारी जी महाराज ने संकलित की है। इसके मूल मे उनकी अपनी प्रेरणा है और उनका अपना संकलन श्रम है। यह संकलन गत चैत्र वैशाख मास मे मुझे तथा जैन जगत् के दार्शनिक विद्वान् कविरत्न उपाध्याय श्री अमरचन्दजी महाराज को आमूल-चूल दिखाया गया। परिणामत निर्णय हुआ कि इसे स्वतंत्र ऐतिहासिक रूप दिया जाय। तभी यह संकलन-श्रम सफल होगा। श्रद्धेय आचार्य प्रवर-परमाराध्य श्री श्री १००८ श्री आनन्दऋषि जी म० की कृपा से यह कार्य मुझे सौंपा गया। सम्पादन तथा लेखन-कार्य आरम्भ हुआ और सीमित काल में कार्य समाप्त हो गया।

प्रस्तुत इतिहास में पूर्व-प्रकाशित अनेक इतिहासो से सहायता ली गई है। विश्वधर्म सम्मेलन के प्रेरक पण्डित श्री सुशीलकुमार जी महाराज के

नहीं करतो। २५५८

इतिहास का सहयोग विशेष रूप से सहायक सिद्ध हुआ है, इसके लिए हम उनके विशेष रूप से आभारी हैं। जहाँ तक हो सका है स्थानकवासी श्रमण-परम्परा के सभी तथ्यो को इतिहास मे लेने का प्रयत्न किया गया है, फिर भी अल्पज्ञ होने के नाते कुछ रह गया हो अथवा मान्यता विरुद्ध लिखा गया हो तो हम करबद्ध क्षमा प्रार्थी हैं।

प्रूफ सशोधन की असुविधा के कारण यत्र-तत्र कुछ भूलें रह गई है। हमे आशा है गुणग्राही पाठक उन्हे सुधार कर पढने का प्रयत्न करेंगे।

इतिहास सम्पादन और लेखन का कार्य बडा ही दुरूह होता है। उसे पूर्ण करना मुझ जैसे व्यक्ति के वश की बात नही थी। फिर भी आचार्य श्री जी की महती कृपा के सहारे कार्य सानन्द सम्पन्न हो गया। अत यह स्पष्ट है कि इसमे मेरा कुछ भी नही है। इसमे आचार्य श्री जी की प्रेरणा है, उन्ही का आशीर्वाद है और उन्ही का अनथक सहयोग है। अत सब कुछ उन्ही का है और फिर वर्तमान स्थानकवासी श्रमण संघ के वे ही एक मात्र अधिनायक हैं। अत उन्ही की वस्तु उन्ही के श्री चरणों मे अर्पित करते हुए मुझे अत्यत आनन्द हो रहा है।

त्वदीय वस्तु आचार्य ! तुभ्यमेव समर्पये

एस. एस. जैन सुबोध कालेज
जयपुर
६-११-६४

विनीत
आ. अमृतकुमार

अपनी बात

श्रमण संस्कृति का इतिहास, त्याग और तपस्या का इतिहास है। यह संस्कृति आत्म-विकास की संस्कृति है। अतीत के अनंतकाल से यह संस्कृति समस्त प्राणीजगत् को आत्म-कल्याण का सन्देश देती आ रही है। श्रमण संस्कृति, आत्म-श्रम पर आधारित है। जो प्राणी जितना भी वास्तविक आत्म-श्रम करता है, उसका उतना ही आत्म-विकास हो जाता है। हमारा-श्रमण इतिहास इस सत्य का स्पष्ट प्रमाण है। इस इतिहास के अध्ययन से जीवन को विकास की प्रेरणा मिलती है, जीवन को गति मिलती है। अत जीवन-निर्माण और विकास के लिए हमे अपनी संस्कृति के इतिहास का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। प्रस्तुत इतिहास इस उद्देश्य की पूर्ति का एक प्रारंभिक कदम है।

'हमारा इतिहास' की मूल सामग्री—परमविदुषी महासती श्री—सुमति कु वर जी महाराज की विदुषी शिष्या श्री चन्दनकुमारी जी महाराज ने संकलित की है। इसके मूल मे उनकी अपनी प्रेरणा है और उनका अपना संकलन श्रम है। यह संकलन गत चैत्र वैशाख मास मे मुझे तथा जैन जगत् के दार्शनिक विद्वान् कविरत्न उपाध्याय श्री अमरचन्दजी महाराज को आमूल-चूल दिखाया गया। परिणामत निर्णय हुआ कि इसे स्वतन्त्र ऐतिहासिक रूप दिया जाय। तभी यह संकलन-श्रम सफल होगा। श्रद्धेय आचार्य प्रवर-परमाराध्य श्री श्री १००८ श्री आनन्दऋषि जी म० की कृपा से यह कार्य मुझे सौंपा गया। सम्पादन तथा लेखन-कार्य आरम्भ हुआ और सीमित काल मे कार्य समाप्त हो गया।

प्रस्तुत इतिहास में पूर्व-प्रकाशित अनेक इतिहासो से सहायता ली गई है। विश्वधर्म सम्मेलन के प्रेरक पण्डित श्री सुशीलकुमार जी महाराज के

इतिहास का सहयोग विशेष रूप से सहायक सिद्ध हुआ है, इसके लिए हम उनके विशेष रूप से आभारी हैं। जहाँ तक हो सका है स्थानकवासी श्रमण-परम्परा के सभी तथ्यो को इतिहास मे लेने का प्रयत्न किया गया है, फिर भी अल्पज्ञ होने के नाते कुछ रह गया हो अथवा मान्यता विरुद्ध लिखा गया हो तो हम करबद्ध क्षमा प्रार्थी हैं।

प्रूफ संशोधन की असुविधा के कारण यत्र-तत्र कुछ भूलें रह गई है। हमे आशा है गुणग्राही पाठक उन्हे सुधार कर पढने का प्रयत्न करेंगे।

इतिहास सम्पादन और लेखन का कार्य बडा ही दुरूह होता है। उसे पूर्ण करना मुझ जैसे व्यक्ति के वश की बात नही थी। फिर भी आचार्य श्री जी की महती कृपा के सहारे कार्य सानन्द सम्पन्न हो गया। अत यह स्पष्ट है कि इसमें मेरा कुछ भी नही है। इसमे आचार्य श्री जी की प्रेरणा है, उन्ही का आशीर्वाद है और उन्ही का अनथक सहयोग है। अत सब कुछ उन्ही का है और फिर वर्तमान स्थानकवासी श्रमण संघ के वे ही एक मात्र अधिनायक हैं। अत उन्ही की वस्तु उन्ही के श्री चरणों में अर्पित करते हुए मुझे अत्यत आनन्द हो रहा है।

त्वदीयं वस्तु आचार्य ! तुभ्यमेव समर्पये

एस. एस. जैन सुबोध कालेज
जयपुर
९-११-६४

विनीत
आ. अमृतकुमार

प्रकाशकीय

श्री तिलोकरत्न स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी प्रतिष्ठान अपने आरम्भ काल से ही सत्साहित्य के प्रकाशन का प्रयत्न करता चला आरहा है। अबतक उसके सैकडो प्रकाशन जनता में आ चुके हैं। लाखो की सख्या मे जनता उनका लाभ उठा चुकी है। धार्मिक वृत्ति की सस्था होने के कारण यह प्रतिष्ठान सदा से धर्मानुरागी बन्धुओ मे सत् साहित्य का प्रचार तथा प्रसार करती आरही है। प्रस्तुत ऐतिहासिक ग्र थ "हमारा इतिहास" भी इसी सस्था के द्वारा प्रकाशित करते हुए हमे अत्यत हर्ष का अनुभव हो रहा है। हमे आशा ही नही पूर्ण विश्वास है कि इतिहास प्रेमी जनता को इस परिश्रम साध्य ग्र थ के पठन पाठन से अवश्य ही सन्तोष होगा। अपने स्थानकवासी समाज मे अबतक अनेक ऐतिहासिक ग्र थ प्रकाशित हो चुके है। उनसे किसी न किसी प्रकार समाज को कुछ न कुछ मार्ग दर्शन अवश्य ही मिला है। फिर भी कुछ ऐसे ऐतिहासिक तथ्य हैं जो आज तक प्रकाश में नही आ पाये हैं। इस ग्र थ मे उन्हें यथा साध्य स्थान देने का सत् प्रयत्न किया गया है। ग्रथ की मूल निर्देशिका महासती परम पण्डिता श्री सुमति कु वर जी महाराज की सुशिष्या महासती श्री चन्दन कुमारी जी महाराज तथा सम्पादक आचार्य अमृत कुमार जी दोनो ही धन्यवाद के पात्र हैं। जिनके परिश्रम से यह ग्रथ हम समाज के सन्मुख प्रस्तुत करने मे सफल हो सके हैं।

दिनाक ३–१२–६२ गुरुवार के दिन घाटकोपर (बम्बई) में श्रमण-सघीय परमाराध्य आचार्यश्री श्री १००८ श्री आनन्द ऋषिजी महाराज की आज्ञानुवर्तिनी परमोपकारिणी महासती श्री रम्भाकु वरजी महाराज पण्डिता महासती श्री सुमतिकु वरजी महाराज के नेश्राय में लोनावला निवासी श्री भेरूलालजी गाधी की सुपुत्री वैराग्यवती बालब्रह्मचारिणी श्री विमलाकुमारी (सुयशा कुमारीजी म०) तथा अमलनेर (अहमदनगर) निवासी श्री भागचन्द जी दूगड की सुपुत्री तथा राजणगाव (पूना) निवासी श्रीमान् रूपचन्द जी नाहर की पुत्रवधु वैराग्यवती श्री कुसुम–

कुमारीजी (श्रद्धा कुमारी जी म०) तथा विदुषी महासती जी श्री अमृत कु वर जी महाराज के नेश्राय में बम्बई निवासी श्रीमान् हीराचन्द देव-चन्द जी की पुत्रवधू वैराग्यवती श्री लीलाबहन (सुदर्शना कुमारी जी म०) इन तीनो रत्नत्रय साधिकाओ के पवित्र दीक्षा प्रसग की स्मृति मे ग्र थ प्रकाशनार्थं कुछ आर्थिक सहयोग दिया गया था। उस पुनीत अवसर पर पुनीतकार्य के लिए दिए गये द्रव्य को सम्मिलित करके हमारा इतिहास नामक ग्र थ उन्ही की स्मृति मे प्रकाशित किया जा रहा है। एतदर्थ दीक्षार्थिनियो के तीनो परिवारो को धन्यवाद देना हम अपना कर्तव्य सम-भते हैं। दीक्षा के इस शुभ प्रसग पर मत्री मुनि श्री हीरालाल जी म० स्थविर मुनि श्री डू गरशीजी म०, विनय सपन्ना महासती श्री विनयकु वर जी म०, शान्तस्वभावी शास्त्ररसिका श्री ताराबाई जी म०, विदुषी महा-सतीजी श्री लीलाबाई जी म० तथा विदुषी श्री शारदाबाई जी म० आदि ६७ मुनिराज और महासतिया जी उपस्थित थी। साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध श्री सघ की विशाल उपस्थिति में यह दीक्षा रूप मगलकार्य सानन्द सम्पन्न हुआ है। यह निवेदन करते हुए प्रमोद होता है।

प्रस्तुत इतिहास के लेखन कार्य मे जयपुर में विराजमान कविवर्य उपाध्याय श्री अमरचन्द्रजी म०, भोपालगढ मे चातुर्मास स्थित उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म०, विजयनगर में विराजमान प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी म०, कोटडा (ब्यावर) मे विराजमान् प० मुनि श्री मिश्रीमलजी महाराज ब्यावर मे चातुर्मास स्थित प्रवर्तक पं० मुनि श्री अम्बालालजी महाराज पिपाड मे विराजित उपप्रवर्तक पं० मुनि श्री पुष्कर मुनि जी म० तथा भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म० आदि सन्त पुरुषो की सेवा मे उपस्थित होकर ऐतिहासिक सामग्री के विषय मे अनेक उपयोगी परामर्श लिए गए हैं, एतदर्थ इन सभी महा पुरुषो का भी हम शतश उपकार मानते हैं।

मन्त्री—

श्री तिलोक रत्न स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी

प्रकाशकीय

श्री तिलोकरत्न स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी प्रतिष्ठान अपने आरम्भ काल से ही सत्साहित्य के प्रकाशन का प्रयत्न करता चला आरहा है। अबतक उसके सैकडो प्रकाशन जनता में आ चुके हैं। लाखो की सख्या मे जनता उनका लाभ उठा चुकी है। धार्मिक वृत्ति की सस्था होने के कारण यह प्रतिष्ठान सदा से धर्मानुरागी बन्धुओ मे सत् साहित्य का प्रचार तथा प्रसार करती आरही है। प्रस्तुत ऐतिहासिक ग्रंथ "हमारा इतिहास" भी इसी सस्था के द्वारा प्रकाशित करते हुए हमे अत्यत हर्ष का अनुभव हो रहा है। हमे आशा ही नही पूर्ण विश्वास है कि इतिहास प्रेमी जनता को इस परिश्रम साध्य ग्र थ के पठन पाठन से अवश्य ही सन्तोष होगा। अपने स्थानकवासी समाज मे अबतक अनेक ऐतिहासिक ग्र थ प्रकाशित हो चुके है। उनसे किसी न किसी प्रकार समाज को कुछ न कुछ मार्ग दर्शन अवश्य ही मिला है। फिर भी कुछ ऐसे ऐतिहासिक तथ्य हैं जो आज तक प्रकाश में नही आ पाये हैं। इस ग्र थ मे उन्हें यथा साध्य स्थान देने का सत् प्रयत्न किया गया है। ग्रथ की मूल निर्देशिका महासती परम पण्डिता श्री सुमति कु वर जी महाराज की सुशिष्या महासती श्री चन्दन कुमारी जी महाराज तथा सम्पादक आचार्य अमृत कुमार जी दोनो ही धन्यवाद के पात्र हैं। जिनके परिश्रम से यह ग्रथ हम समाज क सन्मुख प्रस्तुत करने मे सफल हो सके हैं।

दिनाक ३-१२-६२ गुरुवार के दिन घाटकोपर (बम्बई) में श्रमणसघीय परमाराध्य आचार्यश्री श्री १००८ श्री आनन्द ऋषिजी महाराज की आज्ञानुवर्तिनी परमोपकारिणी महासती श्री रम्भाकु वरजी महाराज पण्डिता महासती श्री सुमतिकु वरजी महाराज के नेश्राय में लोनावला निवासी श्री भेरूलालजी गाधी की सुपुत्री वैराग्यवती बालब्रह्मचारिणी श्री विमलाकुमारी (सुयशा कुमारीजी म०) तथा अमलनेर (अहमदनगर) निवासी श्री भागचन्द जी दूगड की सुपुत्री तथा राजणगाव (पूना) निवासी श्रीमान् रूपचन्द जी नाहर की पुत्रवधु वैराग्यवती श्री कुसुम–

कुमारोजी (श्रद्धा कुमारी जी म०) तथा विदुषी महासती जी श्री अमृत कु वर जी महाराज के नेश्राय में बम्बई निवासी श्रीमान् हीराचन्द देव-चन्द जी की पुत्रवधू वैराग्यवती श्री लीलाबहन (सुदर्शना कुमारी जी म०) इन तीनो रत्नत्रय साधिकाओ के पवित्र दीक्षा प्रसग की स्मृति मे ग्रंथ प्रकाशनार्थ कुछ आर्थिक सहयोग दिया गया था। उस पुनीत अवसर पर पुनीतकार्य के लिए दिए गये द्रव्य को सम्मिलित करके हमारा इतिहास नामक ग्र थ उन्ही की स्मृति मे प्रकाशित किया जा रहा है। एतदर्थ दीक्षार्थिनियो के तीनो परिवारो को धन्यवाद देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। दीक्षा के इस शुभ प्रसग पर मन्त्री मुनि श्री हीरालाल जी म० स्थविर मुनि श्री डू गरशीजी म०, विनय सपन्ना महासती श्री विनयकु वर जी म०, शान्तस्वभावी शास्त्ररसिका श्री ताराबाई जी म०, विदुषी महासतीजी श्री लीलाबाई जी म० तथा विदुषी श्री शारदाबाई जी म० आदि ६७ मुनिराज और महासतिया जी उपस्थित थी। साधु—साध्वी श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध श्री सघ की विशाल उपस्थिति मे यह दीक्षा रूप मगलकार्य सानन्द सम्पन्न हुआ है। यह निवेदन करते हुए प्रमोद होता है।

प्रस्तुत इतिहास के लेखन कार्य मे जयपुर में विराजमान कविवर्य उपाध्याय श्री अमरचन्दजी म०, भोपालगढ मे चातुर्मास स्थित उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म०, विजयनगर मे विराजमान प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी म०, कोटडा (ब्यावर) में विराजमान् प० मुनि श्री मिश्रीमलजी महाराज ब्यावर मे चातुर्मास स्थित प्रवर्तक प० मुनि श्री अम्बालालजी महाराज पिपाड मे विराजित उपप्रवर्तक प० मुनि श्री पुष्कर मुनि जी म० तथा भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म० आदि सन्त पुरुषो की सेवा मे उपस्थित होकर ऐतिहासिक सामग्री के विषय मे अनेक उपयोगी परामर्श लिए गए हैं, एतदर्थ इन सभी महा पुरुषो का भी हम शतश उपकार मानते हैं।

मन्त्री—

श्री तिलोक रत्न स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी

समर्पण

इन परिमित शब्दों में अपरिमित श्रद्धा सजोकर अपने
पूज्य तपोधन आचार्य श्री आनन्द ऋषिजी
महाराज के चरणों में इस लघुकृति का
सादर समर्पण करती हूँ—

विनीताणु
साध्वी चन्दना

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ

श्री वीतरागाय नम

हमारा इतिहास

प्रकरण-पहला

इतिहास क्या है

इतिहास अपने युग का प्रतिनिधि होता है। वह अतीत की स्मृतियो को वर्तमान मे प्रस्तुत करता है। उसे न तो किसी के प्रति मोह होता है और न किसी के प्रति घृणा होती है। जो जैसा है उसे उसी रूप मे प्रस्तुत करना इतिहास का मुख्य कार्य है। इतिहास शब्द का "ऐसा ही था" यह अर्थ इसीलिए युक्ति सगत माना गया है। अतीत की कडियो को हमारे जीवन के साथ जोडना ही इतिहास का मुख्य उद्देश्य है। आज हमारे जीवन मे जो भी ज्ञान-विज्ञान आदि के सद्गुण पाये जाते है वे सब अतीत के महापुरुषो की ही अनुपम देन है। पूर्वज पुरुषो के आचार-विचार सस्कार तथा सद्गुणो से ही हमारे जीवन को उन्नति की प्रेरणा मिलती है। सस्कार परम्परा की यह कडी युगो-युगो से हमारी प्रत्येक पीढी को एक दूसरे के साथ जोडती चली आ रही है। पूर्वज परम्परा का ज्ञान मनुष्य को भविष्य निर्माण की

सत्प्रेरणा प्रदान करता है। हमारा इतिहास, हमारी सभ्यता, और हमारी सस्कृति का अक्षयकोष है ।

हमारी संस्कृति

भारत सदा से संस्कृतियो की रगस्थली रहा है। इन सभो सस्कृतियो मे श्रमण सस्कृति का अपना एक प्रमुख स्थान है। असत् पर सत् की विजय श्रमण सस्कृति का लक्ष्य है। श्रमण सस्कृति--अध्यात्म-सस्कृति है। यही एक ऐसी सस्कृति है जो मानव को पशुता की ओर जाने से रोकती है, और उसे मानवता की ओर ले जाती है। अध्यात्म सस्कृति का मूलस्वर त्याग है। भौतिक सस्कृति सब कुछ बटोर लेने मे सफलता मानती है परन्तु अध्यात्म-सस्कृति सब कुछ त्यागकर अकिंचन बनने मे जीवन की सफलता मानती है। भारतीय अध्यात्म सस्कृति को आधारशिला पर ही—सभ्यता और समाज का महाप्रसाद खडा है। इस अध्यात्म सस्कृति के उन्नायक श्रमण-महापुरुष सजग प्रहरी के रूप मे माने गये है क्योंकि अध्यात्म श्रम के द्वारा ही वे अपने जीवन का निर्माण करते हैं। वे ही इस सस्कृति के सरक्षक, उद्धारक तथा साहसिक धर्म नेता है। हमारा प्राचीन इतिहास इन महापुरुषो की गौरव गाथाओ से भरा पडा है। भारत का संत समाज सदासदा से अपने त्याग, तप सयम आदि गुणो मे अग्रगी रहा है। वह समाज अथवा सम्प्रदाय के तुच्छ बन्धनो मे कभी अवरुद्ध नही रहा हैं। युगो-युगो मे उसने अपने समुज्ज्वल आलोक से समस्त विश्व को आलोकित किया हैं। हमारा प्राचीन इतिहास इस बात का सजीव प्रमाण है। अध्यात्म सस्कृति के उत्थान मे श्रमणो के समान ही हमारी विदुषी श्रमणी वर्ग का भी विशेष हाथ रहा है।

भारतवर्ष

भारतवर्ष हमारी जन्मभूमि है। जन्मभूमि को स्वर्ग से भी अधिक माना गया है। 'भारत' के नामकरण के विषय मे ऐतिहासिक विद्वान् एकमत नही है। इस विचार से तो सभी सहमत है कि चक्रवर्ती भरत के नाम से इस देश का 'भारत' नामकरण हुआ है। जैन परम्परा मे १२ चक्रवर्ती माने गये है, उनमे भरत चक्रवर्ती का नाम सर्वप्रथम आता है। वैदिक परम्परा मे वे आठवे अवतार भगवान् ऋषभदेव के पुत्र थे। ऐसी दोनो ही परम्पराओ की मान्यता है। वैदिक वाड्मय मे ऋषभदेव पुत्र भरत को चक्रवर्ती नही माना गया है। उनके यहा दुष्यन्त पुत्र भरत को पाचवा चक्रवर्ती माना गया है। पुराण साहित्य मे तो इस विषय के अनेक प्रमाण मिलते है, जिनमे ऋषभ पुत्र भरत के नाम से ही इस देश का भारतवर्ष नाम पडा ऐसा स्पष्ट उल्लेख है।

श्रीमद् भागवत् पुराण के अनुसार दुष्यन्त पुत्र भरत पुरु की १७वी पीढी मे हुए हैं। वैदिक परम्परा के प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद के अनुसार पुरु के पूर्व भी इस देश का नाम भारतवर्ष था। पुरु चन्द्रवश परम्परा मे हुए है। ऋषभदेव पुत्र भरत पुरु से सहस्रो वर्ष पूर्व हुए है। इससे स्पष्ट है कि ऋषभदेव पुत्र भरत चक्रवर्ती के नाम से ही इस देश का नाम भारतवर्ष पडा।

आधुनिक अनेक ऐतिहासिक विद्वानो ने भी
र्थन किया है। काशी विश्व विद्यालय के
प्राध्यापक श्री गंगाप्रसाद एम ए ने यही स्वी
ऋषियो ने हमारे देश का नाम प्राचीन चक्रवर्ती
नाम पर भारतवर्ष रखा था ने कवि

सत्प्रेरणा प्रदान करता है। हमारा इतिहास, हमारी सभ्यता, और हमारी सस्कृति का अक्षयकोष है ।

हमारी संस्कृति

भारत सदा से सस्कृतियो की रगस्थली रहा है। इन सभी सस्कृतियो मे श्रमण सस्कृति का अपना एक प्रमुख स्थान है। असत् पर सत् की विजय श्रमण सस्कृति का लक्ष्य है। श्रमण सस्कृति--अध्यात्म-सस्कृति है। यही एक ऐसी सस्कृति है जो मानव को पशुता की ओर जाने से रोकती है, और उसे मानवता की ओर ले जाती है। अध्यात्म सस्कृति का मूलस्वर त्याग है। भौतिक सस्कृति सब कुछ बटोर लेने मे सफलता मानती है परन्तु अध्यात्म-सस्कृति सब कुछ त्यागकर अकिंचन बनने मे जीवन की सफलता मानती है। भारतीय अध्यात्म सस्कृति की आधारशिला पर ही--सभ्यता और समाज का महाप्रसाद खडा है। इस अध्यात्म सस्कृति के उन्नायक श्रमण-महापुरुष सजग प्रहरी के रूप मे माने गये है क्योंकि अध्यात्म श्रम के द्वारा ही वे अपने जीवन का निर्माण करते है। वे ही इस सस्कृति के सरक्षक, उद्धारक तथा साहसिक धर्म नेता हैं। हमारा प्राचीन इतिहास इन महापुरुषो की गौरव गाथाओ से भरा पडा है। भारत का सत समाज सदासदा से अपने त्याग, तप संयम आदि गुणो मे अग्रगी रहा है। वह समाज अथवा सम्प्रदाय के तुच्छ बन्धनो मे कभी अवरुद्ध नही रहा हैं। युगो-युगो मे उसने अपने समुज्ज्वल आलोक से समस्त विश्व को आलोकित किया हैं। हमारा प्राचीन इतिहास इस बात का सजीव प्रमाण है। अध्यात्म सस्कृति के उत्थान मे श्रमणो के समान ही हमारी विदुषी श्रमणी वर्ग का भी विशेष हाथ रहा है।

भारतवर्ष

भारतवर्ष हमारी जन्मभूमि है। जन्मभूमि को स्वर्ग से भी अधिक माना गया है। 'भारत' के नामकरण के विषय मे ऐतिहासिक विद्वान् एकमत नही है। इस विचार से तो सभी सहमत है कि चक्रवर्ती भरत के नाम से इस देश का 'भारत' नामकरण हुआ है। जैन परम्परा मे १२ चक्रवर्ती माने गये हैं, उनमे भरत चक्रवर्ती का नाम सर्वप्रथम आता है। वैदिक परम्परा मे वे आठवे अवतार भगवान् ऋषभदेव के पुत्र थे। ऐसी दोनो ही परम्पराओ की मान्यता है। वैदिक वाड्मय मे ऋषभदेव पुत्र भरत को चक्रवर्ती नही माना गया है। उनके यहा दुष्यन्त पुत्र भरत को पाचवा चक्रवर्ती माना गया है। पुराण साहित्य मे तो इस विषय के अनेक प्रमाण मिलते है, जिनमे ऋषभ पुत्र भरत के नाम से ही इस देश का भारतवर्ष नाम पडा ऐसा स्पष्ट उल्लेख है।

श्रीमद् भागवत् पुराण के अनुसार दुष्यन्त पुत्र भरत पुरु की १७वी पीढी मे हुए हैं। वैदिक परम्परा के प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद के अनुसार पुरु के पूर्व भी इस देश का नाम भारतवर्ष था। पुरु चन्द्रवश परम्परा मे हुए है। ऋषभदेव पुत्र भरत पुरु से सहस्रो वर्ष पूर्व हुए है। इससे स्पष्ट है कि ऋषभदेव पुत्र भरत चक्रवर्ती के नाम से ही इस देश का नाम भारतवर्ष पडा।

आधुनिक अनेक ऐतिहासिक विद्वानो ने भी इसी मत का समर्थन किया है। काशी विश्व विद्यालय के इतिहास विभाग के प्राध्यापक श्री गगाप्रसाद एम ए ने यही स्वीकार किया है कि ऋषियो ने हमारे देश का नाम प्राचीन चक्रवर्ती सम्राट भरत के नाम पर भारतवर्ष रखा था। प्रसिद्ध हिन्दी कवि श्री रामधारी-

सिंह दिनकर ने भी स्पष्ट लिखा है कि भरत ऋषभदेव के ही पुत्र थे, जिनके नाम पर हमारे देश का नाम भारत पडा। बुद्ध पूर्व के भारतीय इतिहास के विद्वान् लेखक रावराजा डा॰ श्याम-बिहारी मिश्र, रायबहादुर डी लिट् तथा रायबहादुर प॰ शुकदेव बिहारी मिश्र ने भी इसी मत की पुष्टि की है। अत समुपलब्ध ऐतिहासिक आधारो पर यही मत उचित लगता है कि भगवान् ऋषभदेव के बडे पुत्र भरत चक्रवर्ती के नाम पर ही इस देश का नाम भारतवर्ष पडा।

भारत और यह विश्व

साधारणतया लोग भारत को एक कृषि प्रधान देश मानते है, किन्तु इससे भी अधिक भारत की एक प्रधानता है वह है इसकी ऋषि प्रधानता। आज तक जितने भी महापुरुष, ऋषिमुनि महात्मा-भारत ने समूचे ससार को दिये है, इतने अन्य किसी भी देश ने नही दिये है। यही कारण है कि भारत को विश्व दर्शन की आत्मा माना गया है। विश्व क्या है? उसकी स्थिति क्या है? ऐसे-ऐसे अनेक महत्व पूर्ण विषयो पर जितना सुन्दर तथा विशद् विवेचन भारतीय दर्शन ने दिया है ऐसा अन्य किसी दर्शन ने नही दिया है। भारत की दृष्टि सदा ही समन्वयात्मक रही है।

कुछ भारतीय दर्शनो ने विश्व की उत्पत्ति और विलय के विषय मे अपने विचार व्यक्त किये हैं। जैन दर्शन के विचार इस विषय मे भिन्न रहे है। वह कहता है कि यह सम्पूर्ण विश्व अनादि अनत है। इसका कर्त्ता, धर्त्ता तथा सहर्ता कोई नही है। यह सारा ससार जीव और अजीव इन दो मुख्य तत्वो का खेल है। बुद्धि-वादी लोग इस विषय मे कुछ भिन्न विचार रखते हैं। उनके मत मे इस जगत् का कर्ता ईश्वर है। धर्ता विष्णु है और सहर्ता शिव है।

ऐसा मानने से ईश्वर के अस्तित्व मे अनेक दोष आ जाते है। जिनका निराकरण कठिन ही नही असभव सा ही जाता है जैन दर्शन ने जो कुछ भी कहा है केवल बुद्धि के बल पर ही नही अपितु–सर्वज्ञो की दृष्टि से कहा है। सर्वज्ञ भगवान् ने जैसा अपने ज्ञान मे देखा और कहा है, वही सिद्धान्त जैन दर्शन का मान्य सिद्धान्त है। इसी आधार पर जैन-धर्म ईश्वर को सृष्टि कर्त्ता नही मानता। यह अनादि अनत विश्व अनतकाल से ही है और अनत काल तक रहेगा। यह न कभी उत्पन्न हुआ है और न कभी इसका विनाश होगा। विश्वगत पदार्थों के केवल आकार-प्रकार बदलते है किन्तु वे सर्वथा नष्ट नही होते। जो अनादि है वह अनत कालतक रहेगा। उसकी उत्पत्ति का प्रश्न ही नही उठता। जिसकी आदि होती है उसका अत होता है। यह षट् द्रव्य मय जगत् षट्कालचक्रो मे उत्थान और पतन के चक्कर काटता रहता है विकाश और ह्रास दोनो ही स्थितिया कालचक्र के अनुसार आती है।

कालचक्र

काल अनादि अनन्त है। वह दो भागो मे विभक्त है व्यवहार काल और निश्चय काल। व्यवहार काल का सबसे छोटा काल "समय" है ऐसे असख्य समयो की एक "अवलिका" होती है। सख्याता अवलिकाओ का "मुहूर्त" होता है। तीस मुहूर्तों का एक "दिन" होता है पन्द्रह दिनो का एक "पक्ष" होता है दो पक्षो का एक "मास" होता है बारह मासो का एक "वर्ष" होता है। ऐसे ही असख्यात वर्षों का एका 'पल्योपम' होता है। दश कोडा कोडी सागरोपम का एक उत्सर्पिणी काल होता है। इसी के बराबर अव-सर्पिणी काल होता है। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दोनो से एक

कालचक्र होता है ऐसे अनंत काल चक्र बीतने पर एक पुद्गल परावर्तन होता है।

उत्सर्पिणी काल मे जीवो के शरीर-बल तथा सुखो की वृद्धि होती है। अवसर्पिणी काल मे क्रमश. सभी सुख साधनो मे कमी आती है। उत्सर्पिणी काल के छ भेद इस प्रकार हैं—

(१) दु खम–दु खम (२) दु खम (३) दु खम-सुखम (४) सुखम-दु खम (५) सुखम (६) सुखम सुखम।

अवसर्पिणी काल के छ भेद ये है— (१) सुखम सुखम (२) सुखम (३) सुखम दु खम (४) दु खम सुखम (५) दु खम (६) दु खम दु खम।

आज तक अनन्त काल व्यतीत हो चुके हैं ऐसा सर्वज्ञ भगवान् का कथन है। हमारे इस प्रस्तुत इतिहास काल का प्रारभ अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे के अन्तिम भाग से होता है। इससे पूर्व के तीनो आरो मे पूर्ण भोग भूमि थी। भगवान् ऋषभदेव से कर्म भूमि काल का आरम्भ होता है।

भगवान् ऋषभदेव से पूर्व का भारतवर्ष

जैन धर्म के अनुसार भगवान् ऋषभदेव का समय सुखम् दुखम् नामक तीसरा आरा माना गया है। इसे युगलियो का काल भी कहते है।

युगलियो के समय मे सामाजिक व्यवस्था नही थी, कुटुम्ब रचना नही थी। राजा और प्रजा का व्यवहार भी नही था। लोग प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते थे। वह समय केवल पुण्य के

उपभोग का समय था। उद्योग-व्यवसाय तथा व्यापार आदि से जनता सर्वथा अनभिज्ञ थी। कल्पवृक्षो से सबकी इच्छाये पूर्ण होती थी। युगल उत्पन्न होते थे और दोनो हो समय पाकर दम्पत्ति के रूप मे परिणत हो जाते थे। उन दोनो की मृत्यु भी एक साथ ही होती थी। उनके जीवन मे कोई सघर्ष नही था। जीवन सब प्रकार से सुखी था, पर उसमे कोई विशेष उद्देश्य नही था। न शिक्षा थी और न दीक्षा थी। सबका जीवन उन्मुक्त था।

भगवान् ऋषभदेव का आगमन

अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे का बहुतसा समय बीतने तक लोगो का जीवन कल्पवृक्षाश्रित चलता है। यह भोग भूमि काल कहलाता है। क्योकि यह भोग प्रधान समय होता है। अपने जीवन निर्वाह के लिए मनुष्यो को किसी भी प्रकार का कोई उद्योग नही करना पडता था। धीरे-धीरे इस आरे का समाप्ति काल ज्यो-ज्यो समीप होता जाता है, उन्ही दिनो मे भरत क्षेत्र मे पन्द्रह कुलकर उत्पन्न होते है। कल्पवृक्षो की सख्या तथा उनकी फल देने की शक्ति दिनोदिन घटती जाती है। भोग्य वस्तुओ की कमी होती जाती है और उपभोक्ताओ की सख्या बढती जाती है। इच्छाओ की वृद्धि से परस्पर झगडे होने लगते है। जीवन मे अनेक समस्याओ का जन्म हो जाता है। जीवन के समाधान के लिए किसी मार्ग दर्शक की आवश्यकता अनुभव होने लगती है।

उसी समय पन्द्रह कुलकरो मे से सर्वप्रथम के पाच कुलकर अपने-अपने समय मे व्यवस्था मे सुधार का प्रयत्न करते हैं। इनके समय मे केवल 'हा' कह देने मात्र को हो जनता अपने लिए दण्ड समझती थी। ('हा' कार का अर्थ यहा खेद से लिया गया है)

कुछ काल बीतने पर जब 'हाकार' व्यवस्था का प्रभाव कम हो जाता है तो मध्य के पाच कुलकर अपने-अपने समय मे 'माकार' के दण्ड का विधान करते है। माकार का अर्थ है 'ऐसा काम मत करो'। काल के प्रभाव से जब माकार से भी काम नही चलता तो अन्त मे पाच कुलकर 'धिक्कार' शब्द मे दण्ड व्यवस्था चलाते है। इस प्रकार ये कुलकर ही सर्व प्रथम मनुष्यो की कठिनाइयो को दूर करके सामाजिक व्यवस्था का सूत्रपात करते है।

इस कुलकर परम्परा मे चौदहवे कुलकर श्री नाभिराय हुए है। इनकी पत्नि का नाम मरूदेवी था। इन्ही के यहा चैत्र कृष्णा अष्टमी को भरत क्षेत्र के प्रथम राजा, भगवान् श्री ऋषभदेव का जन्म हुआ था। भगवान् का बाल्यकाल युगलियो के बीच व्यतीत हुआ था। यद्यपि इस समय कुछ-कुछ सामाजिक व्यवस्था चल पडी थी किन्तु उसमे कोई विशेष महत्व नही था। अब भी लोग जैसे-तैसे कल्पवृक्षो से ही अपना काम चलाते थे। कठिनाइया अधिक अवश्य हो चुकी थी। इसलिए किसी को भी कोई इच्छा पूर्णरूप से पूर्ण नही हो पाती थी। नाभिराजा ने अब तक स्वय जो भी कुछ व्यवस्था स्थापित की थी, उससे वे अब मुक्त होना चाहते थे। भरत क्षेत्र की समस्त जनता किसी युग प्रवर्तक की ओर आख बिछाये बैठी थी। सबको एक सफल कर्मयोगी मार्ग द्रष्टा की आवश्यकता थी।

आवश्यकता आविष्कार की जननी होती हैं—इस लोकोक्ति के अनुसार नाभि राजा ने जनता की भलाई के लिए अपना उत्तर-दायित्व अपने सुयोग्य पुत्र ऋषभदेव को सौप दिया। तीर्थंकर भगवान् जन्म से ही तीन ज्ञान लेकर आते है। उसी के अनुसार भगवान् ऋषभदेव भी जन्म से ही तीन ज्ञानो के धारक थे।

उन्होने अपने ज्ञान बल से जनता की समस्याओ को देखा और स्थिति को सुधारने का मन मे दृढ सकल्प किया।

सर्वप्रथम भगवान् ने जनता को असि-मसि और कसि इन तीन आवश्यक शिक्षाओ से शिक्षित किया। लोगो को पाक-शास्त्र की शिक्षा दी। उन्हे गृह निर्माण कला समझाई। अच्छे नगरो का निर्माण कैसे होता है ? यह भी उनकी शिक्षा मे सम्मिलित था। भगवान् के तत्वावधान मे भारत की सर्वप्रथम नगरी 'विनीता' का निर्माण हुआ। यही नगरी आगे चल कर अयोध्या के नाम से प्रसिद्ध हुई।

भगवान् ने सबको कर्म अर्थात् पुरुषार्थ का उपदेश दिया उन्होने लोगो को समझाया कि प्रकृति के सहारे मनुष्य का जीवन अधिक काल तक नही चल सकता। अब उसे पुरुषार्थ करना ही पडेगा। तभी उसका जीवन सुखी बन सकेगा। निष्क्रियता जीवन मे सबसे बडा पाप है। हाथ पर हाथ रखकर बैठने से अब काम नही चलेगा। चलने से ही लक्ष्य तक पहुँच सकोगे। सभी शिक्षाओ मे भगवान् का एक ही उद्घोष था -मानव ! उठ ! अपने कर्तव्य का पालन कर ! प्रमाद को जीवन से बाहर निकाल दे।

उस समय समाज मे जो भाई-बहिन से दाम्पत्य जीवन की प्रथा चल रही थी उसे भगवान् ने समाप्त कर दिया और उसके स्थान पर एक व्यवस्थित वैवाहिक व्यवस्था प्रदान की। मानव के आदि परिष्कर्ता होने के कारण ही भगवान् का आदि-नाथ नाम पड गया।

भगवान् का एक नाम प्रजापति भी है। साधारण भाषा मे प्रजापति कुम्भकार को कहते है। क्योकि भगवान् ने अपने जीवन

मे सबसे पहिले जनता को मृत्तिका भाण्ड बनाने का उपदेश दिया था। इसीलिए उन्हे प्रजापति सज्ञा दी गई है।

जब भगवान् युवा हुए तो उनका सुनन्दा तथा सुमगला नामक दो सुन्दर युवतियो के साथ विवाह कर दिया गया। इनमे सुमगलादेवी के उदर से भरत नाम के पुत्र, ब्राह्मी नाम की कन्या तथा ४९ युगल पुत्र हुए और देवो सुनन्दा के गर्भ से सुन्दरी नाम की कन्या तथा महाबलशाली बाहुबलि नाम के पुत्र का जन्म हुआ। इस प्रकार भगवान् ऋषभदेव की कुल १०२ सन्ताने थी।

भगवान् ऋषभदेव ने ही सर्वप्रथम भारतोय जनता का सुव्यवस्थित सगठन किया था, इसो कारण उन्हे भारतवर्ष का सर्वप्रथम 'राजा' माना जाता है। भगवान् ने अपने राज्यकाल मे मानव समाज का व्यवसाय के अनुसार विभागीकरण किया था। जो प्रजा का पालन करने मे समर्थ थे। जनता को सुखी रखने के लिए साम, दाम, दण्ड और भेद नीति को अपनाते थे, वे क्षत्रिय कहलाये। व्यापार, खेती-बाडी आदि व्यवसाय मे निपुण 'वैश्य' तथा सब प्रकार से समाज की सेवा करने वाले शूद्र कहलाये। उन दिनो आज की भाति 'शूद्र' को घृणित दृष्टि से नही देखा जाता था। बल्कि अपने व्यवसाय के अनुसार उसका समाज मे उचित सम्मानित स्थान था। क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन तीनो विभागो मे सम्पूर्ण जनता का कर्तव्य क्षेत्र विभक्त था। भगवान् ऋषभदेव जन्म से जाति व्यवस्था को नही मानते थे। वे कर्मणा व्यवस्था के पूर्ण हिमायती थे। इसीलिए सभी वर्ग के लोग भगवान् के प्रति श्रद्धा के भाव रखते थे।

यह राज्य व्यवस्था का आदिकाल था। इसलिए शासनयवस्था को सुचारु रूप मे व्यवस्थित करने मे कुछ उलझने तो

अवश्य आई, परन्तु समय की आवश्यकता के कारण उन सब का भगवान् के उचित नेतृत्व मे निराकरण होता चला गया। एक बार चारो ओर व्यवस्था का साम्राज्य छा गया। जनता अपने अपने कर्तव्य पथ पर दिनो दिन अग्रसर होने लगी।

भगवान् ने अपने जीवन का अधिकाश भाग राज्याधिकारी के रूप मे बिताया। इस समय मे आपने जनता को पुरुषो की बहत्तर कलाओ तथा स्त्रियो की चौसठ कलाओ का रचनात्मक उपदेश दिया। इसके बाद भगवान् को ससार से विरक्ति हो गई। अपने समस्त राज्य को अपने सौ पुत्रो मे बाट कर भगवान् ने दीक्षा ग्रहण करली। भगवान् के साथ ही अन्य चार हजार पुरुष और दीक्षित हुए।

भगवान् के प्रति प्रेम भाव के कारण ही इन लोगो ने सयम व्रत ग्रहण किया था। ज्ञानपूर्वक विवेक उनमे नहीं था। फलस्वरूप साधक जीवन की कठोरता को वे सहन नही कर सके। तीर्थंकर भगवान् केवल ज्ञान प्राप्ति तक मौन रहते है। भगवान् ऋषभदेव के मौन के कारण भी उनका मन विकल हो गया था। अन्त मे संयम के दु खो से घबराकर उन्होंने भगवान् का साथ छोड़ दिया और इच्छानुसार मार्ग को अपनाने लगे। उन्होने अनेक प्रकार के अपने चिन्ह, वेश स्थापित कर लिए। परिणामस्वरूप अनेक मत पंथो का जन्म हो गया। इन पथो की तत्कालीन सख्या ३६३ मानी जाती है।

उधर भगवान् आदिनाथ, परम पद प्राप्ति के लिए वनो मे वृक्षो के नीचे दूर दूर एकान्त स्थानो मे जड और चेतन का विश्लेषण करते हुए ध्यान समाधि आदि आध्यात्मिक प्रयोगो द्वारा आत्म साक्षात्कार करने मे मस्त थे।

भगवान् के दीक्षित होने के बाद उनके ६८ पुत्रो को भी वैराग्य हो गया। वे शाश्वत सुख की प्राप्ति के हेतु भगवान् की चरण शरण मे जाकर दीक्षित होगए।

अब राज्य व्यवस्था का उत्तरदायित्व भरत और बाहुबलि के कन्धो पर आ गया। भरत चक्रवर्ती पद के अधिकारी थे। इसलिए वे बाहुबलि को अपने शासन मे लेना चाहते थे किन्तु बाहुबलि अपने समय के अद्वितीय योद्धा थे। वे भरत की आन मानने को किसी भी प्रकार तैयार नही थे। अन्त मे दोनो मे युद्ध निश्चित हुआ। यह युद्ध अपने आप मे एक विशेष प्रकार का युद्ध था। यद्यपि उस समय सेना का सगठन हो चुका था। फिर भी दोनो ने सैनिक युद्ध के द्वारा निरपराध जनता का सहार न करके इसे केवल अपने दोनो तक ही सीमित रखा। सर्वप्रथम दृष्टि-युद्ध हुआ। फिर नाद युद्ध हुआ। इन दोनो मे दोनो का बल बराबर रहा। अब मुष्टि युद्ध की बारी आई। भरत के मुष्टि प्रहार को बाहुबलि ने सहार लिया, लेकिन बाहुबलि ने प्रहार के लिए ज्यो ही मुष्टि उठाई, इन्द्र के प्रतिबोध से उनके विचारो मे एक दम परिवर्तन आ गया। क्षणिक राज्य के लिए अपने बडे भाई पर प्रहार करना उन्हे अच्छा न लगा। उनका सोया हुआ विवेक एक दम जागृत हो उठा। उसी क्षण उन्होने अपनी उठी हुई मुट्ठी से अपना केश लु चन कर लिया और स्वयमेव दीक्षित होगए। इस प्रकार अब समस्त राज्याधिकार भरत के हाथो मे आ गया।

उधर भगवान् ने दीक्षा लेने के पश्चात् तपोव्रत आरम्भ कर दिया। तप के उद्यापन के लिए भगवान् जब आहार के लिए नगरी मे पधारे तो जनता उनके तपोमय रूप का दर्शन करने के लिए उमड पडी। कोई उन्हे वस्त्र भेट करना चाहता था। कोई

आभूषण देना चाहता था। कितने ही लोग हाथी घोडे लेकर भगवान् की सेवा मे उपस्थित हो गए। आहार देने की विधि न जानने के कारण कोई भी भगवान् को आहार दान न दे पाया। इस प्रकार अनेक नगरो मे घूमते-घूमते भगवान् को साढे ग्यारह मास से भी अधिक समय हो गया। अन्त मे प्रभु हस्तिनापुर नगर मे पधारे। यहा का राजा श्रेयास बडा ही दानी था। उसने बडे ही भक्ति-भाव से भगवान् को इक्षुरस का निर्दोष आहार दान दिया। भगवान् ने पूरे एक वर्ष बाद आज इक्षुरस से पारणा किया। चारो दिशाओ मे अहोदान-अहोदान' की आकाशवाणी गूज उठी। भगवान् को सर्वप्रथम यह आहार दान वैशाख शुक्ला तृतीया के दिन मिला था। इसी कारण यह तिथि अक्षय तृतीया कहलाती है।

यहा से प्रभु ने अनेक दुर्गम स्थानो मे जाकर आत्म-साधना की। अनेक ग्राम, नगरो मे भ्रमण करते हुए एक बार आप पुरिमताल नामक नगर के उद्यान मे पधारे। इस समय तक भगवान् को आत्म-साधना करते हुए एक हजार वर्ष व्यतीत हो चुके थे। आज का दिन साधना का अन्तिम दिन था। फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिन पूर्वाह्न समय मे भगवान् तेले की तपस्या मे ध्यानस्थ थे। उन्हे उसी क्षण केवल ज्ञान, केवल दर्शन की प्राप्ति हो गई। अब भगवान् सर्वज्ञ वीतराग तथा पूर्ण आत्म-द्रष्टा हो गए। इन्हे पूर्ण जिन पद प्राप्त हो गया। भगवान् के धर्मोपदेश के लिए देवताओ ने समवशरण की रचना की। भगवान् के समवरण मे मनुष्यो-देवताओ के अतिरिक्त पशु-पक्षी भी धर्म उपदेश सुनने के लिए आते थे। सभी जीव जन्तु वैर-विरोध छोडकर भगवान् के उपदेशामृत का पान करते थे। उनकी वाणी मे ऐसा विलक्षण प्रभाव था कि

उसे मनुष्य ही क्या पशु आदि समस्त जीव मात्र आसानी से समझ लेते थे। भगवान् की पवित्र वाणी से हजारो प्राणियो ने आत्म लाभ प्राप्त किया। ससार अवस्था मे भगवान् ने जनता को सामाजिक व्यवस्था का उपदेश दिया था। अब केवल ज्ञान दशा मे आत्म-धर्म के मार्ग का पथ प्रदर्शन किया। वे इस अवसर्पिणी काल के सर्वप्रथम धर्म उपदेष्टा थे। इसीलिए उनका नाम 'आदिनाथ' कहलाता है। साधु-साध्वी, श्रावक तथा श्राविका इन चार तीर्थों की स्थापना करके प्रभु ने धार्मिक जगत को सगठित किया। इस सगठन को तीर्थ अथवा 'सघ' कहा जाता है। इस सघ व्यवस्था मे ८४ हजार साधु, तीन लाख साध्विया, तीन लाख पचास हजार श्रावक तथा पाच लाख चोपन हजार श्राविकाए सम्मिलित थी। भगवान् की 'ब्राह्मी' तथा सुन्दरी नामक दोनो पुत्रिया भी दीक्षित हो गई थी।

भगवान् की ये दोनो ही कन्याएँ अत्यन्त बुद्धिशालिनी थी। ब्राह्मी अक्षर ज्ञान, व्याकरण, न्याय व साहित्य मे पारगत थी। ब्राह्मी लिपि का आविष्कार ऋषभ पुत्री ब्राह्मी के द्वारा ही हुआ है। इसी ब्राह्मी लिपि का रूपान्तर आज की हिन्दी (नागरी) लिपि मानी जाती है। आजकल जितनी भी लिपिया प्रचलित है सब का मूल ब्राह्मी लिपि है। दूसरी पुत्री सुन्दरी गणित विद्या मे पारगत थी। आज का गणित शास्त्र 'सुन्दरी' के गणित शास्त्र का ही विकसित रूप है। ऋषभ परम्परा मे ब्राह्मी और सुन्दरी का बडा ही महत्वपूर्ण स्थान है।

बाहुबलि जी दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् भगवान् के चरणो मे पहुँचना चाहते थे। किन्तु उनके मन मे उस समय यह विचार उत्पन्न हो गया कि वहा जाने पर मुझे अपने पूर्व

क्षित छोटे भाईयो को वदना करनी पडेगी । इससे मेरा
म्मान घटेगा । इस समय वे दुष्कर तपस्या मे लीन थे तो भी
नके मन मे मान घर किए बैठा था । इसी कारण उनका केवल
ान रुका हुआ था । भगवान् ने अपने केवल ज्ञान मे यह सब
छ जान लिया । उन्होने अपनी दोनो पुत्रियो को वाहुवलि
तिबोध के लिए वन मे भेजा । ब्राह्मी तथा सुन्दरी जी के प्रति-
ाध से बाहुबलि जी के परिणाम बदल गए । उन्हे अपना
स्तविक बोध हो गया । अभिमान के स्थान पर अब उनमे
ात्माभिमान—स्वाभिमान जागृत हो गया । उन्होने ज्योही भग-
ान् के चरणो मे जाने के लिए अपना एक पग उठाया, उसी समय
न्हे केवल ज्ञान की प्राप्ति हो गई । शास्त्र मे ठीक ही कहा है
; मान से मनुष्य का विनय गुण नष्ट हो जाता है । जब मनुष्य
विनय गुण प्रगट हो जाता है तो उसकी आत्मा शीघ्र ही अपने
क्ष्य को प्राप्त कर लेता है ।

विनय हमारी आत्मा का निज-गुण है । आगम साहित्य मे
। यहा तक कहा गया है कि धर्मरूपी वृक्ष का विनय मूल है ।
ास प्रकार वृक्ष के मूल से धड उत्पन्न होता है । धड से शाखाए
कलती है, ठीक उसी प्रकार धर्मरूपी वृक्ष की विनय रूपी जड
जीवन मे कीर्ति, शास्त्र-ज्ञान, उच्चपद और अन्त मे आत्मिक
ानन्द रूप रस की उत्पत्ति होती है, जो शिष्य अपने गुरु की
ाज्ञा के अनुसार कार्य करता है । उनके समीप रहता है । उनके
ानुकूल कार्य करता है । विवेक से रहता है तथा गुरुदेव के
ंगितो को समझता है, वह विनयी शिष्य कहलाता है । उसी का
ल्याण होता है । इसके विपरीत जो आचरण करता है उसे
विनीत कहते हैं । श्री बाहुबलिजी के उदाहरण से बात पूर्ण-
ाण स्पष्ट हो जाती है कि मनुष्य कितनी ही बडी से बडी

तपस्या करे—पर जब तक उसके जीवन मे अभिमान रहेगा तब तक उसे केवल ज्ञान प्राप्त नही हो सकता। आगम मे कहा है कि मान से विनय गुण नष्ट हो जाता है। जिससे आत्मा के समस्त गुण आवरण मे आ जाते है।

निर्वाण—इस अवसर्पिणी काल मे भगवान् ऋषभदेव सर्व-प्रथम आर्य जाति के उपास्य हुए है। आज हम जिस समाज-व्यवस्था मे अपना जीवन यापन कर रहे है, इसके मूल स्रष्टा भगवान् आदीश्वर ही है। यही कारण है कि भारत का प्रत्येक सम्प्रदाय उन्हे किसी न किसी रूपमे अपना उपास्य मानता ही है। वे विश्वकर्मा थे। प्रजापति थे। उस युग के सर्वप्रथम मुनि थे। वे अपने जीवन के अन्तिम समय तक जन-कल्याण मे निरत रहे थे। केवल ज्ञान होने के पश्चात् सहस्रो वर्षो तक भगवान् ने अपने उपदेशो द्वारा भव्य जीवो का उद्धार किया। अन्त मे अपना निर्वाणकाल समीप जानकर प्रभु हजारो मुनिराजो के साथ अष्टापद पर्वत पर पधार गए। जहा माघ कृष्णा १३ को चार अघातिक कर्मों का क्षय करके अचल सिद्ध गति को प्राप्त हुए। इस समय अवसर्पिणी के तीसरे आरे के तीन वर्ष साढे सात मास शेष थे।

प्रकरण दूसरा

भगवान् ऋषभदेव के पश्चात् इस अवसर्पिणी काल मे २३ तीर्थङ्कर और हुए हैं। इनमे से अधिकाश तीर्थङ्करो का काल आज के ऐतिहासिक काल की परिधि से बहुत पहिले का है। इसीलिए उनका विस्तृत इतिहास अप्राप्य सा है।

इन सभी तीर्थङ्करो ने अपने अपने समय मे शुद्ध मुनिधर्म अङ्गीकार करके कठोर तपश्चरण किया है। जब उन्हे केवल ज्ञान प्राप्त हो गया तो जनता को धर्म उपदेश देना आरम्भ कर दिया। सभी तीर्थङ्करो के काल मे गणधर व्यवस्था हुई है। साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविक रूप धर्म 'तीर्थ' की स्थापना हुई है। उस "तीर्थ" स्थापना के कारण ही उन्हे तीर्थङ्कर कहा जाता है। जैन धर्म मे चतुर्विध सघ को ही तीर्थ माना गया है। ये चारो तीर्थ स्वय भी अपना कल्याण करते हैं और जो जीव उनके धार्मिक जीवन से सत्प्रेरणा लेकर तीर्थङ्करो के बताये हुए मार्ग पर चलता हैं, उसका भी कल्याण होता हैं। तीर्थङ्करो के विशुद्ध जीवन का अध्ययन करने से आत्म-कल्याण की प्रेरणा मिलती है। कर्म आवरण मे आया हुआ "तीर्थङ्करत्व" अपने शुद्ध स्वरूप मे प्रगट हो जाता है।

तीर्थंकरों के माता-पिता निर्वाण स्थल आदि का संक्षिप्त परिचय

नाम	पिता	माता	स्थान	निर्वाण
श्री अजितनाथ जी	जितशत्रु राजा	विजया देवी	अयोध्या	सम्मेद शिखर
श्री सभवनाथ	जितार्थ राजा	सेना देवी	श्रावस्ती	,,
श्री अभिनन्दननाथ जी	सम्वर राजा	सिद्धार्थदेवी	विनीता	,,
श्री सुमतिनाथ जी	मेघरथ राजा	सुमगलादेवी	कुशलपुरी	,,
श्री पद्म प्रभु जी	श्रीधर राजा	सुसीमा	कौशाम्बी	,,
श्री सुपार्श्वनाथ जी	प्रतिष्ठेन	पृथ्वीदेवी	काशी	,,
श्री चन्द्रप्रभु जी	महासेन	लक्ष्मीदेवी	चन्द्रपुरी	,,
श्री सुविधिनाथ जी	सुग्रीव राजा	रामादेवी	काकदी	,,
श्री शीतलनाथ जी	दृढरथ	नन्दादेवी	भद्दिलपुर	,,

श्री श्रेयासनाथ जी	विष्णुसेन	विष्णुदेवी	सिंहपुरी	”
श्री वासु पूज्य जी	वसु पूज्य	जयादेवी	चम्पापुरी	चम्पानगरी
श्री विमलनाथ जी	कर्तृवर्म	श्यामादेवी	कम्पिलपुर	सम्मेत शिखर
श्री अनन्तनाथ जी	सिंहसेन	सुयशादेवी	अयोध्या	”
श्री धर्मनाथ जी	भानुराजा	सुव्रतादेवी	रत्नपुर	”
श्री शान्तिनाथ जी	विश्वसेन	अचिरादेवी	हस्तिनापुर	”
श्री कुन्थुनाथ जी	सूरराजा	सूरादेवी	”	”
श्री अरनाथ जी	सुदर्शन राजा	श्री देवी	”	”
श्री मल्लिनाथ जी	कुम्भ राजा	प्रभावती	मिथिला नगरी	”
श्री मुनिसुव्रत जी	सुमित्र राजा	पद्मादेवी	राजगृह	”
श्री नमिनाथ जी	विजयसेन	वप्रादेवी	मिथिला नगरी	”
श्री नेमिनाथ जी	समुद्रविजय	शिवादेवी	सौरीपुर	रैवतकगिरि
श्री पार्श्वनाथ जी	अश्वसेन	वामादेवी	काशी	सम्मेत शिखर
श्री महावीर स्वामी	सिद्धार्थ राजा	त्रिशलादेवी	कुण्ड ग्राम	पावापुरी

इन चौवीस तीर्थङ्करो मे से धर्मनाथ अरनाथ, तथा कुन्थुनाथ का जन्म कुरुवश मे मुनि सुव्रतनाथ का हरिवश और शेष सब तीर्थङ्करो का जन्म इक्ष्वाकुवश मे हुआ था।

सभी तीर्थङ्करो का जीवन पूण तपोमय था। सभी ने शुद्ध अनगार धर्म स्वीकार किया था और कठोर तप आराधन से केवल ज्ञान प्राप्त करके ससार के समस्त जीवो को मुक्ति मार्ग का उपदेश दिया था। अपने-अपने समय मे सभी ने तीर्थ व्यवस्था की थी। अन्त मे सब ने निर्वाण पद प्राप्त किया। सभी तीर्थङ्कर आध्यात्मिक जगत की विराट् विभूति थे। इनमे से पाच तीर्थ-ङ्करो का जीवन विशेष रूप से प्रसिद्ध है। अत उनकी सक्षिप्त जानकारी नीचे दी जा रही है।

श्री शान्तिनाथजी

ये सोलहवे तीर्थङ्कर थे। इनके पिता हस्तिनापुर के महाराजा विश्वसेन और माता श्री अचिरादेवी जी थी। इनका जन्म और निर्वाण ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी को हुआ था। ये भरत क्षेत्र के चक्रवर्ती भी रहे हैं। इनके जन्म से पहिले समस्त देश मे महा-मारी, मृगी की बीमारी फैली हुई थी। इनको गर्भ मे आते ही समस्त देश मे शान्ति छा गई। इसी कारण इनका नाम "शाति-नाथ" रखा गया था।

अपने पूर्वभव मे इन्होने "राजा मेघरथ" के रूप मे एक कबूतर की जीवन रक्षा के लिए अपने शरीर को अर्पित कर दिया था। इसी शुभ तथा शुद्ध दयाभाव के कारण इन्होने तीर्थङ्कर नामकरण का उपार्जन किया था। इनका दयाभाव

बडा ही अनुपम था । आज भी लाखो की सख्या मे श्रद्धालु लोग आपके नाम स्मरण मात्र से आत्मशान्ति प्राप्त करने का सफल प्रयत्न करते है ।

श्री मल्लिनाथजी

ये उन्नीसवे तीर्थङ्कर थे । इनका जन्म मिथिला नगरी मे हुआ था । इनके पिता कुम्भ राजा थे और माता प्रभावती थी । चौवीस तीर्थङ्करो मे केवल ये ही एक स्त्री तीर्थङ्कर हुए है । इनका शास्त्रीय नाम भगवती मल्लिकुमारी है । बोलचाल की भाषा मे जनता इन्हे अन्य तीर्थङ्करो के साथ-साथ मल्लिनाथ कहने लग पडी । स्त्री भी तीर्थङ्कर हो सकती है यह इस बात का एक ज्वलत उदाहरण है । हमारे देश की मातृ-जाति के लिए यह बडे ही गौरव की बात है । आपने भी अन्य तीर्थङ्करो की भाति दीक्षा व्रत स्वीकार कर लिया था और उत्कृष्ट तप आराधन के द्वारा केवल ज्ञान प्राप्त किया था । इनके तीर्थ मे चालीस हजार मुनि, पचपन हजार साध्विया, एक लाख उनासी हजार श्रावक तथा तीन लाख सत्तर हजार श्राविकाएं थी ।

प्राचीन भारत मे नारी का कितना उच्च सन्मान था, भगवती मल्लिकुमारी जी का जीवन उसका स्पष्ट प्रमाण है । माता मरु-देवी की जीवनगाथा और मल्लिकुमारी जी की आत्मकथा हमारे आगम साहित्य की अमर विभूतिया है । जैन धर्म मे पुरुषो के समान ही स्त्रियो को भी आत्म कल्याण का समान अधिकार दिया गया है ।

श्री अरिष्टनेमिजी

ये यादव वश के महान् प्रतापी राजा समुद्रविजय के पुत्र थे । इनकी माता का नाम शिवादेवी था । राजा समुद्रविजय श्री कृष्ण

के पिता वसुदेवजी के बडे भाई थे। श्री अरिष्टनेमिनाथजी का अस्तित्व वैदिक साहित्य भी बडी श्रद्धापूर्वक स्वीकार करता है। भारत के वर्तमान राष्ट्रपति डाक्टर राधाकृष्णन् ने वेदो मे से अनेक ऐसे प्रामाणिक मन्त्र खोज निकाले हैं। जिनमे भगवान् अरिष्टनेमिनाथजी की स्तुति की गई है। जैन शास्त्रो के अनुसार भगवान् श्री अरिष्टनेमिनाथजी का समय छियासी हजार वर्ष प्राचीन ठहरता है और वैदिक साहित्य केवल पाच हजार वर्ष का समय मानता है। प्रसिद्ध जैन शास्त्र उत्तराध्ययन सूत्र के २२ वे अध्याय मे श्री अरिष्टनेमि का बडा ही हृदयग्राही वर्णन मिलता है।

युवा होने पर वासुदेव श्री कृष्ण श्री अरिष्टनेमिजी की शादी कर देना चाहते थे। यादव वश शिरोमणि श्री अरिष्टनेमि का मथुराधिपति महाराज उग्रसेन की पुत्री राजीमती के साथ विवाह होना निश्चित हुआ था। उन दिनो श्री अरिष्टनेमी द्वारिका मे रहते थे। विवाह का समय आने पर बरात रवाना हुई और मथुरा पहुँची। राजकुमार श्री अरिष्टनेमि के साथ आये हुए कुछ मासभक्षी बारातियो के लिए राजा उग्रसेन ने बाडे मे पशु बधवा रखे थे। एकत्र पशुओ को दुखी देखकर भगवान् अरिष्टनेमि के हृदय मे अपार करुणा का स्रोत उमड पडा। वे पशुओ को बधन मुक्त करवाकर बिना विवाह किये ही वापिस चले आये। अन्य तीर्थङ्करो के व्यवहार के अनुसार दान आदि व्यवहार पूर्ण करके दीक्षित हो गए।

भगवान् के इस वैराग्यभाव का राजीमती पर भी बडा प्रभाव पडा। वह भी भगवान् के चरणो मे जाकर दीक्षित हो गई। भगवान् की ओर जाते हुए राजीमती को रथनेमि नाम के युवा साधु ने देखा, वह इनके रूप सौन्दर्य पर मोहित हो गया।

चरित्रशीला राजीमति की उपदेश भरी फटकारो से रथनेमि का मन अपने सयम मे स्थिर हो गया और शुद्ध अन्त करण से भगवान् के चरणो मे आ गया।

राजीमती का तपश्चरण बडा ही उग्र था। यही कारण है कि भगवान् अरिप्टनेमिनाथ से उनचास दिन पहिले ही उन्हे सिद्धगति प्राप्त हो गई। भगवान् ने अपने जीवनकाल मे पशु सरक्षण पर विशेष बल दिया था। श्री कृप्ण कर्मयोगी थे और भगवान् अरिप्टनेमि आध्यात्म योगी। इन दोनो महापुरुषो का योग भारतीय सस्कृति मे अमर है। अरिष्टनेमिनाथजी का प्रसिद्ध नाम नेमिनाथ भी है। इसी नाम को अधिक जनता उन्हे जानती है। नेमिनाथजी का निर्वाण स्थल गिरनार पर्वत माना जाता है। यह स्थान जूनागढ के निकट है। भगवान् का अहिसा आदोलन यही से प्रसारित हुआ था और धीरे धीरे सारे सौराष्ट्र मे फैलता हुआ समूचे देश मे फैल गया।

सौराष्ट्र मे आज भी अन्य स्थानो की अपेक्षा कम हिंसा होती है। यह भगवान् के अहिसा वरदान का ही प्रभाव है।

श्री पार्श्वनाथजी

भगवान् पार्श्वनाथ का जन्म बनारस मे हुआ था। इनके पिता का नाम अश्वसेन और माता का नाम वामादेवी था। इनका समय ईसा से अनुमानत आठ सौ वर्ष पूर्व का माना जाता है। इनकी चित्त-वृत्ति आरम्भ से ही वैराग्य की ओर विशेष थी। माता-पिता ने अनेक वार इनके सामने विवाह का प्रस्ताव किया, किन्तु इन्होने बडे ही शिष्ट शब्दो से उसे टाल दिया।

भगवान् पार्श्वनाथ का युग तापसो का युग था। उन दिनो

हजारो तापस शारीरिक कष्ट साधना मे लगे हुए थे। उनकी इस कष्ट साधना के अनेक भिन्न-भिन्न प्रकार थे। अनेक वृक्षो पर लटककर, अनेक सूखे पत्ते चबाकर और अनेक पचाग्नि मे तपकर, बाह्य क्रिया-काण्डो मे लीन थे। उस समय अधिक जनता विवेकशून्य क्रिया-काण्ड से प्रभावित थी। "देहदण्ड महाफलम्" का प्रचार चारो ओर बढ रहा था। कमठ नाम का प्रसिद्ध तापस उन्ही दिनो बनारस की जनता का विशेष श्रद्धा केन्द्र बना हुआ था। वह गगा तट पर पचाग्नि तप कर रहा था। कुमार पार्श्वनाथ एक दिन अपनी माताजी के साथ कमठ तापस के पास आए और तापस से बोले--इन लक्कडो को जलाकर व्यर्थ ही तुम लोग जीव हिसा क्यो कर रहे हो ? कुमार की बात सुनकर कमठ झल्लाकर बोला—इन लक्कडो मे कहा है, जीव ? कुमार ने उसी समय एक जलते हुए लक्कड मे से झुलसते हुए विषधर युगल को निकाल कर तापस को दिखा दिया। इतना ही नही उन्होने मरणोन्मुख नाग-नागिन के जोडे करुणार्द्र हृदय से नवकार मन्त्र का शरण भी दिया। जिसके प्रभाव से वे दोनो वहा से मरकर धरणेन्द्र तथा पद्मावती बने।

नाग-नागिन की इस घटना से कुमार पार्श्वनाथ के मन को बडा दुख हुआ। जीवन की अनित्यता ने उनके चित्त को ससार से और भी उदासीन बना दिया। वे उसी समय राजसुख छोडकर सयम मार्ग मे प्रव्रजित हो गए।

उधर क्रोधावेश के कारण कमठ तापस की मृत्यु हो गई। वह देवलोक मे मेघमाली नामक देवता बना। अपने पिछले भव का प्रतिशोध लेने के लिए उसने तपस्या मग्न भगवान् को अनेक कष्ट दिये। एक बार उसने मूसलाधार वृष्टि करके उन्हे जल-

मे डुबा देने की असफल कुचेष्टा की, किन्तु नाग-नागिन के जीव धरणेन्द्रदेव और पद्मावती ने भगवान् के उपसर्ग का निवारण किया। धरणेन्द्र देव ने सहस्रफणी नाग का रूप बनाकर भगवान् पर छत्र बना दिया। कमठ का जीव मेघमाली यह सब कुछ देखकर बहुत ही लज्जित तथा भयभीत हुआ और भगवान् की चरण-शरण मे जाकर जैसे-तैसे उसने अपनी जान बचाई।

भगवान् ने तीस वर्ष की आयु मे दीक्षा ग्रहण की थी और ७० वर्ष तक जगह-जगह भ्रमण कर के धर्म प्रचार किया। श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, कम्पिलपुर, और अहिच्छत्रा आदि स्थान भगवान् के विशेष प्रचार तथा विहार क्षेत्र रहे। आपके सघ मे आठ प्रमुख गणधर थे और पुष्पचूला नाम की महासती भिक्षुणी सघ की अधिनायिका थी। दूसरे तीर्थङ्कर भगवान् अजितनाथ जी के समय से चली आयी चतुर्यामव्रत परम्परा को ही भगवान् पार्श्वनाथ ने विशेष बल दिया। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनो ही सम्प्रदायो के साहित्य मे भगवान् पार्श्वनाथजी के जीवन वृत्तान्त का उल्लेख मिलता है। दीक्षा से ८४ वे दिन भगवान् को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ था। इस प्रकार सौ वर्ष की आयु मे सम्मेद शिखर पर आपका निर्वाण हुआ। भगवान् पार्श्वनाथ के नाम से ही आज सम्मेद शिखर पर्वत "पारसनाथ हिल" के नाम से प्रसिद्ध है।

प्रभु पार्श्वनाथ के निर्वाण के बाद उनके आठ गणधरो मे से श्री शुभदत्त सघ के मुख्य गणधर हुए। इनके बाद हरिदत्त, आर्य समुद्रप्रभ, और केशिस्वामी सघनायक पद पर आये। भगवान् के निर्वाण के बाद और केशिस्वामी के आचार्यकाल के बीच मे पार्श्वनाथ प्रभु के द्वारा उपदिष्ट व्रतो के पालन मे क्रमश शिथि-

लता आगई थी। काल प्रवाह के कारण निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय मे अनेक विकार प्रविष्ट हो गये थे।

जहा तक भगवान् पार्श्वनाथजी की परम्परा का प्रश्न है, इसके विषय मे अभी तक क्रमश कोई प्रमाण उपलब्ध नही है। आगम साहित्य मे अनेक महापुरुषो के नाम आये है जो पार्श्व परम्परा के ही अनुयायो थे। परदेशी राजा को प्रतिबोध देने वाले केशीकुमार श्रमण भी पार्श्वापत्यिक ही थे। अंतिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर का परिवार भी पार्श्व परम्परा का ही अनुयायी 'विवेकपूर्ण क्रिया' ही भगवान् पार्श्वनाथ के उपदेशो का मुख्य सार है।

भगवान् महावीर

भगवान् महावीर के जन्म से पूर्व भारत की स्थिति बडी ही दयनीय थी। धर्म के नाम पर अनेक विवेकहीन क्रिया-काण्ड आरम्भ हो चुके थे। वर्ण व्यवस्था इतनी विकृत हो चुकी थी कि अपने आपको उच्च वर्ण का मानने वाले दूसरे वर्ण के व्यक्तियो को हीन समझते थे। ब्राह्मण वर्ग का चारो ओर बोलबाला था। यज्ञ के नाम पर अनेक प्रकार के हिंसा-काण्ड चल पडे थे। दिनो दिन सबकी वैचारिक शक्ति क्षीण होती चली जा रही थी। पेड, पर्वत, नदी-नाले, अग्नि, आदि को ही लोगो ने देवता मानना आरम्भ कर दिया था। चारो ओर हिंसा का नग्न-नृत्य हो रहा था। पाखण्ड ढोग तथा बाह्य आडम्बर बढता जा रहा था। गुण पूजा का स्थान व्यक्ति पूजा ने ले लिया था। आध्यात्मिक जनता का विश्वास हिलता जा रहा था। स्त्री तथा शूद्रो को अधिकार से वञ्चित कर दिया गया था। 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयेताम्" की उक्ति से

ब्राह्मण लोग जनता पर अपना एकाधिकार जमाये बैठे थे। स्त्री को अबला की सज्ञा देकर उस पर मनमाने अत्याचार हो रहे थे। धार्मिक अथवा सामाजिक किसी भी क्षेत्र मे उन्हे स्वतंत्रता प्राप्त नही थी। तत्कालीन शूद्र कहे जाने वाले वर्ग की स्थिति भी बडी ही शोचनीय थी। सेवा का पवित्र कार्य करने पर भी उन्हे दीन-हीन समझा जाता था। उन पर असीम अत्याचार होते थे। यदि भूल से भी कोई स्त्री अथवा शूद्र-वेद मन्त्र सुन लेता था तो उसके कानो मे गर्म शीशा भरवा दिया जाता था। यद्यपि भगवान् पार्श्वनाथ की २५०, वर्ष पुरानी परम्परा उस समय किसी न किसी प्रकार चल रही थी किन्तु सशक्त नेतृत्व के अभाव मे उसमे तत्कालीन हिंसा-काण्ड का विरोध करने की क्षमता नही थी। स्वय उस पवित्र परम्परा के अनुयायी भी अपने कर्तव्य पालन मे शिथिल से हो गये थे।

उन दिनो देश मे गणराज्य व्यवस्था थी। यह व्यवस्था ईसा से सात सौ वर्ष पूर्व से भारत मे प्रचलित थी। गणराज्य में, राष्ट्र के प्रत्येक सदस्य को राजकीय अधिकार प्राप्त होता है। उसकी तथा उसके अधिकार की इस व्यवस्था मे पूर्ण सुरक्षा होती थी। प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती थी। ईसा की चौथी शताब्दी तक भारत मे गणराज्य व्यवस्था का रूप मिलता है। बाद मे धीरे-धीरे शासको मे फूट पडने लगी और देश मे सामन्तशाही का जोर बढने लगा। कुछ भी हो, गणराज्य व्यवस्था भगवान् महावीर के पूर्व से उनके काल तक समूचे देश मे प्रचलित रही है। लिच्छिवि वश तथा महाराज चेटक की गण-राज्य व्यवस्था का जैन साहित्य मे बडा ही महत्त्वपूर्ण उल्लेख मिलता है।

भगवान् महावीर का जन्म

भगवान् महावीर का जन्म ईसा से अनुमानत ५०० वर्ष पूर्व क्षत्रिय कुण्डग्राम मे हुआ था। यहा के अधिपति राजा सिद्धार्थ थे। ये ज्ञातृवश के थे। इनकी रानी त्रिशला तत्कालीन गणराज्य के गणपति महाराज चेटक की कन्या थी। जैन शास्त्रो मे चेटक को वैशाली का राजा माना है। ये इक्ष्वाकु वश के शिष्ट गोत्री थे। इनकी रानी का नाम भद्रा था। इनके धनदत्त आदि दश पुत्र तथा त्रिशला प्रमुख सात पुत्रियाँ थी। कौशाम्बी के चन्द्रवशी राजा शतानीक की रानी मृगावती भी चेटक की ही पुत्री थी। 'उदयन शतानीक का पुत्र था।' कनिंघम साहब ने उदयन का राज्यकाल ईसा से ५७० वर्ष पूर्व माना है। मगध राज्य के अधिपति महाराजा श्रेणिक की पटरानी चेलना रानी भी महाराजा चेटक की ही पुत्री थी। उपर्युक्त सम्बन्धो से यह स्पष्ट है कि राजा सिद्धार्थ उस समय के महान् शूरवीर तथा प्रतिष्ठा प्राप्त नर-नायक थे। अन्यथा उनका विवाह इस प्रकार के विशाल तथा गणराज्याधिपति के परिवार मे होना सम्भव नही था।

भगवान् की जन्मभूमि कुण्डग्राम के मुख्य दो भाग थे। एक क्षत्रिय कुण्डग्राम तथा ब्राह्मण कुण्डग्राम। क्षत्रिय कुण्ड ग्राम मे 'सिद्धार्थ' तथा ब्राह्मण कुण्ड ग्राम मे पण्डित ऋषभदत्तजी अपना शासन चलाते थे। इनकी धर्मपत्नी का नाम देवानन्दा था। आगम परम्परा के अनुसार भगवान् सर्वप्रथम देवानन्दा के गर्भ मे ही आये। इसके बाद ८२वी रात्रि को हरिण गवेषी देवता ने अपनी दैविक शक्ति से उन्हे त्रिशला रानी की कुक्षि मे स्थापित कर दिया। उसी रात त्रिशला रानी ने चौदह महा स्वप्न देखे, तत्पश्चात् गर्भ स्थिति पूर्ण होने पर चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को

भगवान् का जन्म हुआ। भगवान् के वडे भाई का नाम नन्दी-
वर्धन था और सुदर्शना बहन का नाम था। भगवान् के चाचा
का नाम सुपार्श्व था।

भगवान् के गर्भ मे आने से ही राजा सिद्धार्थ के राज्य की
वृद्धि होने लगी थी, इसीलिए भगवान् का नाम वर्द्धमान रखा
गया। भगवान् का बाल्यकाल बडा ही शौर्यपूर्ण रहा था। उनके
बचपन की अनेक घटनाओ से इस बात की पुष्टि होती है। एक
बार बाल भगवान् वर्द्धमान ने खेल ही खेल मे एक देव को
परास्त कर दिया था, तभी से आपका नाम महावीर पड गया।
वे जन्म से ही तीन ज्ञान के धारक थे। उनकी वृत्ति सदा अन्त-
र्मुखी रहती थी। ससार मे रहकर भी वे भोग सामग्री से विरक्त
रहते थे। उनकी आत्मा मे एक दिव्य प्रकाश था। उनका शरीर
बडा ही सुन्दर था। स्वभाव से भगवान् बडे ही शान्त तथा
गम्भीर थे।

धीरे-धीरे जब भगवान् यौवन वय मे प्रवेश कर गए तो
उनका विवाह कौण्डिय गोत्रीया एक यशोदा नामक कन्या से कर
दिया गया। यशोदा कलिग देश जितशत्रु राजा की पुत्री थी।
इच्छा न होते हुए भी भगवान् ने यह विवाह सम्बन्ध माता पिता
की सतुष्टि के लिए तथा भोगावली कर्मों को भोगने के लिए ही
स्वीकार किया था। भगवान् की एकमात्र सन्तान प्रियदर्शना
नामक कन्या थी। इसका विवाह भगवान् महावीर की बहिन
सुदर्शना के पुत्र जमाली के साथ हुआ था। इन सब उल्लेखो से
स्पष्ट है कि लिच्छिवियो और वज्जियो मे पहले मामा की
सन्तान से विवाह होते थे।

भगवान् ने अपने गर्भकाल मे ही यह प्रतिज्ञा करली थी कि

माता पिता के जीवित रहते मै सयम व्रत स्वीकार नही करूंगा। यह भगवान् की मातृ-पितृ भक्ति का ज्वलत उदाहरण है। माता-पिता की मृत्यु के समय भगवान् की अवस्था २८ वर्ष की थी। विरक्ति के भाव तो भगवान् के जीवन जन्म से थे ही। माता पिता की मृत्यु ने उनकी भावना को और भी उद्दीप्त कर दिया। उन्होने अपने ज्येष्ठ भाई नन्दीवर्धन के सामने अपने दीक्षित होने का प्रस्ताव रख दिया। उस समय स्वय नन्दीवर्धन भी माता-पिता की मृत्यु से अत्यन्त दुखी थे, इसीलिए उन्होने भगवान् को दीक्षा की अनुमति नही दी। नन्दीवर्धन के व्यथा-परिपूर्ण प्रस्ताव के कारण भगवान् दो वर्ष तक और गृहस्थावास मे रहे। अन्त मे तीस वर्ष की पूर्ण यौवन अवस्था मे अपने संबधीजनो की आज्ञा लेकर पूर्ण सयमव्रती बन गए। भगवान् ने मार्गशीर्ष कृष्णा १०मी को राज्य वभव छोडकर भगवती दीक्षा अङ्गीकार की थी। दीक्षा के बाद भगवान् ने साढे बारह वर्ष तक घोर तपस्या की। इस काल मे अधिकतर भगवान् मौन हो रहे। साधना काल मे भगवान् ने अनेक महान् उपसर्गों को सहन किया था। आगम के अनुसार तेईस तीर्थंकरो के कष्ट एक तरफ और अकेले भगवान् के कष्ट एक तरफ माने गए है। ग्वालों का उपसर्ग, सगम के कष्ट, शूलपाणी यक्ष का परीषह, चण्ड कौशिक का डक, गोशालक तथा लाटदेशीय यातनाऐ भगवान् की सहनशीलता के असाधारण उदाहरण है।

सभी उपसर्गों को समता पूर्वक पार करते हुए अन्त मे वैशाख शुक्ला दशमी को ऋजुवालिका नदी के तट पर भगवान् महावीर को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ था।

लो.कालोक प्रकाशक केवल ज्ञान प्राप्त होने के बाद भगवान्

महावीर ने जन-कल्याण के लिए धर्म उपदेश देना आरम्भ कर दिया। अपने उपदेशो द्वारा उन्होने जनता की सुप्त हुई मानवता को जागृत करने का प्रयत्न किया। इसके लिए तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक भ्रान्त रूढियो के विरुद्ध उन्होने एक अहिंसक आन्दोलन किया। उन्होने जनता को स्पष्ट शब्दो मे बताया कि मनुष्य का कल्याण बाह्य क्रियाकाण्डो के ही द्वारा नही होता, अपितु आत्मा के गुणो का विकास करने से होता है। यज्ञ के नाम पर की जाने वाली जीव हिंसा का उन्होने अपने उपदेशो मे घोर विरोध किया। उस समय की अधिकाश धार्मिक व्यवस्था ब्राह्मण वर्ग के हाथ की कठपुतली बनी हुई थी। जातिवाद के सहारे ब्राह्मण धर्म गुरु समाज के सत्ताधारी अगुवा बन बैठे थे।

महावीर ने जाति-पाति के भेद-भाव के विरुद्ध पूरी शक्ति से सिंहनाद किया। उन्होने डके की चोट इस सत्य की उद्घोषणा की कि धर्म पर मानव मात्र ही नही बल्कि प्राणीमात्र का अधिकार है। धम किसी जाति अथवा व्यक्ति विशेष की बपौती नही है। धर्म उसी का कल्याण करता है, जो मन, वचन और शरीर से धर्म करता है। भगवान् के प्रचार के कारण, तत्कालीन अन्धविश्वासो के दुर्ग भूमिसात होने लगे। ब्राह्मण गुरुओ की प्रतिष्ठा के सिंहासन हिल उठे। महावीर की धर्मक्रान्ति का ज्वालामुखी चतुर्मुखी होकर फूट पडा। भगवान् महावीर के सचोट और सक्रिय उपदेशो ने जनता मे आध्यात्मिक क्रान्ति की लहर व्याप्त कर दी। जनता का सोया अथवा अपने स्वरूप को भूला हुआ सिंहत्व जाग पडा। हिंसामय धर्म कृत्यो के प्रति जनता मे घृणा के भाव उत्पन्न हो गए। एक प्रकार से समूचे देश की काया ही पलट गई।

केवली पद प्राप्त होने के बाद भगवान् की पहली देशना मे सिर्फ देवता ही देवता सम्मिलित हुए थे। मनुष्य कोई भी उपस्थित नही था। इसलिए वहा कोई भी व्रत प्रत्याख्यान नही ले सका। जैनागम मे इस घटना को आश्चर्य (अछेरा) माना गया है। क्योकि तीर्थङ्करो का दिया गया उपदेश कभी निष्फल नही होता।

भगवान् को दूसरी 'देशना' अपापा नगरी के महासेन उद्यान मे हुई थी। उन 'दिनो' इस नगरी मे 'सोमिल' नामक प्रसिद्ध विद्वान् के यहा एक बडा भारी यज्ञ हो रहा था। इस यज्ञ मे भाग लेने के लिए बडी दूर दूर से बडे-बडे धुरधर विद्वान् आये थे । इन्द्रभूति आदि उस समय के उच्चकोटि के ग्यारह महा पडित भी अपने ४४०० शिष्यो सहित यज्ञमे सम्मिलित थे। इन्द्रभूति को अपने पाण्डित्य का बडा गर्व था। वह अपने पाच सौ शिष्यो को लेकर शास्त्रार्थ करने के लिए भगवान् के समवशरण मे आया। भगवान् की शात मुद्रा देखकर तथा उनको अमृतवाणी का पान करके उसके सब सदेह धुल गए। वह उसी समय अपने शिष्यो सहित भगवान् के पास दीक्षित हो गया। इसी प्रकार शेष दस विद्वानो ने भी अपनी शिष्य मण्डली के साथ दोक्षा लेली। भगवान् ने इन ग्यारहो विद्वानो को त्रिपदी का उपदेश दिया, जिससे उन्होने द्वादशाङ्गी वाणी की रचना की। अपने इन ग्यारह प्रमुख शिष्यो को भगवान् ने गणधर पद पर नियुक्त कर दिया। यहा पर भगवान् ने चतुर्विध तीर्थ की रचना करके साधु साध्वी श्रावक श्राविका इन चारो को अपने अपने कर्तव्य पालन की व्यवस्था प्रदान की। ग्यारह गणधरो के नाम ये है –

(१) इन्द्र भूति (२) अग्नि भूति (३) वायु भूति (४) व्यक्त (५)

सुधर्मा स्वामी (६) मण्डित पुत्र (७) मौर्य पुत्र (८) अकम्पित (९) अचल भ्राता (१०) मेतार्य और ११ वें प्रभास स्वामी।

भगवान् के सघ मे सभी वर्ग के लोगो को समान अधिकार प्राप्त थे। नर के समान ही नारी को भी धर्म करने का पूरा अधिकार था। यही कारण है कि भगवान् के शासन मे उस समय १४ हजार साधु थे। भिक्षुणी सघ मे ३६ हजार साध्विया थी। इनका नेतृत्व चम्पानगरी के दधिवाहन महाराज की पुत्री महासती चन्दन बाला के हाथ मे था। दूसरी ओर उनका उपासक वर्ग भी बडा ही विस्तृत था। श्रेणिक, कुणिक, वेशालीपति चेटक, अवन्तिपति चण्ड, प्रद्योतन अनेक प्रमुख राजा उनके गृहस्थ शिष्य थे। आनन्द कामदेव आदि अनेक श्रावक थे। शालिभद्र और धन्ना जैसे वैश्य, हरिकेशी और मेतार्य जैसे शूद्र भी भगवान् के शिष्य थे। बारह व्रतधारी श्रावको की सख्या एक लाख उनसठ हजार की थी।

रेवती, सुलसा, जयन्ति आदि श्राविकाएं थी। जो जीवादि तत्वो का यथार्थ ज्ञान रखती थी। समवशरण जैसी विराट् सभा मे जयन्ति देवी के मार्मिक प्रश्नोत्तर "भगवती सूत्र" मे सूत्र बद्ध होकर आज भी जनता की जीवन समस्या का समाधान करते है। बारह व्रतधारिणी श्राविकाओ की सख्या तीन लाख अठारह हजार थी, इस प्रकार भगवान् महावीर का चतुर्विध सघ अत्यत सुदृढ था। शासन व्यवस्था बडी ही सुन्दर थी। उसमे गणधर, आचार्य, गणि, उपाध्याय, प्रवर्तक, प्रवर्तनी आदि पदो के रूप मे सत्ता का विकेन्द्रीकरण बहुत ही सुन्दर ढग से किया गया था। प्रत्येक वर्ण तथा जाति के लोग भगवान् के अनुयायी थे।

आचार पक्ष और परिनिर्वाण

आचार का अर्थ यदि केवल बाह्य क्रिया-काण्ड ही लिया जाय

तो उस समय उसका अत्यधिक प्रचार था। भगवान् महावीर हिंसात्मक आचार के प्रबल विरोधी थे। जहा हिंसा है वहा धर्म नही और जहा धर्म है वहा हिंसा नही। धर्म के नाम पर मूक पशुओ के जीवन से खिलवाड करना केवल आत्म प्रवचना है। हिंसात्मक-क्रिया काण्डो से कभी भी मुक्ति प्राप्त नही हो सकती। महावीर के सघ मे आचार का प्रथम सोपान अहिंसा को माना गया है। गृहस्थ हो या साधु, क्षत्रिय हो या वैश्य तथा ब्राह्मण हो या शूद्र जिस किसी को भी आत्म कल्याण करना है तो उसके लिए अहिंसा का पालन सर्वथा अनिवार्य है। जहा अहिंसा है वही सत्य है। सत्य पालन के लिए अचौर्य व्रत आवश्यक है। ब्रह्मचर्य व्रत इन सब व्रतो की मूलधुरा है। अपरिग्रह अर्थात् सग्रह वृत्ति का निरोध-जीवन शाति का मूल मत्र है। भगवान् पार्श्वनाथ के शासन तक चतुर्याम धर्म का प्रचलन था। भगवान्, महावीर ने द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भाव के अनुसार उसे पच महाव्रत के रूप से प्रचारित तथा प्रसारित किया।

भगवान् महावीर की अहिंसा प्रधान उपदेश प्रणाली ने आचार मार्ग को एक अहिंसात्मक व्यवहारिकता प्रदान की। भगवान् के समस्त सिद्धान्तो को मुख्यतया हम चार विभागो मे समझ सकते है। उनमे सर्व प्रथम है अहिंसावाद। किसी भी जीव को मन, वचन, तथा शरीर से कोई भी दुख न देना अहिंसा की साधारण परिभाषा है। कृत, कारित और अनुमोदित इन तीन रूपो मे उसका सूक्ष्म महत्व निहित है।

दूसरा है कर्मवाद। यह जीवात्मा अनादि कालसे आठ कर्मो के बधनो मे बधा चला आ रहा है। समस्त कर्मो से मुक्ति ही आत्मा की सर्वोत्कृष्ट दशा है। कर्म मुक्ति से ही आत्मा परमात्मा बनता है। तीसरे साम्यवाद सिद्धान्त के द्वारा

भगवान ने जाति-पांति, ऊंच-नीच, अमीर-गरीब और वर्ग, वर्ण तथा लिंग भेद को समाप्त करके आत्मा के असली रूप का जनता को परिचय दिया। भारत की पद दलित नारी जाति के लिए यह सिद्धान्त एक वरदान के रूप मे सिद्ध हुआ। चौथे स्याद्वाद सिद्धान्त के तो 'ही' के स्थान पर 'भी' का प्रयोग देकर सभी झगडो को ही समाप्त कर दिया। बौद्धिक पक्ष मे 'भी' भगवान् महावीर का उपदेश समस्त ससार के लिए महान् उपकारी सिद्ध हुआ। भगवान् का कोई भी प्रवचन ऐसा नही है जो बुद्धि की कसौटी पर खरा न उतरता हो

इस प्रकार भगवान् ने अपने जीवन के ४२ चातुर्मास धर्म प्रचार मे व्यतीत किये। आरम्भ से लेकर अन्त तक उनके प्रत्येक चातुर्मास का प्रचार क्रम बढता ही रहा उसमे कही भी शिथिलता नही आ पाई।

भगवान् ने अपने साधु जीवन का प्रथम चातुर्मास अस्थिग्राम मे किया था। उनका अन्तिम चातुर्मास पावापुरी के हस्तिपाल राजा की पौषध शाला मे हुआ। यही पर नौ मल्लि और नौ लच्छि राजाओं को अपना अन्तिम उपदेश देते हुए कार्तिक कृष्णा अमावस्या को रात्रि के चौथे पहर मे भगवान का निर्वाण हुआ। भगवान् निर्वाण के समय की उम्र ७२ वर्ष की थी।

भगवान् की सयम साधना एक आदर्श साधना थी। उनके जीवन मे असाधारण प्रभाव था। अपने प्रचारो तथा प्रवचनो मे उन्होने तत्कालीन लोक भाषा का ही प्रयोग किया था, इसी करण अधिक से अधिक जनता उनके मार्ग की ओर आकर्षित हो पाई थी उस समय संस्कृत का प्रचार भी प्रचुर मात्रा मे था। किंतु उसका अध्ययन अध्यापन अधिकतर ब्राह्मणो के हाथो मे ही था।

इसलिए साधारण जनता उसे अपने आप आसानी से नही समझ सकती थी । अधिक जनता सस्कृत से अनभिज्ञ थी । दूसरी ओर भगवान् के द्वारा प्रयुक्त प्राकृत भाषा (तत्कालीन अर्ध मागधी) सब की समझ मे आने वाली सरल भाषा थी। इस भाषा मे दिया गया तत्वज्ञान सब की समझ मे आसानी से आ जाता था । यही कारण है कि उनके उपदेशो का प्रसार अति वेग के साथ जनता मे हो गया ।

अन्य धर्म प्रवर्तक

भगवान् महावीर के समय मे और भी अनेक सम्प्रदाएं भारत मे प्रचलित थी । उनके भिन्न-भिन्न सिद्धान्त थे। उन दिनो देश मे महात्मा बुद्ध का काफी प्रचार बढ रहा था। ये बौद्ध धर्म के प्रवर्तक माने जाते है । इनके पिता 'कपिलवस्तु' के राजा शुद्धोदन थे । बुद्ध की माता का नाम मायादेवी था । इन्होने ससार से विरक्त होकर राज ऐश्वर्य का परित्याग कर दिया था। अपनी पत्नि तथा पुत्र को सुप्त अवस्था मे ही छोडकर ये बनो की ओर चल पडे और सन्यासी बन गये। महात्मा बुद्ध ने मध्यम मार्ग पर विशेष बल दिया । उनका प्रमुख सिद्धान्त "क्षणिक वाद" था । हिंसा, जातिवाद, वाह्य क्रिया काण्ड, और धर्म के नाम पर होने वाले पाखण्डो का म० बुद्ध ने भी अपनी शक्ति के अनुसार विरोध किया था। महात्मा बुद्ध और भगवान् महावीर का आपस मे साक्षात् कार भी हुआ था, ऐसा बौद्ध धर्म ग्रथो से प्रमाणित होता है । महात्मा बुद्ध ने भी अपने प्रवचनो मे कुछ ऐसे ही शब्दो का प्रयोग किया था जैसे कि भगवान् महावीर किया करते थे । तुलनात्मक दृष्टि से भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध के जीवन को इस प्रकार जाना जा सकता है —

	भग० महावीर	महात्मा बुद्ध
पिता	सिद्धार्थ राजा	शुद्धोधन
माता	त्रिशला	महामाया
गोत्र	काश्यप	काश्यप
ग्राम	क्षत्रिय कुण्ड ग्राम	कपिल वस्तु
जाति	ज्ञात	शाक्य
जन्म	ईसा से पूर्व ५६६	ई. पू. ६००
पत्नि	यशोदा	यशोधरा
संतान	प्रियदर्शना पुत्री	राहुल पुत्र
दीक्षा	३० वर्ष की उम्र मे	२६ वर्ष की उम्र मे
तप	१२॥ वर्ष	६ वर्ष
ज्ञान प्राप्ति स्थान	ऋजु वालिका तट	गया
निर्वाण	वि स से ४७० वर्ष पूर्व	वि स से ४८५ वर्ष पूर्व
निर्वाण स्थान	पावापुरी	कुशीनगर
आयुष्य	७२ वर्ष	८० वर्ष
व्रत	पचमहाव्रत	पंचशील
सिद्धान्त	अनेकान्तवाद	क्षणिकवाद

भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध के सिद्धातो मे अनेक समानताए भी है। दोनो ही श्रमण सस्कृति के उदीयमान नक्षत्र थे। जैन सस्कृति और बौद्ध सस्कृति का मूल प्रेरणा-स्रोत लगभग एक जैसा ही है। कितने ही ऐतिहासिक विद्वान् तो यह मानते हैं कि महात्मा बुद्ध भगवान् पार्श्वनाथ जी की सम्प्रदाय के ही साधु थे। किन्तु श्रमण धर्म की कठिन साधना से घबराकर उन्होने बौद्ध धर्म के नाम से मध्यम मार्ग को अपनाया। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् प० धर्मानन्द कौशाम्बी ने तो अपनी 'पार्श्वनाथाच्या चारयाम' नामक पुस्तक मे यहा तक प्रमाणित किया है कि

महात्मा बुद्ध ने भगवान् पार्श्वनाथ के चारयाम धर्म का ही पचशील अथवा अष्ट अङ्ग के नाम से विकास किया है ।

महात्मा बुद्ध और भगवान् महावीर के अतिरिक्त तत्कालीन धर्म प्रवर्तको मे मखली पुत्र गोशालक का भी अपना एक प्रमुख स्थान था । गोशालक ने 'आजीविक' सम्प्रदाय की स्थापना की थी । इस सम्प्रदाय को भी उस समय मे पर्याप्त महत्त्व मिला था । सम्राट् अशोक के शिला-लेखो मे 'आजोविक' सम्प्रदाय का स्पष्ट उल्लेख मिलता है । अशोक के पौत्र दशरथ ने भी उनके लिए गुफाए भेट की थी । इन प्रमाणो से गोशालक के तत्कालीन प्रभाव का पता चलता है ।

गोशाला मे जन्म लेने के कारण इसका नाम गोशाला पडा था । वास्तव मे ये यह भिक्षाचार का पुत्र था । वह जितना विलक्षण था उतना ही उच्छृङ्खल भी था । उसे भगवान् महावीर से ज्ञान की प्राप्ति हुई थी किन्तु प्राप्त ज्ञान के घमड के कारण उसके विचार पलट गए । वह अनुमानत छ वर्ष तक भगवान् के साथ रहा और बाद मे उनसे पृथक् हो गया । अलग होकर इसने आजीविक सम्प्रदाय की स्थापना की इसका मुख्य सिद्धान्त नियतिवाद था । गोशालक के जीवन काल मे तो यह सम्प्रदाय कुछ कुछ पनपा भी परन्तु मृत्यु के बाद तो इसका प्रभाव दिनो दिन कम होता चला गया । आज तो उसका नाम मात्र ही शेष है प्रसिद्ध जैन आगम भगवती सूत्र मे गोशालक का वर्णन विस्तार पूर्वक दिया गया है ।

इसके अतिरिक्त 'पूर्ण काश्य' ने अक्रियावाद की, ककुद कात्यायन ने शाश्वतवाद की, अजितकेशकम्बलो ने उच्छेद-

वाद या भूत वाद की, और सजय वेलट्ठिपुत्त ने अनिश्चितवाद की स्थापना की।

इन सभी धर्म प्रवर्तको के साथ भगवान् महावीर का दार्शनिक आचार-विचार विषयक मतभेद था। आचार मे अहिंसा और विचार मे 'अनेकान्त' ये दोनो ही भगवान् महावीर के मुख्य सिद्धान्त हैं।

भ० महावीर की शिष्य परम्परा

भगवान् महावीर के शिष्य परिवार का हम पिछले पृष्ठो मे सकेत कर आये है। उनमे कुछ विभूतिया ऐसी है, जिनका भारतीय मस्कृति पर विशेष उपकार है। उन विभूतियो के आत्म-बलिदान ने श्रमण परम्परा को जो गौरव प्रदान किया है वह कभी भी भुलाया नही जा सकता। आज जिस किसी भी रूप मे 'जैन-साहित्य' अथवा 'जैन आगम परम्परा' हमे प्राप्त है, उसमे इन महान् आत्माओ का विशेष योगदान रहा है।

गौतम गणधर

इनका मूल नाम इन्द्रभूति था। गौतम इनका गोत्र था। ये अपने युग के प्रकाण्ड पण्डित थे। जैन आगमो मे स्थान-स्थान पर इनका उल्लेख मिलता है। आप मगध की राजधानी राजगृह के पास गोबर ग्राम के रहने वाले थे। जैन परम्परा मे गौतम को लब्धियो का भण्डार माना है। आगम साहित्य का अधिकाश भाग महावीर और गौतम के सम्वाद रूप मे है। गौतम और महावीर के ये प्रश्नोत्तर मानव जीवन की गुत्थियो को बडे ही सहज भाव से सुलझाते हैं। भगवान् महावीर के प्रति गौतम का अटूट अनुराग था। ये चार ज्ञान, चौदह पूर्व के धर्ता थे। अपने

समय के घोर तपस्वी थे। गौतम के जीवन मे एक से बढकर एक विशेष गुण थे। उनका पाण्डित्य महान् था फिर भी उनमे अहकार नही था। सदा सत्य को स्वीकार करना उनकी विशेषता थी। वाणिज्य ग्राम के आनन्द गाथापति को अवधिज्ञान होने पर भी एक बार गौतम ऐसा कह बैठे कि श्रावक को इतना बडा अवधि ज्ञान नही हो सकता। भगवान् के पास जाते ही गौतम को अपनी भूल का ज्ञान हो गया। वे उसी घडी श्रावक से क्षमा याचना करने आनन्द के घर आये। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि गौतम विनय की साक्षात् मूर्ति थे।

गणधर गौतम विद्वान् तो थे ही, साथ ही साथ उनमे 'प्रतिबोध देने की भी विलक्षण प्रतिभा थी। पृष्ठ चम्पा के गागील नरेश को प्रतिबोध देने के लिए भगवान् महावीर ने गौतम को ही भेजा था। अष्टापद पर्वत से उतरते हुए पन्द्रह सौ तीन तापसो को गौतम ने ही अपने सहज प्रतिबोध के द्वारा श्रमण धर्म मे दीक्षित किया था।

प्रतिबोधन शक्ति के साथ साथ उनकी समन्वयात्मक विचार धारा भी विशेष महत्व की थी। भगवान् पार्श्वनाथ के अनुयायी केशीकुमार श्रमण को पाच सौ शिष्यो सहित महावीर सघ मे सम्मिलित करने का श्रेय भी गौतम स्वामी को ही प्राप्त हुआ था। उत्तराध्ययन सूत्र के २३वे अध्याय मे केशी गौतम सम्वाद का बडा ही रोचक तथा तात्विक विवेचन मिलता है।

भगवान् महावीर के शासन मे गौतम ही सर्वोपरि सघसचालक माने गये है। चारो तीर्थों का पूर्ण उत्तर-दायित्व उन्ही के हाथो मे था। जब श्री गौतम को केवल ज्ञान प्राप्त हो गया

तो उन्होने सघ का समस्त उत्तर-दायित्व पचम गणधर श्री सुधर्मा को सौप दिया। जैन परम्परा के अनुसार केवली भगवान् सघ का सचालन नही करते। क्योकि उस समय उनकी वीतराग अवस्था होती है। सघ का समस्त दायित्व छद्मस्थ मुनिराज ही वहन करते है।

गौतम ने ५० वर्ष की आयु मे दीक्षा ली थी। ३० वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था मे रहे थे और बारह वर्ष तक केवली पर्याय निभाकर अन्त मे सत्य धर्म का निर्भीक प्रचार करते हुए राज-गृह नगर के वैभारगिरि पर्वत पर मुक्त हुए।

गणधर सुधर्मा

ये कोल्लाक सन्निवेश के अग्नि वैश्यायन गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनका जन्म विक्रम से ५५१ वर्ष पूर्व हुआ था। ये भी श्री इन्द्र-भूति के साथ ही भगवान् महावीर के पास दीक्षित हुये थे। ये अपने समय के उच्चकोटि के विद्वान् थे। श्रमणसघ-परम्परा मे आर्य सुधर्मा को सर्वप्रथम आचार्य माना गया है। भगवान् महावीर के शासन को सत सुधर्मा ने बडी ही कुशलता से चलाया था। गौतम को केवल ज्ञान होने पर सघ का उत्तर-दायित्व आप पर आ गया था। ग्यारह गणधरो मे से पहिले और पाचवे को छोडकर शेष नौ गणधर तो भगवान् के सन्मुख ही निर्वाण प्राप्त कर गए थे। अस्तु। गौतम स्वामी को केवल ज्ञान प्राप्त होने के बाद श्री सुधर्मा को सघ-संचालन का अधिकार प्राप्त हो गया था। स्थविर-परम्परा मे श्री सुधर्मा स्वामी को सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। आप द्वादशाङ्गी वाणी के अनन्य श्रोता है। गौतम के प्रश्न के उत्तर मे भगवान् महावीर ने जो भी कुछ कहा है उसे श्री सुधर्मा ने बडे ही ध्यान से सुना है। तभी तो आगम मे

उन्होने स्थान-स्थान पर "सुय मे आउस तेण भगवया एवमक्खाय" इस वाक्य का प्रयोग किया है-।

श्री सुधर्मा ने ५० वर्ष की आयु मे दीक्षा ली और ९२वे वर्ष की आयु मे उन्हे केवल ज्ञान प्राप्त हुआ था। उस समय भगवान् को निर्वाण हुए १२ वर्ष हो चुके थे। सौ वर्ष की आयु मे राजगृह नगर के वैभारगिरि पर आप मुक्त हुए।

आर्य जम्बू स्वामी

इनके पिता का नाम श्रेष्ठि ऋषभदत्त और माता का नाम धारिणी था। राजगृह नगर के धनकुबेरो मे श्रेष्ठि ऋषभदत्त का प्रमुख स्थान था। जम्बू अपने पिता के इकलौते पुत्र थे। वीर निर्वाण से १६ वर्ष पूर्व जम्बू कुमार का जन्म हुआ था। सोलह वर्ष की अवस्था मे इनका आठ श्रेष्ठि-कन्याओ के साथ विवाह हुआ था। ९९ करोड की सम्पत्ति इन्हे दहेजस्वरूप प्राप्त हुई थी। आचार्य सुधर्मा का उपदेश सुनकर इन्हे वैराग्य हो गया। रात्रि मे जिस समय ये अपने माता-पिता तथा स्त्रियो से दीक्षा की अनुमति प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे थे उसी समय दस्युराज प्रभव अपने ४९९ साथियो के साथ इनके घर मे घुस आया। जम्बू कुमार की वाणी का इसके हृदय पर बडा ही अमिट प्रभाव पडा। जम्बूकुमार के साथ जहा २७ पारिवारिक जनो ने दीक्षा ग्रहण की वही प्रभवप्रमुख ५०० चोर भी भगवान् सुधर्मा स्वामी के पास दीक्षित हो गये। जम्बूकुमार का वैराग्य भाव बडा ही उत्कृष्ट था।

वर्त्तमान मे आगमसाहित्य का अधिकाश भाग श्री सुधर्मा-स्वामी के द्वारा श्री जम्बू को सुनाया हुआ है। श्री जम्बूमुनि एक विलक्षण बुद्धि के धनी थे। जैन इतिहास के अनुसार

जम्बू स्वामी इस अवसर्पिणी काल के अन्तिम केवली माने गये है। बारह वर्ष तक आपने श्री सुधर्मास्वामी से ज्ञानाभ्यास किया और अनेक प्रकार की आगम-वाचनाएँ ली। वीर सम्वत् १ मे आपने दीक्षा ग्रहण की थी। वीर-निर्वाण सम्वत् १३ मे जब श्री सुधर्मा स्वामी केवली हो गये तो श्री जम्बू स्वामी आचार्य बने। आप आठ वर्ष तक आचार्य पद पर रहे। वीर सम्वत् २० मे आपको केवल ज्ञान प्राप्त हुआ और ४४ वर्ष तक अविचल रूप मे अपनी केवलज्ञान-प्रतिभा से जनता को लाभान्वित करते रहे। वीर निर्वाण सम्वत् ६४ मे ८० वर्ष की आयु मे आप मथुरा नगरी मे मुक्त हुए।

जैन इतिहासो मे श्रमण-परम्परा का जितना विस्तृत और शृंखलाबद्ध इतिहास मिलता है उतना साध्वी-परम्परा का नही मिलता। भगवान् महावीर के काल मे आर्या चन्दन बाला के अनुशासन मे चलने वाली अनेक महासतियो का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। बाद मे इनके इतिहास का शृङ्खलाबद्ध वर्णन प्राप्त नही होता। आर्य जम्बूस्वामी के साथ दीक्षित होने वालो मे स्त्रियाँ भी थी। इससे यह तो स्पष्ट होता है कि उस समय भी साध्वी-सघ नियमित रूप से चल रहा था। सघ-सगठन मे साध्वियो का सहयोग सदा से ही रहता आया है। स्त्रीसमाज मे धार्मिक चेतना जागृत करने का श्रेय मुख्यतया हमारी साध्वी-समाज को ही है। इनके इतिहास के लिए भी इतिहासकार बधुवो को विशेष प्रयत्न करना चाहिए।

आचार्य प्रभव स्वामी

ये विंध्याचल पर्वत के निकटवर्ती जयपुर नगर के विंध्य' राजा के पुत्र थे। विंध्य राजा कात्यायनगोत्रीय क्षत्रिय थे। पिता

से अनबन हो जाने के कारण प्रभवकुमार अपने ४९९ साथियो को साथ लेकर राज्य से निकल पडे। अमीरो को लूटना और उनका धन गरीबो मे बाटना यह इनका प्रमुख कार्य था। जनता मे चारो ओर इनका आतक छाया हुआ था। घूमते-घामते, लूट मार करते एक बार प्रभवकुमार राजगृही नगरी मे आपहुँचे। यहा जम्बूकुमार और उनकी पत्नियो के सम्वाद को सुनकर इनका हृदय पलट गया। अपने चोरी कर्म से इन्हे घृणा हो गई और अन्त मे जम्बू कुमार के साथ भगवान् सुधर्मास्वामी के पास दीक्षित हो गए। अब दस्युराज प्रभव ऋषिराज प्रभव हो गए। प्रभव मुनि अपने समय के उग्रतपस्वी तथा आगमाभ्यासी थे, जम्बू-स्वामी के शासन मे अनेक राजा-महाराजा भी दीक्षित थे किन्तु पट्टधर होने का जो गौरव इन्हे प्राप्त हुआ वह अन्य किसी को नही मिला। श्री जम्बूस्वामी के केवली होने के बाद श्री प्रभव ही सघ के आचार्य बने।

तीस वर्ष की आयु मे आपने दीक्षा ली थी और २० वर्ष तक तपश्चरण तथा ज्ञानाभ्यास करके ५० वर्ष की आयु मे आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। वीर सम्वत् ७५ मे १०५ वर्ष की आयु पूर्ण करके आप स्वर्गवासी हुए। अनेक इतिहासकार इनका स्वर्गवास-स्थान 'मथुरा' नगरी मानते हैं।

आर्य शय्यंभवाचार्य

आप राजगृही के निवासी वत्सगोत्री ब्राह्मण थे। एक समय आप एक यज्ञ कर रहे थे, उन्ही दिनो आपकी आचार्य प्रभव से भेट हुई। जैनाचार्य प्रभव के उपदेशो से प्रभावित होकर आप मुनि-धर्म मे दीक्षित हो गए।

दीक्षा लेते समय आपकी पत्नी गर्भवती थी। बाद मे इनके 'मनक' नामक पुत्र हुआ। एक बार चम्पा नगरी मे पिता और पुत्र की भेट हुई। पिता के त्याग वैराग्य से प्रभावित होकर 'मनक' ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली।

अपने ज्ञान मे पुत्र की आयु केवल छ मास की शेष जानकर आपने उसे अल्प काल मे ही साध्वाचार का ज्ञान कराने के लिए पूर्वसाहित्य मे से 'दशवैकालिक सूत्र' का सकलन किया। दशवैकालिक सूत्र का रचनाकाल वीर-निर्वाण सम्वत् ८२ के आस-पास माना जाता है। यह एक प्रारम्भिक आचार शास्त्र है। आज भी प्रत्येक दीक्षार्थी को यह शास्त्र सर्वप्रथम पढाया जाता है।

श्री प्रभवस्वामी के बाद आर्य शय्यभव आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए थे। आपने २८ वर्ष की आयु मे दीक्षा ली, ३४ वर्ष तक सामान्य मुनि-जीवन व्यतीत किए, और २३ वर्ष तक युग-प्रधान आचार्य पद पर रहे। इस प्रकार ८५ वर्ष की आयु पूर्ण करके वीरनिर्वाण सम्वत् ६८ मे स्वर्गवासी हुए।

आर्य यशोभद्र

आर्य यशोभद्र तुगियायन गोत्र के विद्वान् ब्राह्मण थे। अपने समय के ये वेदो के प्रकाण्ड पण्डित थे। आप आचार्य शय्यभव के शिष्य थे। आचार्य यशोभद्र के जीवन के विषय मे विस्तृत जानकारी उपलब्ध नही होती। प्राचीन इतिहास से इतना अवश्य संकेत मिलता है कि विदेह मगध, और अ ग आदि देशो मे आपने अहिंसा धर्म का अथक प्रचार किया था। तत्कालीन राजा नन्द के वश पर आपका विशेष प्रभाव था।

आर्य यशोभद्र ने २२ वर्ष की अवस्था मे दीक्षा ली थी और

१४ वर्ष तक निर्दोष सयम का पालन किया। ३६ वर्ष की अवस्था मे आप आचार्यपद पर प्रतिष्ठित हुए। अन्त मे ८६ वर्ष की आयु मे आपका स्वर्गवास हुआ। इनका स्वर्गगमन-काल वीर सम्वत् १४८ माना जाता है।

आर्य सम्भूतिविजय

ये यशोभद्र जी के शिष्य थे। जाति से माठरगोत्रीय ब्राह्मण थे। इनका पाण्डित्य बडा ही विशाल था। ब्रह्मचर्य की साक्षात् प्रतिमा थे। श्री स्थूलिभद्र जी आपके ही शिष्य थे। आपका शिष्य परिवार बहुत ही विस्तृत था। कल्पसूत्र स्थविरावली में इनके प्रमुख शिष्यो का उल्लेख मिलता है। पाटली पुत्र के महामत्री शकडाल की सातो पुत्रियाँ भी आपके उपदेश से प्रव्रजित हुई थी। ये सातो स्थूलिभद्र की बहिने थी।

श्री सम्भूति विजय जी ने ४२ वर्ष की आयु मे दीक्षा ली और ४८ वर्ष तक साधु-पर्याय मे रहे। आठ वर्ष तक आप युगप्रधान आचार्यपद पर रहे और अन्त मे वीर सम्वत् १५६ मे ९० वर्ष की पूर्ण आयु मे स्वर्गवासी हुए। महा प्रभावक आचार्य भद्रबाहु स्वामी आपके ही लघु गुरुभ्राता थे।

यहा यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि भगवान् महावीर से लेकर अब तक श्रमण--परम्परा अविच्छिन्न रूप से चली आरही थी। उसमे कोई भेद-भाव नही था। श्रमणो के समान ही श्रमणी वर्ग का सगठन भी सुचारु रूप से चल रहा था, मूल आगमो मे केवल दो ही प्रकार के साधको का उल्लेख मिलता है। एक सचेलक दूसरे अचेलक। भगवान् महावीर के समय मे भी ये दोनो ही साधना दशाये थी। उस समय कुछ साधु सचेलक (सवस्त्र) भी थे। सभव है यह सचेलक और अचेलक परम्परा ही आगे चलकर दिगम्बर और श्वेताम्बर का रूप ले गई हो।

प्रकरण तीसरा

आचार्य भद्रबाहु स्वामी

आर्य भद्रबाहुस्वामी मौर्य चन्द्रगुप्तकालीन थे। सम्राट् चन्द्रगुप्त भद्रबाहु स्वामी के अनन्य उपासक थे। अनेक इतिहास-कार इस तथ्य को स्वीकार करते है कि भद्रबाहु स्वामी के प्रभाव से ही चन्द्रगुप्त जैन धर्म के श्रद्धालु बने थे।

आचार्य भद्रबाहु स्वामी आर्य यशोभद्रजी के शिष्य थे। ये प्राचीनगोत्रीय ब्राह्मण थे। दर्शनशास्त्र तथा ज्योतिष विद्या के उद्भट विद्वान् थे। प्रतिष्ठानपुर नामक नगर मे आपका जन्म हुआ था। श्रुतकेवली-परम्परा मे ये पचम श्रुतकेवली माने जाते है। चतुर्दश पूर्व ज्ञान के धारक थे। इनके बाद कोई भी चतुर्दश पूर्वधारी नही हुआ। इसीलिए इन्हे अन्तिम श्रुतकेवली कहा जाता है। आजकल पर्यूषण पर्व के दिनो मे पढा जाने वाला कल्पसूत्र इन्ही के द्वारा रचित है। उपसर्गहर स्तोत्र के भी आप ही रचयिता हैं। आपने आगम पर अनेक अर्धमागधी-प्राकृत भाषा मे टीकाएँ की हैं। आपकी तत्त्व-विवेचन शैली बडी ही विलक्षण है।

अनेक सूत्र, नियुक्ति तथा स्तोत्रो के साथ-साथ आपने कथा-साहित्य भी लिखा था। सवा लाख गाथाओ मे वासुदेव-चरित्र आपका ही लिखा हुआ है। आपने भद्रबाहुसहिता नामक एक ज्योतिष ग्रन्थ का भी निर्माण किया था।

बराहमिहिर सहिता के निर्माता श्री बराहमिहिर आर्य भद्र-बाहु के छोटे भाई थे। दोनो भाइयो ने साथ साथ ही दीक्षा ली थी। स्थूलिभद्र को आचार्य पद देने के कारण वराहमिहिर ने साधु-वेष छोड दिया था और वह भद्रबाहु का विरोध करने लगा था।

वीर सम्वत् १५५ के आस पास भारत से नन्द-साम्राज्य प्राय समाप्त हो चुका था और मौर्य चन्द्रगुप्त का शासन स्थापित हो चुका था। इन्ही दिनो देश मे बारहवर्षीय दुष्काल पडा। दुष्काल के कारण साधुसघ कलिग मे चला गया। दुष्काल की समाप्ति पर पाटलीपुत्र मे आर्य स्थूलिभद्र की अध्यक्षता मे एक विशाल परिषद् एकत्रित हुई। परिषद् ने यथामति एकादश अङ्गो का सकलन तो कर लिया परन्तु बारहवा दृष्टिवाद शास्त्र किसी को याद नही था। इसके पूर्ण ज्ञाता उस समय केवल भद्रबाहुस्वामी ही थे। वे उन दिनो नेपाल मे महाप्राण साधना मे लीन थे। पाटली पुत्र परिषद् ने भद्रबाहु स्वामी को बुलाने के लिए दो साधु नेपाल भेजे। किन्तु भद्रबाहु स्वामी ने यह कहकर उन्हे वापिस कर दिया कि मै महाप्राण साधना कर रहा हूँ अत आने मे असमर्थ हूँ। श्रमण सघ को भद्रबाहू स्वामी के इस उत्तर से बडी निराशा हुई। उसने दो साधुओ के साथ फिर यह सदेश भिजवाया कि सघ की आज्ञा न मानने का क्या दण्ड होता है ? भद्रबाहु स्वामी ने उत्तर मे कहलवाया कि सघ की आज्ञा न मानने वाले को सघ

से वहिष्कृत कर देना चाहिए। मै स्वय भी इस दण्ड का भागी हूँ, परन्तु यदि कृपा करके सघ मेरे पास योग्य मुनिराजो को भेज दे तो मैं उन्हे दृष्टिवाद का ज्ञान भी दे सकूँगा। और अपनी महा-प्राण साधना भी करता रहूँगा। इस पर सघ ने स्थूलिभद्र के नेतृत्व मे ५०० मुनियो को नेपाल मे भद्रबाहु स्वामी के पास भेजा। शेष साधु तो कष्टो से क्लान्त होकर मार्ग मे ही रह गए। केवल स्थूलिभद्र ही नेपाल पहुँचे। स्थूलिभद्र ने आठ वर्ष मे आठ पूर्वो का अध्ययन कर लिया। एक दिन उन्होने भद्रबाहु स्वामी से पूछा कि भगवन्! अभी कितना अध्ययन और शेष है? उत्तर मे भद्रबाहु स्वामी ने कहा, वत्स! अभी तो तूँ विशाल समुद्र मे से केवल एक बिन्दुमात्र ही पढ पाया हैं। अभी तो बहुत अध्ययन शेष है। स्थूलिभद्र ने अब और सजग होकर पढना आरम्भ किया। अब तक वे केवल दो वस्तु न्यून दसवे पूर्व तक ही अध्ययन कर पाये। आगे अध्ययन नही कर सके। कुछ इति-हासकार ऐसा भी कहते है कि स्थूलिभद्र ने १० पूर्व तक तो अर्थ-सहित अध्ययन किया था, शेष चार पूर्व केवल मूल ही पढे थे। कुछ भी हो वे चौदह पूर्व का ज्ञान सर्वार्थरूप से ग्रहण नही कर सके। अत भद्रबाहु स्वामी ही अर्थ-सहित चतुर्दश पूर्व के पूर्ण ज्ञाता रहे। इनके बाद चतुर्दश पूर्व की ज्ञान-परम्परा लुप्त हो गई।

चन्द्रगुप्त राजा के द्वारा देखे गए १६ स्वप्नो का फल भी भद्रबाहु स्वामी ने ही बताया था। जिसमे वर्तमान पचमकाल की स्थिति का बडा ही स्पष्ट वर्णन हैं। भद्रबाहु स्वामी की पूर्व पट्ट-परम्परा के सम्बन्ध मे श्वेताम्बर तथा दिगम्बर मान्यताए भिन्न-भिन्न हैं। दोनो की पट्ट परम्परा मे नामो का भी अन्तर है। काल-गणना मे अन्तर है। पीछे कुछ भी अन्तर रहा हो पर भद्र-बाहु स्वामी को दोनो परम्पराए पचम श्रुत केवली मानती है।

श्री भद्रबाहु ४५ वर्ष तक गृहस्थ मे रहे। ६२ वर्ष की आयु में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। ३१ वर्ष आपने शुद्ध सयम का पालन किया। अन्त मे ७६ वर्ष की पूर्ण आयु में वीर सम्वत् १७० मे आपका स्वर्गवास हुआ।

तत्कालीन संघ स्थिति

श्री भद्रबाहु स्वामी और मगध के सम्राट् चन्द्रगुप्त दोनो समकालीन थे। सम्राट् चन्द्रगुप्त भद्रबाहु स्वामी के अनन्य उपासक थे। किसी किसी इतिहासकार ने तो उनका भद्रबाहु स्वामी के पास दीक्षित होना भी स्वीकार किया है। इतना तो अवश्य है कि चन्द्रगुप्त के सहयोग से मगध और उसके आस-पास जैन धर्म का प्रचार अनथक रूप से हुवा था। जहा तक तत्कालीन सघ-स्थिति का प्रश्न है, उस समय का सघ अत्यत सुदृढ था। तत्कालीन श्रावक समाज भी अत्यन्त सुदृढ था। भद्रबाहु जैसे चतुर्दश पूर्वधारी युगप्रधान आचार्य की इच्छा न होने पर भी सघ की आज्ञा को शिरोधार्य करना, सघ सम्मान का ज्वलत प्रमाण है। उन दिनो भद्रबाहु कर्नाटक मे थे और मगध मे स्थूलिभद्र। दोनो ही विभूतियो के सम्मान को सघ ने बडी ही दूरदर्शिता के साथ सुरक्षित रखा। उस समय का श्रावक सघ अपने उत्तरदायित्व को अच्छी तरह समझता था। सघ की समयज्ञता और सुसगठन के कारण कर्नाटक और मगध का पृथक् स्थान अस्तित्व मे होने पर भी दो आचार्य नही होने पाये। मगध के श्रावक सघ ने भद्रबाहु स्वामी के स्वर्गवास के बाद ही स्थूलि भद्र को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया।

आचार्य स्थूलि भद्र

ये नौवे नन्द राजा के मत्री शकडाल के पुत्र थे। आचार्य

सम्भूति विजय के पास आपने जैन मुनि दीक्षा धारण की थी। आप गौतमगोत्रीय ब्राह्मण थे। आपके छोटे भाई का नाम "श्रेयक" था। उन दिनो पाटलीपुत्र मे कोशा नाम की एक प्रसिद्ध सुन्दरी वेश्या रहती थी। स्थूलिभद्र एक दिन कोशा के रूपजाल मे फँस गये और पूरे बारह वर्ष तक आप वेश्या-विलास से न मुड सके। इसी बीच मे तत्कालीन महा पण्डित वररुचि के षड्यन्त्र से महामन्त्री शकडाल अपने ही पुत्र श्रेयक के हाथो मारे गए। स्थूलिभद्र के सन्मुख नन्द साम्राज्य के महामंत्री पद का प्रस्ताव आया। किन्तु पितृ-वियोग ने एक झटके मे स्थूलिभद्र के मन-मानस को बदल दिया और वे आचार्य सम्भूतिविजय के पास दीक्षित हो गए।

गुरु की आज्ञा से स्थूलिभद्र जी ने अपना प्रथम वर्षावास (चातुर्मास) कोशा वेश्या के महलो मे ही बिताया। कोशा ने स्थूलिभद्र को अपनी ओर आकर्षित करने के अनेक प्रयत्न किये किंतु उसके सब प्रयत्न असफल रहे। स्थूलिभद्र की इस दृढता ने कोशा के जीवन को बदल दिया और वह श्राविका बन गई।

चातुर्मास समाप्त होने पर स्थूलिद्रभ गुरु के चरणो मे उपस्थित हुए। उन्हे चातुर्मास की सफलता तथा कोशा के जीवन परिवर्तन के कारण गुरुजी की ओर से विशेष प्रशसा प्राप्त हुई। चातुर्मास तो अन्य मुनियो ने भी किए थे। किसी ने सापकी बम्बी पर किसी ने कुएँ की कोठ पर और किसी ने सिंह की गुफा के सामने। सिंह की गुफा के सामने चातुर्मास करने वाले मुनि स्थूलि भद्र की विशेष प्रशसा सुनकर क्षुब्ध होगए। इसबार वे स्वय चातुर्मास करने कोशा के यहा आये। किंतु एक ही झटके मे सिंह, शृगाल बन गया। मुनि जी अपने मार्ग से विचलित हो उठे।

कोशा की शिक्षा-भरी फटकार ने उन्हे पुन जागृत किया। वे सोधे श्री गुरुचरणो मे आये और आत्म-शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त लेकर कठोर सयम-साधना मे सलग्न हो गए।

स्थूलिभद्र सर्वोत्तम साधक होने के साथ २ परम प्रभावशाली शास्त्रज्ञ भी थे। वे भद्रबाहु स्वामी से दश पूर्वों को सार्थ तथा चार पूर्वों की मूल राशि प्राप्त करने की शक्ति के धनी थे। वे योग विद्या के भी प्रकाण्ड पडित थे। एक वार उनकी सात बहनें दर्शनार्थ उनके पास आई तो स्थूलिभद्र जो विकराल सिंह का रूप धारण करके बैठ गए। उनको बहिने को साध्वी रूप मे थी, डर कर वापिस चली गई। भद्रबाहु स्वामी ने इस चमत्कार-प्रदर्शन के कारण ही उन्हे पूर्वों का सम्पूर्ण अध्ययन नही कराया। उनकी यक्षा आदि बहिनो ने भी सूत्रो की अनेक चूलिकाएँ लिखकर आगम साहित्य की श्रीवृद्धि मे अपना सहयोग दिया।

आचार्य स्थूलिभद्र का प्रभाव बडा ही विशाल था। आर्य हागिरि और आर्य सुहस्ति आपके ही शिष्य थे। आपने अपने जोवनकाल मे अनेक भव्यात्माओ को जैन धर्म मे दीक्षित किया था। नन्द राज्य का उच्छेद और मौर्य साम्राज्य की स्थापना आपके ही सामने हुई थी। चन्द्रगुप्त बिन्दुसार, अशोक और कुणाल आप समकालीन थे। कौटिल्य अर्थ शास्त्र के निर्माता महा-पण्डित चाणक्य भी आपके तपोमय जीवन से प्रभावित हुआ था।

आपका जन्म वीरसम्वत् ११६ मे हुआ था और ३० वर्ष की अवस्था मे आपने दीक्षा ली थी। वीर सम्वत् १६० मे आप आचार्य पदपर प्रतिष्ठित हुए तथा वीर सम्वत् २१५ मे १५ दिन के अनशन से वैभार गिरिपर आपका स्वर्गवास हुआ।

श्रीभद्रबाहु स्वामी के स्वर्ग के पश्चात् उनकी सेवा में रहने वाले परम पण्डित विशाखाचार्य जब मगध मे आये तो उन्होने यहा साधुवो को उद्यानो और शहरो मे रहते हुए देखा। वे स्वयं अब तक जगलो मे ही सयम आराधना करते आये थे, अत यहा के साधुवो का व्यवहार-आचार उन्हे शिथिल सा जचा। इस विषय मे उनका आचार्य स्थूलिभद्र के साथ भी विस्तृत वार्तालाप हुआ, पर निष्कर्ष कुछ न निकल सका। विशाखाचार्य जिन कल्प' वृत्ति के हिमायती थे। स्थविर कल्प उनकी दृष्टि मे उचित नही था। सघ ने उन्हे कितने ही शास्त्रीय प्रमाणो से समझाया कि श्री जम्बू स्वामी के बाद से जिन कल्प का विच्छेद हो गया है। आचाराङ्ग आदि शास्त्रो के उद्धरण भी उनके सम्मुख रखे गये। केशी कुमार और गौतम जी के सम्वाद का वर्णन भी उन्हे सुझाया गया, किन्तु वे अपनी बात से बिलकुल भी न हिले। परिणामत उन्होने अपने साधुवो को तत्कालीन श्रमण वर्ग से अलग कर लिया। यहा यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है, कि विशाखाचार्य अपने साधुवो के साथ श्रमण वर्ग से अलग अवश्य हो गए—पर उन्होने कोई अलग सम्प्रदाय स्थापित नही किया। वे कठोर से कठोर साधना के लिए अपने सतो को प्रेरणा देते रहे।

कुछ इतिहासकारो का मत है कि विशाखाचार्य और स्थूलिभद्र के मत-भेद के कारण ही सघ मे श्वेताम्बर तथा दिगम्बर नाम के दो वर्ग हो गए।

आचार्य महागिरि

आचार्य महागिरि अपने समय के बड़े ही प्रभावशाली महापुरुष थे। आपने 'श्री जम्बूस्वामी के युग से विच्छिन्न हुई जिनकल्प साधना को विशेष रूप से अपनाया था। स्वयं आर्य

महागिरि और उनके शिष्य बडो कठोर सयम-साधना के धनी थे। नग्नता, वन-विहरण, कठोर तप तथा सर्वदा आत्म-चिन्तन मे रत रहना आदि उनके विशेष गुण थे। आचार्य स्थूलिभद्र जी के शिष्यो मे आपका सर्वप्रथम स्थान था।

इनका जन्म वीर सम्वत् १४५ मे हुआ था। १७५ वीर सम्वत् मे आपने दीक्षा ली थी और २१५ वीर सम्वत् मे आचार्य पद पर स्थापित हुए। वीर सम्वत् २४५ मे सौ वर्ष की आयु पूर्ण कर दशार्णपुर (मन्दसोर मालवा) मे आपका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य सुहस्ति

आर्य सुहस्ति भी आचार्य स्थूलिभद्रजी के शिष्यरत्न थे। आर्य महागिरि ने 'जिनकल्प' अपनाते समय अपना समस्त उत्तरदायित्व आचार्य सुहस्ति को सौप दिया था। आचार्य सुहस्ति आजीवन स्थविर कल्प मे ही रहे थे। अपने जीवन-काल मे आपने अनेक ग्राम नगरो का उद्धार किया था। कुणाल पुत्र सम्प्रति इन्ही के प्रभाव से जैन धर्मावलम्बी बना था। सम्प्रति अपने समय का बडा ही धर्मात्मा तथा दयालु प्रकृति का नरेश था। जनता के हितार्थ उसने ७०० दानशालाए खोल रखी थी। जैन धर्म के प्रचार मे इसका विशेष योग रहा है। भारत तथा भारत के बाहर ब्रह्मा, आसाम तिब्बत, अफगानिस्तान, ईरान, तुर्की, और अरब मे सम्राट् सम्प्रति के प्रयत्नो से जैन धर्म का प्रचार हुआ था। सम्प्रति का जन्म ई पू २५७ और वीर सम्वत् २७० मे हुआ था। वीर सम्वत् २८५ मे उन्होने आवन्ती राज्य सम्भाला था। २९२ मे मगध सम्राट् बने। आचार्य सुहस्ति की शिष्य परम्परा बहुत ही विस्तृत थी।

इनका जन्म वीर सम्वत् १६१ मे हुआ था। वीर सम्वत् २१५ मे दीक्षा तथा २४५ मे आचार्य पद और २६१ मे सौ वर्ष की आयु पूर्ण करके उज्जयिनी मे स्वर्गवासी हुए ।

आचार्य सुहस्ति के पश्चात् इतिहास मे अनेक आचार्यो के नाम आते है। कुछ विद्वानो का मत है कि ग्यारहवें पाट पर आचार्य गुणसुन्दरजी हुए। किन्तु कल्पसूत्र स्थविरावली तथा नन्दी सूत्र स्थविरावली आदि मे भी गुणसुन्दरजी का नाम कही दृष्टि-गोचर नही होता। आचार्य सुस्थित तथा आचार्य सुप्रतिबद्ध का क्रमश नाम अनेक पट्टावलियो मे मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य सुहस्ति के बाद सघ मे आचार्य-परम्परा अलग अलग विभक्त हो गई होगी। इतिहासकारो को इस ओर विशेष प्रयत्न करना चाहिए ताकि आचार्य सुहस्ति के बाद के आचार्य का निश्चित नाम लिया जा सके।

आचार्य सुस्थित

ये आचार्य सुहस्ति के प्रमुख शिष्य थे। काकन्दी नगरी के व्याघ्रापत्य राजकुलोत्पन्न थे। अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान् सत थे। आपने भुवनेश्वर (उडीसा) के निकट कुमार गिरि पर्वत पर घोर तपश्चरण किया था। आपकी तत्त्वनिरूपण शैली बडी विल-क्षण थी। सघ ने सर्वानुमति से आपको ही गच्छनायक के रूप मे स्वीकार किया[7]।

आचार्य सुस्थित ने ३१ वर्ष की आयु मे दीक्षा ग्रहण की थी और १७ वर्ष तक सामान्य रूप से संयम व्रत का पालन किया। अपने जीवन काल मे आप ४८ वर्ष तक आचार्य पद पर रहे और अन्त मे ९६ वर्ष की सर्वायु पूर्ण करके वीर सम्वत् ३३९ मे कुमार गिरि पर्वत पर स्वर्गवासी हुए।

आचार्य सुप्रतिबद्ध

ये आचार्य सुस्थित के सगे भाई थे। आपका वर्चस्व बडा ही चमत्कारी था। आपके जीवन-काल मे कुमार गिरि पर्वत पर एक लघु श्रमण सम्मेलन हुआ था। द्वितीय आगम वाचना का यही से सूत्र पात हुआ। जैन इतिहास मे आप वाचनाचार्य की उपाधि से विशेष प्रसिद्ध है। आचार्य सुहस्ति आपके दीक्षा-गुरु थे।

उस समय कलिंग (उडीसा) मे वैशाली गणतन्त्र के अधिनायक चेटक के सुपुत्र शोभन राज के राजवश का शासन चल रहा था। आगे चलकर यवन-विजेता महामेघ वाहन खारवेल भी इसी वश मे हुए। ये सम्राट् भिक्षुराज के नाम से प्रसिद्ध थे। जैन धर्म मे इनकी विशेष श्रद्धा थी। कुमार गिरिपर्वत पर इन्होने अपने जीवन काल म अनेक जैन गुफाओ का निर्माण करवाया था। हाथी गुफा मे ब्राह्मी लिपि मे मागधी भाषा का शिलालेख विशेष रूप से द्रष्टव्य है। इन गुफाओ का वातावरण बडा ही शान्त है।

आचार्य सुप्रतिबद्ध के स्वर्गवास काल का आधुनिक इतिहास स्पष्ट तथा निश्चित उल्लेख नही मिलता। आचार्य सुस्थित के बाद जैन श्रमणसंघ के ये महाप्रभावक आचार्य हुए हैं।

आचार्य इन्द्र दिन्न

इनका शुद्ध सस्कृत नाम इन्द्रदत्त प्रतीत होता है। आप कौशिक गोत्रीय ब्राह्मण थे। कुछ इतिहासकार इन्हे आचार्य सुस्थित का शिष्य मानते है और कुछ इन्हे आचार्य सुप्रतिबद्ध

का शिष्य होना स्वीकार करते है। इनमे अन्त का दूसरा मत विशेष प्रामाणिक जंचता है। तत्कालीन आर्यप्रियग्रन्थ आपके गुरु-भ्राता थे। आपका विशेष परिचय उपलब्ध नही है।

आचार्य दिन्न

आचार्य इन्द्रदिन्न के पश्चात् आर्यदिन्न स्वामी गच्छ-नायक हुए। आप गौतमगोत्रीय थे। इतिहास मे आपके शिष्य-मण्डल आर्य शान्ति श्रेणिक तथा आर्य सिंहगिरि इन दो प्रमुख शिष्यो के उल्लेख के अतिरिक्त अन्य विशिष्ट जानकारी नहीं मिलती। दक्षिण मे कर्नाटक पर्यन्त सुदूर प्रदेशो मे भ्रमण करके आपने अहिंसा धर्म का प्रचार किया था। आपके आस-पास ही आर्यकालक तथा सिद्धसेन प्रमुख महाप्रभावक आचार्यो का उल्लेख मिलता है।

जैन इतिहास मे आर्यकालक के नाम से चार आचार्य प्रसिद्ध हुए है। इनमे से प्रथम कालक की श्यामाचार्य के नाम से ख्याति हुई। ये प्रज्ञापना सूत्र के रचनाकार माने जाते हैं। आप तत्कालीन युगप्रधान 'गुणाकार' सूरि (आचार्य मेघगणि के शिष्य माने जाते है। वीर सम्वत् २८० में आपका जन्म, ३०० मे दीक्षा, ३३५ मे युगप्रधान पद तथा ३७६ मे स्वर्गवास हुआ।

द्वितीय कालकाचार्य धारानगरी के राजा वीरसिंह के पुत्र थे। सुरसुन्दरी इनकी माता का नाम था और सरस्वती इनकी छोटी बहिन थी। ये दोनो भाई बहिन साथ-साथ ही श्रमण सघ मे दीक्षित हो गये थे। सरस्वती साध्वी बडी ही रूपवती थी। एक बार उज्जयिनी के राजा गर्दभिल्ल ने सरस्वती के रूप पर मोहित होकर उसे अपने अनुचरो द्वारा राज महल मे न्दिनी

बना लिया । कालकाचार्य मोहान्ध राजा गर्दभिल्ल के इस अत्याचार को सहन नही कर सके । उन्होने पहिले राजा के पास जाकर उसे समझाया कि —साध्वी पर किया गया अत्याचार राज्य-परम्परा तथा न्याय के विरुद्ध है । गर्दभिल्ल ने आचार्य कालक की बात पर कोई ध्यान नही दिया । इस पर दूरदर्शी आचार्य ने सती साध्वो के सरक्षरण के लिए दूसरा मार्ग अपनाया । सिंधु देश के सामन्तो को सगठित करके उन्होने गर्दभिल्ल पर आक्रमण कराया और उसका मान भग करके अपनी बहिन के सतीत्व की रक्षा का ।

कालकाचार्य द्वितोय ने अनेक देश-देशान्तरो मे जैन धर्म का प्रचार किया था । ईरान, बर्मा, आदि देशो मे इनके जाने का भी उल्लेख मिलता है । ये अपने समय के एक महा प्रभावक आचार्य हुए हैं। उन्होने प्रतिप्ठानपुर मे भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी को पर्यूषण पर्व की आराधना को । इनका समय वीर सम्वत् ४५४ माना जाता है ।

हम पीछे स्पष्ट कर आये है कि आचाय सुहस्ति के समय मे जैन सघ मे अनेक आचार्यो की परम्पराओ का उल्लेख मिलता है । इन सभी आचार्यो ने यथाशक्ति ससार मे जैन धर्म का प्रचार किया था । किन्तु आचार-विचार विषयक मतभेद होने के कारण इनकी गुरु शिष्य-परम्पराए पृथक् पृथक् हो गई । इन परम्पराओ मे बडे बडे प्रभावक विद्वान्-सत हुए है । पाचव शताब्दी के आसपास के सतो मे वाचक उमास्वाती का नाम विशेष रूप से आता है । अब तक जो भी साहित्य निर्मित हुआ था, उसमे अधिकता प्राकृत के ग्रन्थो की थी । सस्कृत-साहित्य निर्माण की ओर विशेष रुचि वाचक उमास्वाति के समय से ही जागृत हुई ।

तत्वार्थ सूत्र के प्रणेता के रूप मे वाचक उमास्वाति को जैन समाज के सभी सम्प्रदाय प्रारम्भ से आज तक समान रूप से मानते आये है। दिगम्बर उन्हे अपनी शाखा मे और श्वेताम्बर अपनी शाखा मे मानते है। दिगम्बर उन्हे आचार्य कुन्दकुन्द का शिष्य मानते है। जबकि स्वय वाचक उमास्वाति ने अपनी प्रशस्ति मे दिगम्बरो की इस मान्यता के विरुद्ध अपना पृथक् तथा स्पष्ट परिचय दिया है । प्रशस्तिका सार इस प्रकार है —

''जिनके दीक्षा गुरु ग्यारह अ ग के धारक घोषनन्दि क्षमण थे और प्रगुरु गुरु के गुरु, वाचकमुख्य 'शिव श्री' थे, वाचना से अर्थात् विद्याग्रहण की दृष्टि से जिसके गुरु 'मूल' नामक आचार्य और प्रगुरु महावाचक 'मुण्डपाद' थे, जो गोत्र से 'कौभीषणि' थे और जो ''स्वाती'' पिता और वात्सी माता के पुत्र थे, जिनका जन्म 'न्यग्रोधिका' मे हुआ था और जो 'उच्च नागर' शाखा के थे, उन उमास्वाति वाचक ने गुरु परम्परा से प्राप्त हुए श्रेष्ठ आर्हत उपदेश को भली भाति धारण करके तथा तुच्छ शास्त्रो द्वारा हत बुद्धि दु खित लोक को देखकर के प्राणियो की अनुकम्पा से प्रेरित होकर यह 'तत्वार्थाधिगम' नाम का स्पष्ट शास्त्र विहार करते हुए 'कुसुमपुर' नाम के महा नगर मे रचा है। जो इस तत्वार्थ शास्त्र को जानेगा और उसके कथनानुसार आचरण करेगा वह अव्याबाध सुख नाम के परमार्थ मोक्ष को शीघ्र प्राप्त करेगा।

इस प्रशस्ति मे दिये गये नाम आदि से वाचक उमास्वाति का परिचय स्पष्ट है। यहा यह जानना भी आवश्यक है कि तत्वार्थ सूत्र प्रणेता वाचक उमास्वाति श्वेताम्बर आम्नाय के ही थे। क्योकि अपनी प्रशस्ति मे उन्होने अपने आपको 'उच्च नागर

शाखा' का घोषित किया है। दिगम्बर सम्प्रदाय मे इस नाम की कोई भी शाखा नही है।

जहा तक वाचक उमास्वाति के समय का प्रश्न है। उसके बारे मे यही कहना है कि जिस शाखा का स्वय तत्त्वार्थ सूत्र प्रणेता ने अपनी प्रशस्ति मे निर्देश किया है, वह 'उच्च नागर शाखा' आर्य शान्ति श्रेणिक से निकली है। कल्पसूत्र स्थविरावली मे उक्त शाखा का उल्लेख मिलता है। आर्य शान्तिश्रेणिक आर्य सुहस्ति से चौथी पीढी मे आते है। आर्य सुहस्ति के शिष्य सुस्थित, सुप्रतिबुद्ध और उनके शिष्य इन्द्रदिन्न, इन्द्रदिन्न के शिष्य दिन्न और दिन्न के शिष्य शातिश्रेणिक हैं, यह शातिश्रेणिक आर्य वज्र के गुरु आर्य सिह गिरि के गुरुभाई थे। आर्य सुहस्ति का स्वर्गवास समय वीर सं० २९१ और आर्य वज्र का स्वर्गवास समय ५८४ मिलता है। अर्थात् सुहस्ति के स्वर्गवास समय से वज्र के स्वर्गवास समय तक २९३ वर्ष क भीतर पाच पीढिया मिलती हैं।

इस प्रकार मान लेने पर आचार्य सुहस्ति को चौथी पीढी मे होने वाले श्री शातिश्रेणिक मुनि का काल वीर सम्वत् ४७१ के आस पास का बैठता है। इसी समय के आस पास 'उच्च नागरी शाखा' का उदय हुआ होगा। इन सब बातो से यही स्पष्ट होता है कि वीर सम्वत् ४७१ अर्थात् विक्रम सम्वत् के प्रारम्भ के लग-भग ही वाचक उमास्वाति हुए हैं। इससे अधिक उनका परिचय उपलब्ध नही है।

आचार्य सिंहगिरि

ये आचार्य दिन्न के शिष्य और उच्च नागरी शाखा के निर्माण कर्ता श्री शातिश्रेणिक मुनिराज के गुरुभाई थे। आप कौशिक

गौत्रीय ब्राह्मण थे। कल्प सूत्र स्थविरावलीमे इन्हे जाति स्मरण ज्ञान के धारक कहा गया है। आपके चार प्रमुख शिष्य हुए हैं— (१) आर्य समित (२) आर्य धनगिरि (३) आर्य वज्रस्वामी और (४) आर्य अर्हद्दत्त ?

आर्य समित का जन्म वीर सम्वत् ५८४ मे अवन्ती देश (मालवा) के तुम्ववन ग्राम मे धनपाल वेश्य के यहा हुआ था। आपकी बहिन सुनन्दा का विवाह इसी तुम्ववन के प्रसिद्ध वेश्य धनगिरि के साथ हुआ था। आर्य समित अपने समय के बडे ही योगनिष्ठ चमत्कारी महापुरुष हुए है। इससे अधिक आचार्य सिहगिरि का परिचय उपलब्ध नही है।

आचार्य वज्रस्वामी—

आर्य समित की बहिन सुनन्दा के पति आर्य धनगिरि, अपने साले समित के साथ आर्य सिंहगिरि के पास एक साथ ही दीक्षित हो गए थे। उन दिनो सुनन्दा गर्भवती थी। उसकी कुक्षिसे 'वज्र' नाम के पुण्यवान् बालक का जन्म हुवा। एक बार मुनि धनगिरि जो भिक्षार्थ सुनन्दा के यहा गए। उन्होने ज्यो ही भिक्षार्थ पात्र आगे बढाया, सुनन्दा ने आवेश मे आकर अपने छ मास के पुत्र वज्र को पात्र मे डाल दिया और कहा—आपतो चले गए, इसे यहा क्यो छोड गए ? इसको भी अपने साथ ले जाओ। धनगिरि ने सुनन्दा को बहुत समझाया पर वह न मानी और अन्त मे वह नन्हे वज्र को अपने साथ अपने गुरु आर्य सिंहगिरि के पास ले गए। श्रध्दालु श्रावको की देख रेख मे बालक का पालन पोषण होने लगा बालक वज्र अवसर पाकर मुनिराजो के दर्शन अवश्य किया करता था। सन्तो की वाणी ने उसका हृदय वेराग्य भाव से परिपूर्ण कर दिया और एक दिन उसे जातिस्मरण ज्ञान हो

गया । युवा होने पर आपको दीक्षा व्रत दे दिया गया । आपका मतिज्ञान बड़ा ही निर्मल था । गुरु जी भी उपदेश देते उसे ये बडी ही शीघ्रता और चतुरता से ग्रहण कर लेते थे । गुरु का उपदेश श्रवण मात्र से ही आपको समस्त शास्त्र कण्ठस्थ हो गए । यह देख कर आचार्य श्री सिंह ने आपको वाचनाचार्य 'के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया । आर्य वज्रस्वामी ने दशपुर (मन्दसौर) मे आर्य भद्रगुप्त के पास दस पूव का अध्ययन किया था । वज्रस्वामी अन्तिम दशपूर्व धारी थे । इनके बाद कोई भी दशपूर्णधारी नही हुआ । आपके पश्चात् वज्रऋषभनाराच सहनन का भी विच्छेद हो गया । आपके नाम से ही 'वज्र शाखा' का प्रारम्भ हुआ । आपने अपने जीवन काल मे अनेक भव्य आत्माओ को सन्मार्ग पर लगाया था । आपकी वज्र शाखा मे वज्र नाम के अनेक प्रभावशाली विद्वान् सत और आचार्य हुए है ।

आचार्य वज्रस्वामी का जन्म वीर सम्वत् ४६६ (३१ई० पू०) मे तथा दीक्षा ५०४ (२३ ई० पू०) मे हुई थी । आप ३६ वर्ष तक आचार्य पद पर रहे, अत मे दक्षिण के रथावर्त पर्वत पर अनशन पूर्वक वीर सम्वत् ५८४ (५७ ई०) में स्वर्ग वासी हुए ।

आचार्य वज्र सेन—

आप आचार्य वज्र स्वामी के शिष्य थे । आपका जन्म वीर सम्वत् ४६२ मे हुआ था । दीक्षा ५०१ में और आचार्य काल ५८४ वीर सम्वत्, तथा १२६ वर्ष की पूर्ण आयु मे वीर सम्वत् ६२० मे आपका स्वर्ग वास हुवा था । आपके नगेन्द्र, चन्द्र, निवृत्ति और विद्याधर ये चार सहोदर बन्धु आदि प्रमुख दीक्षित शिष्य थे । इन्ही के नाम से चार गच्छो का विस्तार हुआ । इन्ही गच्छो से ८४ गच्छो की उत्पत्ति हुई ।

आचार्य वज्रसेन के समय मे भी एक बार द्वादशवर्षीय भयंकर दुष्काल पडा था। कहते है उस दुर्भिक्ष के समय भिक्षा न मिलने के कारण ७८४ साधु अनशन पूर्वक स्वर्गवासी हो गए थे। जिनदास सेठ दुष्काल की यातनाओ से तग आकर अपने परिवार को विष देने जा रहा था। मार्ग में आचार्य वज्रसेन मिले। उन्होने शीघ्र ही सुकाल की भविष्य वाणी करके सबकी प्राण रक्षा की। कुछ समय के बाद ही दुष्काल समाप्त हो गया और देश मे सुकाल आ गया। जिनदास ने अपना समस्त द्रव्य जन कल्याण के लिए जनता को अर्पित कर दिया, और आप स्वयं नगेन्द्र, चद्र आदि अपने पुत्रो को साथ लेकर आचार्य वज्रसेन के पास दीक्षित हो गये।

आगम साहित्य के महापण्डित 'आर्य रक्षित सूरि भी आचार्य वज्रसेन के समकालीन थे। मालव प्रदेश के दशपुर [मन्दसौर] नगर के रुद्रसोम पुरोहित के घर आपका जन्म हुवा था। आपकी माता ने एक बार आपको इक्षुवन मे विराजित आचार्य तोसली पुत्र के पास दृष्टिवाद का अध्ययन करने के लिए भेजा। आचार्य के प्रभावशाली उपदेशो की सुनकर आप उन्ही के पास दीक्षित हो गए। आप अनुयोग द्वार सूत्रके रचनाकार माने जाते है। आपने आगम साहित्य को द्रव्य, चरणकरण, गणित और धर्मकथा इन चारो अनुयोगो मे विभक्त करके शास्त्र पठन-पाठन के मार्ग को प्रशस्त किया। यह आगम सशोधन, विभाजन आदि का समस्त कार्य द्वादशवर्षीय दुष्काल के बाद दशपुर मे सम्पन्न हुआ था। इस आगमवाचना मे वाचनाचार्य नन्दिल आचार्य आर्य रक्षित, और गच्छाचार्य वज्रसेन प्रमुख विद्वानो ने भाग लिया था। इस वाचना का समय वीर सम्वत् ५९२ माना जाता है।

आचार्य रथस्वामी

आचार्य वज्रस्वामी के प्रमख शिष्यो मे आपका नाम आता है ' आचार्य वज्रसेन आपके गुरु भ्राता थे। आप वशिष्ठगोत्रीय ब्राह्मण थे। आपका दूसरा नाम आर्य जयन्त भी आता है। आपके इसी नाम से जयन्ती शाखा का उदय माना जाता है।

आचार्य रथ स्वामी के बाद के आचार्यों का विशेष परिचय नही मिलता। स्थविरावली मे केवल नाम मात्र उनका परिचय आता है, अत यहा पर हम भी केवल नामो का ही उल्लेख कर रहे है -

आचार्य पुष्यगिरि	कौशिक गोत्र
,, फल्गुमित्र	गौतम गोत्र
,, धर्नागिरि	वशिष्ठ गोत्र
,। शिवभूति	कुच्छस गोत्र
,, भद्र	काश्यप गोत्र
,, नक्षत्र	,,
,, रक्ष	,,
,, नाग	गौतम गोत्र
,, जेहिल	वशिष्ठ गोत्र
,, विष्णु	माठर गोत्र
,, कालक	गौतम गोत्र

ये तीसरे कालकाचार्य हैं। इनका समम वीर सम्वत् ७२० माना जाता है ।

आचार्य सम्पालित तथा भद्र

ये दोनो ही महापुरुष आचार्य कालक के शिष्य थे । दोनो

बाल ब्रह्मचारी थे। आचार्य कालक के पश्चात् दोनो ही आचार्य पद पर आये। कुछ दिनो बाद दोनो का सघ एक रूप मे सगठित हो गया। सघ के आचार्य आर्यभद्र मुनि बने।

इसके पश्चात् के आचार्यों का भी पूरा परिचय अनुपलब्ध है अत यहा कल्पसूत्र स्थविरावली के अनुसार केवल नामों का ही उल्लेख किया गया है।

आचार्यवृद्ध	गौतम गोत्र
आचार्य सघपालित	गौतम गोत्र
आचार्य श्री हस्ती	काश्यप गोत्र
आचार्य धर्म	साक्य गोत्र
आचार्य सिह	काश्यप गोत्र
आचार्य धर्म	काश्यप गोत्र

जैन इतिहास मे आर्य धर्माचार्य के प्रमुख शिष्यो में स्कन्दिल और आर्य जम्बू के नामो का विशेष उल्लेख मिलता है। आचार्य स्कन्दिल, अपने समय के महाप्रभावक आचार्य थे। कही कही इनका मूल नाम 'सोमरथ' भी मिलता है। ये मथुरा के रहने वाले थे। आचार्य सिहसूरि के उपदेशो से इन्हे वैराग्य उत्पन्न हुआ था और आचार्य धर्मसूरि के पास इन्होने दीक्षा ली थी।

इन दिनो देश मे बडा सघर्ष चल रहा था। जैन, बौद्ध तथा वैदिक धर्म के अनुयायी बडी ही भयंकरता के साथ आपस मे टकरा रहे थे। विशेषकर सौराष्ट्र की स्थिति उस समय बडी विकट थी। हूण शासको और गुप्त शासको का भारत मे भयकर युद्ध हुआ, जिसके कारण सारा देश दुष्काल-पीडित हो गया। यह दुष्काल बारह वर्ष तक रहा था। परिणामस्वरूप श्रुतधर

मुनिराजो की सख्या दिनोदिन कम हो गई। आगम साहित्य लुप्त सा होने लगा। ऐसी विकट स्थिति मे आचार्य स्कन्दिल की देख-रेख मे उत्तरापथ के मुनिराजो का मथुरा मे एक विशाल सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन मे आगमो को पुस्तकारूढ किया गया।

इससे पूर्व लिखित प्रणाली नही थी। आचार्य शिष्य को पढाते थे और शिष्य उसे कण्ठस्थ कर लेते थे। दूरदर्शी आचार्यो ने देखा यह प्रणाली अब अधिक दिन नही चल सकती। अत शास्त्रो को लिपिबद्ध कर देना चाहिए। इसी निर्णय के अनुसार जिसे जो कुछ कण्ठस्थ था उसे लिख लिया गया, आचार्य स्कन्दिल के तत्त्वावधान मे यह आगम-लेखन कार्य हुआ था, अत इसका नाम स्कन्दिली वाचना पड गया।

दूसरी ओर सौराष्ट्र मे आचार्य नागार्जुन की अध्यक्षता मे दक्षिणापथ के मुनिराजो का एक महा सम्मेलन वल्लभी (सौराष्ट्र) मे हुआ। इसमे भी आगमो को लिखित रूप दिया गया। स्कन्दिलाचार्य की अध्यक्षता मे होने वाली वाचना मथुरा मे हुई थी अत उसे माथुरी वाचना भी कहते है। नागार्जुनीय वाचना, वल्लभी वाचना के नाम से प्रसिद्ध है।

ये दोनो वाचनाएँ उत्तर और दक्षिण के भिन्न प्रदेशो मे हुई थी, अत इनमे पाठभेद रह जाना स्वाभाविक ही था। फिर भी शास्त्रो के लिपिबद्ध हो जाने से जनता को आगम-वाणी का महान् लाभ प्राप्त होने लगा। इन दिनो वाचनाओ के प्रचार मे तत्कालीन अनेक आचार्यो ने सहयोग दिया जिनके भिन्न-भिन्न नाम किसी-किसी इतिहास मे मिलते है। दोनो वाचनाओ का पाठभेद अनुमानत ५५० वर्ष तक चलता रहा, जिसका समन्वय आगे चलकर देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के द्वारा हुआ।

देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण

श्री देवर्द्धि 'वेरावल' (सौराष्ट्र) के निवासी श्री 'कामर्धि क्षत्रिय' के पुत्र थे। आपकी माता का नाम कलावती था। नन्दी की चूर्णी में इनके गुरु का नाम दुष्यगणी वताया गया है। कोई २ इतिहासकार इनके गुरु का नाम 'लौहित्य सूरि' मानते है। इनके शिक्षागुरु आचार्य देवगुप्त थे। श्री नन्दीसूत्र की रचना श्री देवर्द्धि क्षमाश्रमण के द्वारा ही हुई है। 'क्षमाश्रमण' इनकी उपाधि है। आप बडे ही युगप्रधान आचार्य थे। वीर सम्वत् ६८० के आस-पास वल्लभी (सौराष्ट्र) मे आपकी अध्यक्षता मे एक महा सम्मेलन हुआ। यही पर उत्तर और दक्षिण के पाठभेदो का समन्वय किया गया। इस वाचना मे चतुर्थ कालकाचार्य भी विद्यमान थे। ये नागार्जुनीय वाचना के अनुयायी थे। देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के नेतृत्व मे हुई यह आगम-परिषद् पञ्चम वाचना के नाम से प्रसिद्ध है। इसके बाद कोई वाचना नही हुई। वीर निर्वाण सम्वत् १००० मे शत्रुञ्जय पर्वत पर महावाचक श्री देवर्द्धिगणी का स्वर्गवास हुआ।

भगवान् ऋषभदेव से लेकर देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण तक की यह परम्परा कल्पसूत्र स्थविरावली के अनुसार ली गई है। कही-कही अन्य इतिहासकारो का मत भी लिया गया है।

श्री नन्दीसूत्र पट्टावलि

(१) श्री सुधर्मा स्वामी
(२) श्री जम्बू स्वामी
(३) श्री प्रभव स्वामी
(४) श्री शयभव स्वामी
(५) श्री यशोभद्र स्वामी
(६) श्री सम्भूति विजयजी
(७) श्री भद्रबाहु स्वामी
(८) श्री स्थूलिभद्र स्वामी

(६) श्री महागिरिजी
(१०) श्री आर्य सुहस्ति जी
(११) श्री बलिस्सह स्वामी
(१२) श्री स्वाति स्वामी
(१३) श्री श्यामार्य स्वामी
(१४) श्री साण्डिल्य स्वामी
(१५) श्री समुद्र स्वामी
(१६) श्री मगु स्वामी
(१७) श्री नन्दिल स्वामी
(१८) श्री नागहस्ति स्वामी
(१९) श्री रेवती स्वामी
(२०) श्री ब्रह्मद्दीपिक सिंह स्वामी
(२१) श्री स्कंदिलाचार्य स्वामी
(२२) श्री हिमवन्त स्वामी
(२३) श्री नागार्जुन स्वामी
(२४) श्री भूतदिन्न स्वामी
(२५) श्री लोहित स्वामी
(२६) श्री दूष्यगणि स्वामी
(२७) श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण

भगवान् महावीर के निर्वाण सम्वत् ६८० तक श्रीमन्नन्दीसूत्र मे इन सत्ताईस आचार्यो के नामो का उल्लेख आया है। अनेक विचारक विद्वानो का इस पट्टावली के सम्बन्ध मे भी मतभेद है। कुछ भी हो, वीर निर्वाण सम्वत् ६८० के पूर्व की परम्परा मे तथा उसके बाद की परम्परा मे अनेक दार्शनिक शास्त्रज्ञ, तत्त्ववेत्ता, और महाप्रभावक आचार्य तथा मुनिराज हुए हैं। जिनके परमपूत वर्चस्व से जैन शासन की बहुमुखी अभिवृद्धि हुई है। इन महापुरुषो के उपकारो को कभी नही भुलाया जा सकता। जब तक चन्द्रमा मे शीतलता और सूर्य मे उष्णता रहेगी, उनका यश, उनकी कीर्तिगाथाएँ ससार गाता रहेगा।

प्रकरण चौथा

पिछले प्रकरण मे हम भगवान् श्री ऋषभदेव तथा इस अव-सर्पिणी काल के अंतिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर से लेकर देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण तक का संक्षिप्त परिचय लिख आये है। वीर निर्वाण से पूरे एक हजार वर्ष तक के इस काल मे आगम-परम्परा मे अनेक उन्नति तथा अवनति के चक्र आये है। इस काल मे प्राकृत-अर्धमागधी भाषा का मुख्यतया प्रभाव रहा है। प्रस्तुत प्रकरण मे हम कतिपय उन विशिष्ट विद्वान् मुनिराजो तथा आचार्यो का परिचय देने का प्रयत्न करेंगे जिन्होने विशेष-तया अपनी संस्कृत रचनाओ द्वारा जैन साहित्य की अभिवृद्धि की। इन विद्वानो का आगमसाहित्य के प्रचार मे भी विशेष योग रहा है। उन विद्वानो मे श्री सिद्धसेन दिवाकर का नाम अपना एक विशेष महत्त्व रखता है। अत उन्ही के शुभ नाम से हम अपने इस प्रकरण का शुभारम्भ कर रहे है।

आचार्य सिद्धसेन दिवाकर

आचार्य सिद्धसेन दिवाकर उज्जयिनी' के ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न हुए थे। वीर-निर्वाण सम्वत् ४०० के आस पास इनका अस्तित्व माना जाता है। ये आचार्य स्कन्दिल के शिष्य वृद्धवादी आचार्य के शिष्य थे। कुछ इतिहासकार इन्हे महाराज विक्रमा-दित्य का मन्त्री मानते है। कुछ भी हो, सिद्धसेन संस्कृत, दर्शन, ज्योतिष आदि अनेक विषयो के प्रकाण्ड पण्डित थे। कहा जाता

है कि उनकी विद्वत्ता मे प्रभावित होकर ही श्री विक्रमादित्य ने इन्हें अपने दरबार मे विशिष्ट स्थान दिया था। सिद्धसेन को अपने पाण्डित्य पर बडा ही अभिमान था । उनकी प्रतिज्ञा थी कि जो मुझे शास्त्रार्थ मे हरा देगा उसी को मैं अपना गुरु मानूँगा।

उन दिनो वृद्धवादी आचार्य का नाम बहुत प्रसिद्ध था। वे पाण्डित्य के धनी थे। सिद्धसेन शास्त्रार्थ के लिए उनके पास पाटन नगर [भडौच] मे पहुँचे। दोनो विद्वानो की ये भेंट मार्ग मे चलते-चलते ही हुई थी। सिद्धसेन ने आचार्य वृद्धवादी को शास्त्रार्थ की चुनौती दी और कहा कि या तो पराजय स्वीकार कर लीजिये अन्यथा मुझ से शास्त्रार्थ करिये। जिस स्थान पर यह वार्तालाप हो रहा था वहाँ कुछ गोपालो की एक मण्डली भी उपस्थित थी। आचार्य वृद्धवादी ने ग्वालमण्डली के सम्मुख तथा उन्ही को मध्यस्थता मे शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया।

सिद्धसेन पण्डित थे। उन्होने अपना पूर्व पक्ष स्थापित करने के लिए अपना सरस्वती-भण्डार लच्छेदार क्लिष्ट सस्कृत भाषा मे बहा दिया। ग्वालमण्डली की समझ मे उनकी कोई भी बात नही आयी। उन्हे तो ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो उनके सामने कोई विक्षिप्त व्यक्ति बहक रहा हो।

आचार्य वृद्धवादी बडे समयज्ञ थे। उन्होने सरल और सीधी भाषा मे ग्वालो के सम्मुख नैतिक जीवन का उपदेश दिया और गोपालो से निर्णय मांगा कि कौन अधिक विद्वान् है। ग्वालो ने समझ मे न आने के कारण वृद्धवादी की ओर ही अपना निर्णय दिया

अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सिद्धसेन ने पराजय स्वीकार कर ली और साथ ही साथ शिष्य होने की भावना भी बडे ही विनम्र शब्दो मे व्यक्त की। उत्तर मे वृद्धवादी जी ने कहा—भविष्य मे ग्वालो जैसे अनपढ लोगो को मध्यस्थ बनाने की भूल मत करना, हम अभी शहर मे जायेगे। वहाँ विद्वानो की सभा मे हमारा तुम्हारा शास्त्रार्थ होगा। विद्वान् लोग जो निर्णय देंगे हमे मान्य होगा।

अन्त मे ऐसा ही हुआ। दोनो का शहर के विद्वानो के समक्ष शास्त्रार्थ हुआ, यहाँ पर भी सिद्धसेन के पल्ले पराजय ही पडी। कृत प्रतिज्ञा के अनुसार वह वृद्धवादी आचार्य का शिष्य बन गया। गुरुदेव की सेवा मे रह कर सिद्धसेन मुनि ने अनेक जैन आगमो का सविस्तार अध्ययन किया। शिष्य की योग्यता को देखकर गुरुदेव ने उन्हे शिष्य-परिवार के साथ पृथक् विहार करने की आज्ञा प्रदान कर दी।

विहार करते हुए एक बार सिद्धसेन सूरि विक्रम की राजधानी अवन्ती मे पहुँचे। राजा विक्रम ने अपना पुराना पण्डित जानकर उनका एक करोड स्वर्ण-मुद्राओं से शाही सम्मान करना चाहा। किन्तु सिद्धसेन सूरि ने अपनी श्रमण-मर्यादा के कारण इसे स्वीकार नही किया। राजा विक्रमादित्य उनके इस त्याग से अत्यन्त प्रभावित हुआ। इसके कुछ ही दिनो बाद कर्णपुर के राजा देव बल्लि ने उनके त्याग से आकर्षित होकर उन्हे अपना गुरु स्वीकार कर लिया। अब वे शाही ठाठ-बाट के साथ राजधानी मे रहने लगे। धीरे धीरे उनका त्याग, राग मे बदलने लगा। उनकी त्याग-वैराग्य भावना शिथिल पड गई। वे साधु-चर्या के विरुद्ध पालकी आदि में बैठने लगे। राजसी सत्कार

स्वीकार करने लगे। राज-पुरुषो की तरह अपना जीवन बिताने लगे। उनका सामान, उनकी पालकी, सब कुछ मजदूर उठाते। समस्त राज्यतन्त्र मे विशेष राजनीतिज्ञ के रूप मे उनका सम्मान होने लगा।

आचार्य वृद्धवादी को जब यह सब समाचार मिला तो उन्हे बडा दुःख हुआ। अपने पथभ्रष्ट शिष्य का उद्धार करने के लिये वे कर्णपुर आये। जब सिद्धसेन सूरि भ्रमण करने के लिए पालकी मे बैठकर जाने लगे तो आचार्य वृद्धवादी बेश बदल कर पालकी उठाने वालो मे जुत गये। वृद्ध अवस्था के कारण उनके पांव लडखडाने लगे। पालकी मे बैठे सिद्धसेन ने क्रुद्ध होकर कहा—कोऽसि भूरिभाराक्रान्तस्कन्ध किं तव बाधति" अरे तू कौन है क्या भारी बोझ से तेरे कधे दुखते है। सिद्ध का प्रश्न सुनकर गुरुदेव ने कहा—'न तथा बाधते स्कन्धो यथा बाधति बाधते.। तुम्हारा बाधति शब्द मुझे जितनी पीडा पहुँचा रहा है, उतना यह बोझिल कधा नही।

शीघ्रतावश सिद्धसेन सूरि बाधते क्रिया के स्थान पर बाधति बोल बैठे थे। पालकीवाहक आचार्य के शब्दो को सुनकर वे एकदम चौक पडे। उन्होने ने सोचा '—मेरी भूल पकडने वाला यह कोई दिव्य पुरुष है। ज्यो ही उन्होने पालकी से नीचे को देखा तो वे एक दम चकित रह गए और तुरन्त ही गुरु महाराज के चरणो मे गिर कर अपने अपराध की क्षमा मांगने लगे। उस समय उनकी आंखो मे पश्चात्ताप के आसू उभर रहे थे।

गुरु के सत्य उपदेश से सिद्ध सेन सूरि का सोया हुआ त्याग भाव पुन जागृत हो गया। वे पूर्व की भांति अपने सयम मार्ग

दृढ हो गए। अब वे अपनी साधु-मर्यादाओ का सजग होकर पालन करने लगे। तथा आत्म कल्याण के साथ-साथ संघ-हित के कार्यो मे जुट गए। उन्होने अपने जीवनकाल मे साहित्य के क्षेत्र मे जो प्रति दिन कार्य किये हैं उनके उदाहरण अन्यत्र मिलने कठिन है। सिद्धसेन के पूर्व जैन-परम्परा मे कोई स्वतत्र तर्क-शास्त्र नही था। सन्मति तर्क न्यायावतार-आदि अनेक सैद्धान्तिक शास्त्रो का निर्माण करके उन्होने युगो-युगो के लिए जैन साहित्य को अमर कर दिया। सिद्धसेन सूरि का तर्क बडा ही अकाट्य होता था। तत्कालीन अनेक विद्वान् उनके तार्किक दृष्टिकोण के सन्मुख नतमस्तक थे। सिद्धसेन सूरि की रचनाओ मे अध्यात्म वाद की पुट विशेष रूप से होती थी। शास्त्रार्थ-कला मे भी वे अत्यत निपुण थे। वे सदा ही समन्वयवादी रहे थे। पौराणिक वृत्ति के मानवो को वे बडे ही खरे शब्दो मे बांध देते थे। नवीनतानुयायिओ को सदा पुरातन मे से सत्य खोजने की प्रेरणा देते रहते थे।

सिद्धसेन दिवाकर यद्यपि श्वेताम्बर परम्परा के आचार्य थे, तो भी दिगम्बर आचार्यो ने भी उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशसा की है। अकलक देव, तथा अनतवीर्य आदि दिगम्बर आचार्यो ने बडे ही विनीत शब्दो मे उनकी प्रशसा की है

सिद्धसेन दिवाकर के स्वर्गवास के विषय मे विद्वानो मे अनेक मतभेद प्रचलित है। अभी तक कोई निर्णयात्मक सामग्री उपलब्ध नही हो सकी है।

तथापि उपलब्ध प्रमाणो के आधार पर वीर सम्वत् ४८० के आस-पास दक्षिण के प्रतिष्ठानपुर नगर मे उनका स्वर्गवास माना जाता है।

विक्रम की इस पहली शताब्दी मे अनेक प्रभावक आचार्य तथा विद्वान् मुनिराज हुए है। जिनमे इन्द्रदेव खपुटाचार्य, तथा श्रमणसिंह आदि के नाम विशेष माने जाते है। अन्य ऐतिहासिक विद्वानो का वृत्त अभी उपलब्ध नही हो पाया है। उपसर्गहर स्तोत्र के निर्माता द्वितीय भद्रबाहु स्वामी भी इसी समय मे हुए है। अनेक ऐतिहासिक प्रमाणो के आधार पर उनका समय वीर सम्वत् ४६२ तथा विक्रम सम्वत् २० माना जाता है। कुछ लोगो की यह भी धारणा है, वास्तव मे वराहमिहिर इन्ही के भाई थे। क्यो कि विक्रम की राजसभा के नव रत्नो मे वराहमिहिर नामक विद्वान् का नाम भी आता है। ज्योतिर्विद्याभरण नामक ग्रन्थ मे इस बात का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। फिर भी सभी इतिहासकार इनके विषय मे एकमत नही हो पाये है। इस शताब्दी मे जैन धर्म का प्रचार तथा प्रसार अभूतपूर्व रूप से हुआ था।

विक्रम की तीसरी शताब्दी तक अनेक प्रभावक आचार्यों के सरक्षण मे जैन वाङ्मय की उन्नति हुई। आगम साहित्य का विशेष रूप से जनता मे प्रचार हुआ। साहित्य को लिपिबद्ध करने का सत्प्रयास हुआ। जैन श्रमण सस्था को अधिक दृढ बनाने के प्रयोग अपनाए गए। एक प्रकार से यह तीन सौ वर्षो का समय धार्मिक सामाजिक और राष्ट्रीय क्रांति का समय था।

जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण

जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण वीर सम्वत ११४५ के आस-पास हुए है ये सस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्होने अपने जीवनकाल मे अनेक सस्कृत के ग्रन्थो का निर्माण किया था। विशेषावश्यक मूल और भाष्य जैसे अनमोल ग्रन्थ आपकी ही अमर

कृतियाँ है। जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने जैन साहित्य को एक नई दिशा दी थी। साहित्यिक क्षेत्र मे आपकी प्रवृत्तियाँ जैन इतिहास की अमूल्य निधि है।

जिनदास महत्तर

आचार्य जिनदास महत्तर विक्रम स० ६३३ मे हुए हैं। इन्होने निशीथ, नन्दीसूत्र और अनुयोगद्वार पर चूर्णी लिखी है।

आचार्य हरिभद्र सूरि ने अनेक ग्रन्थो मे इनका विशेष रूप से उल्लेख किया है। आगमिक तात्त्विक ज्ञान का आपने बडी ही सरल संस्कृत भाषा मे निरूपण किया है। आप सस्कृत तथा प्राकृत भाषा के बड़े विद्वान् थे।

आचार्य हरिभद्र सूरि

चित्तौड को पहले 'चित्रकूट' कहते थे। यहाँ के राजा का नाम जितारि था। श्री हरिभद्र का जन्म चित्रकूट मे हुआ था। वे अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान् तथा राज्य-पुरोहित थे। राजा प्रजा सभी मे उनका विशेष मान था। उनके पाण्डित्य के आगे बडे-बडे विद्वान् नतमस्तक रहते थे। हरिभद्र अग्निहोत्र ब्राह्मण थे। पाण्डित्य का गर्व होने के कारण वे सदा शास्त्रार्थ के लिए तयार रहते थे। कहते हैं कि इन्होने यह प्रतिज्ञा की थी कि—जिस विद्वान् की गाथा का अर्थ मैं नही समझ सकूँगा वही मेरा गुरु होगा।

एक दिन हरिभद्र नगर मे जा रहे थे। पास के एक उपाश्रय मे एक साध्वी किसी गाथा का उच्चारण कर रही थी। हरिभद्र

ने गाथा का अर्थ मस्तिष्क मे बैठाने की पूरी कोशिश की, पर अनेक बार प्रयत्न करने पर भी कुछ समझ मे न आया। वे अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सीधे साध्वी के पास आये और अपनी प्रतिज्ञा कह सुनाई।

साध्वी का नाम 'याकिनी महत्तरा' था। उसने हरिभद्र को समझाते हुए कहा कि—तुम मुझे नही, मेरे गुरु महाराज श्री जिनदत्त सूरि को अपना गुरु बनाओ। वे महान् उपकारी है। आध्यात्म ज्ञान के दाता है।

पवित्रहृदया साध्वी की बात स्वीकार करके हरिभद्र श्री जिनदत्त सूरि के पास पहुँचे और उनके प्रभाव से आकर्षित होकर अपना समस्त जीवन उनके चरणो मे ही समर्पित कर दिया। साध्वी याकिनी महत्तरा के उपकार को हरिभद्र जीवन-भर नही भूले। उन्होने अपने अनेक ग्रन्थो मे अपना नाम 'याकिनी महत्तरा सूनु' दिया है। हरिभद्र बडे ही प्रतिभासम्पन्न थे। दीक्षित होने के कुछ ही दिनो मे उन्होने जैन आगमो का विशाल अध्ययन कर लिया। उनकी योग्यता दिनोदिन उद्दीप्त होने लगी। अपने होनहार शिष्य की प्रगति से गुरुदेव बडे ही प्रसन्न हुए तथा उन्होने शीघ्र ही श्री हरिभद्र को आचार्य पद का उत्तरदायित्व सौंप दिया।

अनेक विद्वानो का मत है कि श्री हरिभद्र
जीवनकाल मे १४४४ ग्रन्थो का निर्माण किया था
आज उपलब्ध नही है। इनमे से कुछ ग्रन्थ प्र।
कुछ भी हो, आचार्य हरिभद्र के साहित्य ...
साहित्य को एक नई प्रेरणा दी है... सिद्ध...
ने जिस तर्क और दर्शन का द्व...

रूप देने का श्रेय आचार्य हरिभद्र को प्राप्त हुआ। हरिभद्रीय साहित्य के वर्तमान मे, अनेकात जयपताका, आवश्यक बृहद् वृत्ति, दशवैकालिक सूत्रवृत्ति, न्यायसूत्र प्रवेशवृत्ति, धर्मविन्दु प्रकरण, नन्दी सूत्र लघु वृत्ति, ललित विस्तरा षड्दर्शन समुच्चय, श्रावक प्रज्ञप्ति विशति--विशिका प्रकरण' समराइच्च कहा, और योग दृष्टि समुच्चय आदि ग्र थ विशेष प्रसिद्ध है।

आचार्य हरिभद्र का 'युग जीवन के सघर्षो का युग था। अनेक प्राकृतिक विपत्तियो के कारण साधुसस्था का आचार शिथिल हो गया। विलासिता के विषैले कीटाणुओ ने श्रमण वर्ग को एकदम अस्वस्थ कर दिया था। मत्र तन्त्र आदि प्रतिष्ठा प्राप्ति के साधन वन चुके थे। श्रावक लोग शास्त्रीय ज्ञान से वचित होते जा रहे थे। इसी कारण साधु लोग जो भी कुछ करते थे, उसमे गृहस्थ वर्ग हस्तक्षेप नही कर पाता था। अधिक क्या कहा जाय, दूसरो को उन्नति का उपदेश देने वाला साधु स्वय पतन को ओर बढ रहा था। उसका जीवन दिनोदिन विवेकशून्य होता जा रहा था। इस आध्यात्मिक अराजकता से आचार्य हरिभद्र अत्यन्त दुखी थे। उन्होने अपनी कृतियो मे उपदेशो द्वारा इन सयम-विरोधी वातावरणो का बहुत कुछ निराकरण भी किया था। तत्कालीन बढ रहे चैत्यवाद पर तो उन्होने अपने ग्रन्थो मे प्रबल विरोध व्यक्त किया है। सम्बोध प्रकरण मे तत्कालीन साधुवो के आचार-विचार का बडा ही स्पष्ट और विस्तृत वर्णन दिया है। आचार्य हरिभद्र के बाद श्री जिनभद्र सूरि ने भी चैत्यवाद की बुराइयो पर बडे ही अकाट्य शास्त्रीय प्रहार किये थे। साराश यह है कि हरिभद्रीय साहित्य के पठन-पाठन से तत्कालीन साधु समाज की शिथिलता का परिचय मिलता है।

आचार्य हरिभद्र का साहित्य शुद्ध भावनाओ से परिपूर्ण है। वह सामुदायिक भावना से कोसो दूर है। इनका समय अभी तक पूर्ण रूप से निश्चित नही हो पाया है। फिर भी अनेक प्रमाणो के आधार पर इनका समय विक्रम की सातवी और आठवी शताब्दी के बीच का माना जाता है। इन्ही दिनो मे आचार्य उद्योतन सूरि हुए है। 'कुवलय माला' नामक ग्रथ इनकी प्रसिद्ध कृति है। भाषा तथा भावो की दृष्टि से यह ग्रथ अति ही उत्तम है। सम्पूर्ण ग्रथ प्राकृत भाषा मे है। उद्योतन सूरि के धर्मगुरु श्री तत्वाचार्य थे और विद्यागुरु आचार्य हरिभद्र सूरि थे।

श्री बप्पभट्ट सूरि

ये 'दुवातधो' नामक ग्राम के निवासी थे। इनकी माता का नाम 'भट्टी' तथा पिता का नाम 'ब्रह्म' था। ये भारद्वाजगोत्रीय ब्राह्मण थे। इनकी स्मरणशक्ति बडी ही विलक्षण थी। एक दिन मे ये एक हजार श्लोक कण्ठस्थ कर लेते थे। श्री सिद्धसेन सूरि इनके दीक्षागुरु थे। आठवी शताब्दी के आरम्भ मे इनका जन्म माना जाता है। विक्रम सम्वत् ८०६ के लगभग ये दीक्षित हुए थे। ग्यारह वर्ष की लघुवय मे ही गुरु ने इन्हे आचार्य पद पर स्थापित कर दिया था। ये बडे ही प्रभावशाली आचार्य थे। ग्वालियर के महाराज को जैन धर्म मे दीक्षित करने का श्रेय आपने ही प्राप्त किया था। कन्नौज के तत्कालीन राजा ने अपना समस्त राज-ऐश्वर्य आपके चरणो में रख दिया था। ये महान् राजा परम प्रतापी राजा यशो वर्मा के पुत्र थे। समर्थ गुरु रामदास और शिवाजी ने इन्हीके राज्यार्पण इतिहास की पुनरावृत्ति की थी। आचार्य बप्पभट्ट ने गौडा (बगाल के)

अन्तर्गत लक्षणावती नगर के राजा को भी प्रतिबोध दिया था। चावडा वंश पर भी आपका विशेष प्रभाव था। 'नन्दा' और 'गोविन्द' नाम के इनके दो प्रधान शिष्य थे। आम राजा के पुत्र 'भोज' भी इनके बडे श्रद्धालु थे। ६५ वर्ष की आयु मे इनका स्वर्गवास हुआ।

श्री शीलांकाचार्य

विक्रम की नववी शताब्दी की समाप्ति के आस-पास इनका जन्म माना जाता है। इन्होने १०,००० श्लोको का 'महापुरुष चरित्र' नाम का प्राकृत ग्रंथ रचा है। इस बृहद् ग्रंथ मे ५४ महापुरुषो का जीवनचरित्र है। ये बडे ही विद्वान् तथा प्रभावक आचार्य थे। कुछ इतिहासकार इनके दीक्षा-गुरु का नाम मान-देव सूरि मानते है और कुछ इन्हे जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण का शिष्य मानते है विक्रम सम्वत् ६३२ मे इन्होने अंग शास्त्रो पर टीकाएँ लिखनी प्रारम्भ की थी। सर्वप्रथम आचाराग और सूत्रकृताग पर संस्कृत टीका लिखी थी। जो आज भी उपलब्ध है। इनकी अन्य टीकाएँ उपलब्ध नही है। 'जीव समास' पर लिखी हुई उनकी महत्त्वपूर्ण वृत्ति आज भी साहित्य की सम्मान बढा रही है।

श्री सिद्धर्षि सूरि

ये गुजरात के 'श्रीमाल' नामक नगर के राजमन्त्री श्री सुप्रभ देव के पुत्र थे। प्रसिद्ध संस्कृत कवि श्री माघ के ये चचेरे भाई लगते थे। इनके यौवन काल का अधिक भाग विषय, भोग तथा व्यसनो मे बीता था। इनका समय नवमी शताब्दी के बीच का माना है। इनके दीक्षागुरु श्री दुर्ग स्वामी थे। गुरु शिष्य

दोनो ही सस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पण्डित थे। सिद्धर्षि सूरिकी रचनाओ मे 'उपमितिभवप्रपच' नामक ग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध है। विक्रम सम्वत् ९६२ ज्येष्ठ शुक्ला पचमी गुरुवार को यह ग्रन्थ समाप्त हुआ था।

श्री हरिभद्र सूरि से लेकर आचार्य सिद्धर्षि सूरि तक के काल मे अनेक और भी महा प्रभावक आचार्य, मुनि और विद्वान् हुए है। ग्रन्थगुरुता के कारण उनका यहाँ परिचय नही दिया गया है। यहाँ विक्रम की पहली सहस्राब्दो समाप्त होती है। विक्रम सम्वत् १०•६ मे 'श्री जम्बू नाग' नाम के विद्वान् सत ने 'मणि-पति चरित्र' नामक ग्रन्थ लिखा। जिन-शतक' तथा 'चन्द्रदूत' काव्य भी इन्ही के लिखे हुए हैं।

प्रद्युम्नसूरि

इनका विशेष उल्लेख उपलब्ध नही है। इतना अवश्य है कि ये वैदिक साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित थे। शास्त्रार्थ-कला मे पूर्ण निपुण थे। इन्होने अनेक बार बौद्धो तथा दिगम्बर मतानु-यायियो को शास्त्रार्थ मे हराया था। सपाद लक्ष और त्रिभुवन-गिरि आदि राजाओ को आपने ही जेन धर्म की दीक्षा दी थी। भगवान् महावीर के ३२वे पाट पर इनको माना जाता है। आपकी शिष्य-परम्परा मे दार्शनिक सत श्री अभयदेव का नाम विशेष रूप से आता है। ये न्याय शास्त्र के विशिष्ट विद्वान् थे। सन्मति तर्क पर श्री अभयदेव की टीका, साहित्यिक जगत् मे अपना विशेष महत्त्व रखती है। इस टीका मे २५ हजार श्लोक-प्रमाण सामग्री है।

आचार्य अकलक्देव, श्री विद्यानन्द और प्रभाचन्द्र आदि,

दिगम्बर जैन विद्वान् भी इसी काल मे हुए है, वास्तव मे यह समय जैन न्यायशास्त्र के विकास का समय था। श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दोनो ही सम्प्रदायो के विद्वान् आचार्यो ने इस काल मे जैन-धर्म के प्रचार मे अपना योग दिया था।

श्री अभयदेव सूरि के शिष्यो मे धनेश्वर सूरि का प्रमुख स्थान माना जाता है। धारा नगरी के महाराजा मुंज पर आपका विशेष प्रभाव था।

विक्रम सम्वत् १०५० के लगभग राजा मुंज की मृत्यु हुई मानी जाती है। आधुनिक इतिहासकार उस समय श्री धनेश्वर सूरि का होना स्वीकार करते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से यह 'ग्यारहवी शताब्दी का समय बडा ही महत्त्वपूर्ण रहा है। इसमे अनेक प्रभावक विद्वान् मुनिराज और गृहस्थ हुए हैं। धनपाल कवि तथा उनके भ्राता शोभन मुनि, शाति सूरि, वर्द्धमान सूरि, महाप्रभावक बुद्धि-सागर सूरि आदि मुनिराज ग्यारहवी शताब्दी की ही विभूतियाँ है। आबू के कलात्मक जैन-मन्दिर का निर्माण भी इसी शताब्दी (१०८८) मे हुआ था। स्थापत्य-कला की दृष्टि से यह मन्दिर सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। मन्दिर का सौन्दर्य अनुपम है।

नवाङ्गी टीकाकार श्री अभयदेव सूरि

इनका जन्म मेदपाट के बडसल्ल नगर मे हुआ था। इनका पूर्व नाम सोमदेव था। इनके माता-पिता का नाम तथा परिचय उपलब्ध नही है तथापि अनेक ग्रन्थो के आधार से ऐसा प्रतीत होता है कि ये राजकुमार थे। विक्रम सम्वत् १०८८ मे इनकी दीक्षा मानी जाती है। मुनिदीक्षा के बाद इनका नाम अभय-

देव रख दिया। कुछ ही काल मे प्रकाण्ड पण्डित होकर इन्होने नव-अङ्गसूत्रो पर सस्कृत मे टीकाएँ लिखी। नव-अङ्गसूत्रो के, नाम ये हैं–१, श्री स्थानाङ्ग, २. श्री समवायाङ्ग, ३. श्री भगवती, ४ श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग ५. श्री उपासक दशाङ्ग ६, श्री अन्तकृद्दशाङ्ग, ७. श्री अनुत्तरोपपातिक, ८ श्री प्रश्नव्याकरण, ९ श्री विपाक-सूत्र। जैन साहित्य मे श्री अभयदेव सूरि का स्थान बडा ही महत्त्वपूर्ण है। आपका स्वर्गवास ११४५ मे ४७ वर्ष की अवस्था मे हुआ था। आप दृढ श्रद्धा तथा ज्ञान और चारित्र की दिव्य मूर्ति थे। आपके शिष्य-परिवार मे विजयचन्द्र चरित्र' के रचयिता चन्द्रप्रभ महत्तर तथा जिनचन्द्र, प्रसन्नचन्द्र, गुणचन्द्र और जिनवल्लभ गणी विशेष प्रसिद्ध हैं। वि० स० ११४० मे प्राकृत-भाषा मे मनोरमा-चरित्र के निर्माता श्री वर्धमान आचार्य भी श्री अभयदेव सूरि के ही शिष्य थे। इन्होने ११६० मे आदिनाथ–चरित्र और ११७२ मे धर्मरत्न करण्डवृत्ति का निर्माण किया था। दोनो ग्रन्थ प्राकृत भाषा के है। इन्ही दिनो काश्मीर के राजा कर्ण के राज्य मे कल्हण नामक प्रसिद्ध कवि हुए है।

इस बारहवी शताब्दी के मध्यकाल से लेकर विक्रम की तेरहवी शताब्दी के मध्यकाल तक, मल्लधारी अभयदेवसूरि तथा जिनवल्लभ सूरि आदि अनेक प्रसिद्ध मुनिराज हुए है। खरतर-गच्छीय महाप्रभावक चमत्कारी सत श्री जिनदत्त सूरि भी इन्ही दिनो मे हुए हैं। ११६४ विक्रम मे इन्हे सूरिपद प्राप्त हुआ था। ये श्री जिनवल्लभ सूरि के पट्टधर शिष्य थे। इनके गणधर-सार्धशतक, सदेह दोहावली और गणधर-सप्तति ये तीन प्राकृत-भाषा के ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

विक्रम सम्वत् ११६० से लेकर १२४५ तक रामदेव, श्री चन्द्र-

सूरि तथा श्री सोमप्रभ सूरि आदि अनेक ग्रन्थकार, टीकाकार, प्रसिद्ध मुनिराज आचार्य हुए है।

श्री हेमचन्द्राचार्य

जैनधर्म के प्राचीन इतिहास से यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि —प्राचीनकाल से लेकर अब तक जैन श्रमण अपने, मन, वाणी और शरीर से समाज मे धार्मिक तथा नैतिक वातावरण का बीज-वपन करते चले आरहे है। भारत के इतिहास मे गुजरात भी अपना एक प्रमुख स्थान रखता है। इस भूमि ने अनेक नररत्न देश को दिये है। आचार्य हेमचन्द्र इसी गुर्जर भूमि मे उत्पन्न हुए। ये एक सार्वभौम महापुरुष थे। हेमचन्द्राचार्य के नाम से आज साहित्यिक क्षेत्र मे कौन अपरिचित है? साहित्य जगत् पर उनका महान् उपकार है।

विक्रम सम्वत् ११४५ मे आचार्य हेमचन्द्र का जन्म गुजरात के 'धन्धुका' नामक ग्राम मे हुआ था। इनके पिता का नाम 'चाचिग' तथा माता का नाम 'पाहिनी' था। उनका स्वय का नाम चग था। एक दिन पाहिनी माता अपने पुत्र चग को दर्शनार्थ आचार्य देवचन्द्र के चरणो मे ले गई। आचार्यदेव अद्भुत बालक चग के लक्षणो को देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्हे स्पष्ट झलकने लगा कि भविष्य मे यह बालक कोई प्रतिभा-सम्पन्न महापण्डित होगा। अच्छी वस्तु की सभी को चाह होती है। आचार्य देवचन्द्र ने माता पाहिनी से पुत्र की भिक्षा माँगी। धार्मिक तथा गुरु श्रद्धालु होने के कारण 'पाहिनी' आचार्यदेव की याचना को अस्वीकार न कर सकी। शासन की प्रभावना के लिए उसने अपने पुत्र को आचार्य श्री के चरणो मे समर्पित कर दिया। कुमार 'चंग' को लेकर आचार्य देवचन्द्र खमात की ओर विहार कर गये। यही

पर 'चाचिग' की आज्ञा से बडी धूमधाम के साथ 'चंग' की दीक्षा-विधि सम्पन्न हुई। मुनिवेश मे आने के बाद इनका नाम सोमचन्द्र रखा गया। थोडे ही दिनो मे नव-दीक्षित मुनि ने व्याकरण, काव्य साहित्य, अलकार, आगम न्याय-दर्शन, और ज्योतिप आदि विपयो पर अधिकार प्राप्त कर लिया। आपके अद्वितीय पाण्डित्य से प्रभावित होकर गुरुदेव ने इन्हे केवल २१ वर्ष की आयु मे ही आचार्य पद पर स्थापित कर दिया। अब सोमचन्द्र के स्थान पर इनका नाम हेमचन्द्र रख दिया गया। जनता इन्हे आचार्य हेमचन्द्र के नाम से ही स्मरण करने लगी।

विक्रम सम्वत् ११६६ के वैशाख मास के शुक्ल पक्ष मे विहार करते हुए आचार्य हेमचन्द्र 'पाटन'मे पधारे। उस समय पाटन विद्या, कला और सस्कृति का केन्द्र था। तत्कालीन पाटन के राजा सिद्धराज भी बडे ही धार्मिक प्रकृति के थे। आचार्यश्री के सत्सग से उनकी धार्मिक भावना और भी निखर उठी। सिद्धराज और श्री हेमचन्द्राचार्य के समागम मे पाटन की भूमि सरस्वती-उपासना की केन्द्र-स्थली बन गई। यही पर आचार्य श्री ने सिद्धहेम शब्दानुशासन नाम के अपने सर्वप्रथम व्याकरण-शास्त्र की रचना की। इससे श्री हेमचद्राचार्य के अद्वितीय पाण्डित्य की सर्वत्र धाक जम गई। सिद्धराज को भी उनके प्रति विशेष श्रद्धा बढ गई। अब वह उनके उपदेशानुसार विशेष रूप से अपने कर्त्तव्यो का पालन करने लगा। सिद्धराज के उत्तरा-धिकारी कुमारपाल तो हेमचन्द्राचार्य को अपना गुरु ही मानने लगा था। वह उनके उपदेशो से प्रभावित होकर जैन धर्मानुयायी बन गया था। सिद्धराज और कुमारपाल मे कुछ अनबन रहती थी। आचार्यश्री के प्रयत्नो से ही यह आपसी द्वेष-भाव समाप्त हुआ और कुमारपाल को पाटन का राज्याधिकार मिला। कुमारपाल ने भी गुरु भक्ति के कारण अपना समस्त राज्य

गुरु चरणों मे अर्पित कर दिया। आचार्यश्री तो त्यागी थे। उन्हे राज्य का करना भी क्या था ? फिर भी उन्होने राज्यभार मे कुमारपाल से 'अमारी' (जीव हिंसा बदी) की घोषणा करवाई और जैन-धर्म के नियमो के पालन का वचन ले लिया। गुर्जर प्रात में जैन-धर्म के प्रचार का मुख्य कारण कुमारपाल का राज्याश्रय ही था।

आचार्य हेमचन्द्र विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। उनका ज्ञान बहुमुखी था। उनके विस्तृत साहित्य से जैन साहित्य की ही नही, अपितु भारतीय साहित्य की श्रीवृद्धि हुई है। एक किवदन्ति के अनुसार हेमचद्राचार्य ने साढे तीन करोड श्लोकप्रमाण बहुमुखी साहित्य की रचना की है। उनकी रचनाओ मे १ शब्दानुशासन, २ छन्दोऽनुशासन, ३ काव्यानुशासन, ४ लिगानुशासन, ५ कुमारपाल चरित्र, ६ प्राकृत द्वयाश्रय महाकाव्य ७ सस्कृत द्वयाश्रय महाकाव्य ८ अभिधान चितामणि ९ त्रिषष्टि शलाका पुरुष १० प्रमाण मीमासा ११ अध्यात्म उपनिषद् १२ योग शास्त्र, १३ अलकार चूडा-मणि आदि अनेक ग्रन्थो के नाम मुख्य हैं। गुजरात के साहित्य-सर्जको मे हेमचद्राचार्य के समान विद्वान् मिलना कठिन है। अनेक विदेशी विद्वान् भी उन्हे ज्ञान का अगाध समुद्र मानते है। धार्मिक सामाजिक तथा राष्ट्रीय सभी क्षेत्रो मे उनका विशाल प्रभाव था। वे अहिंसा की साक्षात् मूर्ति थे। माँ सरस्वती के पतिभा-सम्पन्न सुपुत्र थे। उन्हे पाकर गुजरात ही नही समस्त भारत धन्य हो गया।

आचार्य हेमचद्र के अनेक शिष्य थे। जिनमे 'केल विलास' 'यदु विलास' आदि ग्रन्थो के सफल रचयिता श्री रामचन्द्र सूरि का नाम प्रमुख है। आपके शिष्यो मे श्री महेन्द्र सूरि, वर्द्धमान.सूरि देवचद्र, उदयचद्र, यशश्चद्र तथा बालचद्र आदि शिष्यो के नाम इतिहास प्रसिद्ध है अस्सी वर्ष की परिपक्व आयु मे वि स

१२२६ मे आपका स्वर्गवास माना जाता है। आपके उत्तराधिकारी श्री रामचद्र सूरि हुए। आचार्य हेमचद्र के स्वर्गवास के बाद उनके शिष्य अपने गुरु की प्रतिष्ठा को सुरक्षित न रख सके। उनमे आपसी कलह बढ गया। इसी कारण जन-साधारण मे भी उनके प्रति पहिले जैसी श्रद्धा नही रह सकी।

आचार्य हेमचद्र बारहवी शताब्दी के ज्ञान सूर्य थे। उनके विशाल पाण्डित्य के कारण ही श्रद्धालु लोग उन्हे कलिकाल-सर्वज्ञ मानते थे।

राजा कुमारपाल की मृत्यु के बाद गुजरात के राजसिंहासन पर अजयपाल आये तथा इनके पीछे वीरधवल सम्राट् का शासन आया। वस्तुपाल और तेजपाल इन्ही महाराज के महामात्य थे। दोनो ही महामत्री जैन धर्मानुयायी थे। दोनो ही बडे विद्वान् थे। वस्तुपाल का 'नर-नारायणानन्द' महाकाव्य तो आज भी प्रसिद्ध है।

तेरहवी शताब्दी के मध्य भाग अर्थात् विक्रम सम्वत् १२५० से लेकर पन्द्रहवी शताब्दी तक अनेको विद्वान् आचार्य सत हुए है। जिनमे मन्त्रीवर वस्तुपाल के गुरुदेव विजयसेन सूरि (१२८८)श्री उदयप्रभ सूरि (१२९०) वासु पूज्य-चरित्र के रचयिता श्री वर्द्धमान सूरि (१२९९) उपाध्याय श्रीचन्द्र तिलक (१३१२) श्री जिनेश्वर सूरि (१३२५) उदयप्रभ सूरि के शिष्य—स्याद्वाद-मजरी कार – श्री मल्लिषेण सूरि (१३४९) आदि सतो के नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त आचार्य मेरुतु ग, आचार्य, गुणरत्न आचार्य, सोमचद्र आदि एक नही अनेको साहित्य सर्जक, तथा धर्म-प्रचारक मुनिराज हुए हैं। जिनका वर्णन पूर्ण रूप से प्राप्त न होने के कारण हम देने मे असमर्थ है। जैन-धर्म के इतिहास का भूतकाल बडा ही गौरवपूर्ण रहा है।

—०—

प्रकरण पाँचवाँ

अनेक भाषाओं की जननी प्राकृत

विक्रम की पन्द्रहवी शताब्दी का काल धर्म, समाज तथा भाषा इन तीनो दृष्टियो से क्राति का काल रहा है। सुदूर पूर्व प्राचोनकाल मे अर्द्ध मागधी प्राकृत-भाषा लोक-भाषा के रूप मे प्रयुक्त होती थी। तीर्थङ्करयुग मे तो इस भाषा का विशेप प्रचार हुआ है। सभी तीर्थङ्कर सदा-सदा से अर्ध-मागधी भाषा मे ही अपना प्रवचन देते है। पाली-भाषा ने प्राकृत अर्द्ध मागधी के सहयोग से ही जन्म लिया था। इसलिए दोनो भाषाओ मे पूरी तो नही पर किसी अश मे समानता भी पाई जाती है। जैन साहित्य-सर्जको ने प्रचार की दृष्टि से भाषा की ओर सदा ही अपना विशेष ध्यान रखा है। यही कारण है कि जब-जब भाषा में किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव हुई, उसे स्वीकार कर लिया गया। भारतीय भाषाओ के निर्माण मे जैन साहित्य-कारो विद्वानो, आचार्यो का विशेष योग रहा है। प्राकृत तथा पाली-भाषा का मिला-जुला रूप जब लोक-प्रवाह से आकर्षित हुआ तो वही रूप अपभ्रश के रूप में परिणत हो गया। राजस्थानी, गुजराती, महाराष्ट्री आदि जितनी भी

भाषाएँ देश मे प्रचलित है सभी अपभ्रंश भाषा की सताने है। आधुनिक हिन्दी के प्राचीन इतिहास मे भी जैनाचार्यों का पूरा सहयोग रहा है। हिन्दी इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य राम-चन्द्र शुक्ल ने तो हिन्दी भाषा की उत्पत्ति वि० स० ६६३ श्री देवसेनकृत श्रावकाचार तथा आचार्य हेमचद्र के द्वयाश्रय काव्य से ही स्वीकार की है। जैनाचार्यों का मुख्य लक्ष्य धर्म-प्रचार का रहा है, अत उन्होने भाषा आदि का व्यर्थ मोह कभी नही किया। जहाँ-जहाँ और जब जब जिस भाषा की आवश्यकता हुई उन्होने उसी भाषा मे विपुल मात्रा मे साहित्य का निर्माण किया है। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि हमारे पूर्वज जैनाचार्य ही आज तक की समस्त लोक-भाषाओ के मूल मे स्रष्टा रहे है।

तत्कालीन परिस्थितियाँ

पन्द्रहवी तथा सोलहवी सदी का समय बडा सक्रमण का समय रहा है। उन दिनो जनता का सामाजिक-जीवन अस्त व्यस्त हो रहा था। राजकीय अराजकता के कारण मनुष्य मनुष्य से भयभीत हो रहा था। पठानो के आक्रमण आरम्भ हो चुके थे। जनता उनसे बहुत ही सत्रस्त थी। भारतीय राज्य आपसी सघर्ष के अखाडे बन चुके थे। राष्ट्र की नीव दिनोदिन कमजोर हो रही थी। चारो ओर नैतिकता का ह्रास हो रहा था। सक्षेप मे देश का सामाजिक जीवन पतन की ओर अग्रसर हो रहा था। दुष्काल आदि प्राकृतिक आघातो से जनता पीडित थी। साधुओ का जीवन भी दिनोदिन शिथिल होता जा रहा था। सम्प्रदाय, गच्छ आदि का मतभेद अपना व्यापक रूप लेता जा रहा था। शास्त्र-विरुद्ध आचार-विचार का चारो ओर बोलबाला था। जातिवाद, सम्प्रदायवाद और व्यक्तिवाद का भयकर प्रचार हो

रहा था। शास्त्रार्थ के नाम पर आए दिन झगडे होते थे। श्रमण-वर्ग विशुद्ध चरित्र-पालन की ओर से उदासोन होता जा रहा था। साधु-सस्था साधना के मार्ग से पीछे हट रही थी। रूढिवाद ने जनता मे जडता के बीज बो दिए थे। सत्य-धर्म लुप्त हो रहा था। शारीरिक आरोग्य की ओर विषेश ध्यान दिया जाता था। जनता का धार्मिक स्वास्थ्य क्षीण हो रहा था। चैत्य-वासियो की परिग्रह-परायणता मनमाने ढग से पनप रही थी। यति समाज तत्रो-मत्रो के जाल मे फस चुका था। चरित्र-निर्माण की ओर बहुत ही कम लोगो का ध्यान था। भगवान् महावीर की विशुद्ध सयम-परम्परा मे आचार-विचार की मलिनता का जहर जन-मानस को पथ-भ्रष्ट कर रहा था। इन समस्त विचारो के निराकरण के लिए देश को एक महापुरुष की आवश्यकता थी। धर्मप्राण लोकाशाह का जन्म इसी आवश्यकता की पूर्ति मे हुआ था।

भगवान् की भविष्य वाणी

जब--जब ससार मे अज्ञान का अन्धकार बढा है, तब--तब यहाँ महापुरुषो का जन्म होता आया है। देश का धार्मिक सामाजिक तथा राष्ट्रीय पुनरुत्थान करने के लिए सदासे युग पुरुष उत्पन्न होते आए है। पद्रहवी और सोलहवीं शताब्दी का समय सभी प्रकार से अन्धकार का समय था। भगवान् महावीर की भविष्यवाणी के लिए वह समय सर्वथा उपयुक्त बन चुका था। आगम का कथन है कि एक बार शक्रेन्द्र ने पूछा— हे भगवन्! आपके जन्म-नक्षत्र पर बैठे महाभस्मनामक ग्रह का क्या फल होगा ?

भगवान् ने कहा — इन्द्र! यह भस्म ग्रह दो हजार वर्षों तक सच्चे साधु और साध्वियो की पूजा प्रतिष्ठा को मद करेगा

दो हजार वर्षों के बाद यह ग्रह उतरेगा । तब जैन शासन मे नई चेतना का सचार होगा । तभी सच्चे साधु-सतो को उचित सम्मान मिलने लगेगा ।

भगवान् की यह भविष्यवाणी अक्षरश सत्य निकली । ठीक वीर सम्वत् २००१ मे धर्मप्रभावक लोकाशाह का जन्म हुआ । चतुर्विध तीर्थ मे व्याप्त अज्ञान अधकार एक दम छटने लगा । ऐसा प्रतीत होने लगा मानो श्रीसघ मे धर्मरूपी सूर्य का उदय हो गया हो । धर्मवीर लोकाशाह क्राति के अग्रदूत थे । वे बुराइयो तथा अव्यवहारिकताओ से सघर्ष करने मे कभी नही हिचकते थे । उनका त्याग, बलिदान तथा सत्य-निष्ठा सचमुच अनुपम थी । उन दिनो एक ओर तो कबीर जी निष्पक्ष भाव से तत्कालीन पाखण्डो से लोहा ले रहे थे, दूसरी ओर श्री लोकाशाह समाज मे धर्म के नाम पर होने वाले आडम्बरो का निर्भीकतापूर्वक विरोध कर रहे थे ।

लोंकाशाह-अवतरण

श्रीमान् लोकाशाह की ऐतिहासिकता के विषय मे आज किसी को भी मत-भेद नही है । उन्होने स्वय अपना परिचय अथवा अपनी परम्परा का उल्लेख कही भी नही किया है । परम्परागत वृत्तान्तो तथा तत्कालीन कृतियो के आधार पर ही उनके इतिहास की जानकारी प्राप्त होती है । अनेक भण्डारो मे भी उनके जीवनसम्बन्धी परिचय की प्राचीन सामग्री सगृहीत है । श्रीमान् लोकाशाह के जन्म-सम्वत् के विषय मे अनेक धारणाएँ प्रचलित है । कोई उनका जन्म, १४७५ मे कोई १४८२ मे तथा कोई १४७२ को प्रमाणित मानते है । इनमे वि स १४८२ का वर्ष ही ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक जँचता है । वि स १४८२

कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा के दिन गुजरात के पाटनगर अहमदाबाद मे आपका जन्म होना माना जाता है। कुछ विद्वान् उनका जन्म "अरहट्ट बाड़ा" नामक स्थान पर मानते है। यह ग्राम राजस्थान के सिरोही जिले मे है।

एक इतिहास-लेखक ने उनका जन्म सौराष्ट्र प्रान्त के लिम्बड़ी ग्राम मे दशा श्रीमाली के घर मे होना लिखा है। किसी ने सौराष्ट्र की नदी के किनारे बसे हुए नागवेश ग्राम मे हरिश्चन्द्र सेठ की धर्मपत्नी मघी बाई की कुक्षि से उनका जन्म माना है। कुछ लोग उनका जन्म 'जालौर' मे मानते है। इन सभी प्रमाणो मे अहमदाबाद का प्रमाण उचित जंचता है। क्योकि अणहिलपुर पाटण के लखमसी श्रेष्ठि ने अहमदाबाद आकर ही उनसे धर्म-चर्चा की थी। अरहट्टवाडा, पाटन, और सूरत आदि सघो के नागजी, दुलीचन्द्र जी मोतीचन्द्र तथा शम्भु जी ये चारो सघवी जब अहमदाबाद मे आये थे तो उनका लोकाशाह के घर जाना, इस बात को सिद्ध करता है कि लोकाशाह का जन्मस्थान अहमदाबाद ही होना चाहिए।

विवाह

श्रीमान् लोकाशाह जाति से ओसवाल थे। उनके पिता का नाम हेमाशाह और माता का नाम गंगादेवी था। किसी-किसी इतिहासकार ने उनकी माता का नाम केशर बाई भी लिखा है, किन्तु आधुनिक इतिहासज्ञ गगादेवी नाम को ही अधिक प्रमाणित मानते है। श्री हेमाशाह अहमदाबाद के प्रतिष्ठित व्यापारी थे। तत्कालीन व्यापारी वर्ग पर उनका विशेष प्रभाव था। उनका जीवन सामाजिक तथा धार्मिक दोनो ही रूप से जनोपयोगी था, श्रावकधर्म-परायण श्री हेमाशाह के सरक्षण मे बालक लोकाशाह

का बाल्यकाल पूरी सुख-सुविधापूर्वक व्यतीत हुआ। छ-सात वर्ष की आयु मे उनका अध्ययन आरम्भ कराया गया। थोडे ही वर्षो मे उन्होने प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी आदि अनेक भाषाओ का ज्ञान प्राप्त कर लिया। मधुरभाषी होने के साथ-साथ लोकाशाह अपने समय के सुन्दर लेखक भी थे। उनका लिखा हुआ एक-एक अक्षर मोती के समान सुन्दर लगता था। शास्त्रीयज्ञान की उनके मन मे विशेष रुचि थी। लोकाशाह अपने सद्गुणो के कारण अपने पिता से भी अधिक प्रसिद्ध हो गये। जब वे पूर्ण युवा हो गए तब सिरोही के प्रसिद्ध सेठ शाह ओधवजी की सुपुत्री 'सुदर्शना' के साथ उनका विवाह कर दिया गया। विवाह के तीन वर्ष बाद उनके यहा 'पूर्णचन्द्र' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

सच्चा पारखी

श्रीमान् लोकाशाह का वैवाहिक जीवन पूर्ण सुखी था। अपनी कार्य-कुशलता, तथा सज्जनता के कारण उनका राज्य-भर मे सम्मान था। उनके पास जितना धन-सम्पत्ति का ऐश्वर्य था, उससे भी अधिक भरपूर उनके गुणो का भण्डार था। सदाचार और नैतिकता की तो वे साक्षात् मूर्ति थे। व्यावसायिक जगत् मे भी उनका अपना एक प्रमुख स्थान था। उनकी प्रामाणिकता की सब पर छाप थी। इन्ही दिनो मे एक-एक वर्ष के अन्तर से उनके माता-पिता की मृत्यु हो गई। इस समय उनकी आयु लगभग चौबीस, पच्चीस वर्ष की थी। माता पिता की मृत्यु से बडा दु ख हुआ। ससार की अनित्यता उन्हे दिव्य-आत्मिक प्रेरणा देने लगी। ससार की किसी भी वस्तु का उनके घर मे अभाव नही था। फिर भी उन्हे गृहस्थ-जीवन से सन्तोष नही था। वे अपना आत्मिक प्रकाश जागृत करना चाहते थे। उस परम-

तत्त्व की खोज के लिए उन्होने अब विशेष प्रयत्न आरम्भ कर दिया। वे दिन रात जब भी गृह-कार्य से अवकाश मिलता धर्म-शास्त्रो का स्वाध्याय करते रहते। माता के स्वर्गवास के कारण व्यवसाय का सारा उत्तरदायित्व उनके ऊपर आ चुका था। उनका मुख्य व्यवसाय जवाहरात का था। तत्कालीन जौहरियो मे उनकी 'परख' की एक धाक थी। अपने व्यापार मे वे अत्यत निपुण तथा प्रामाणिक थे। पुण्य-कार्यो का अवसर भी अपने हाथ से नही जाने देते थे। जितनी भी हो सकती थी समय-समय पर जनता की सहायता करते रहते थे। सिरोही राज्य के भयकर अकाल के समय उन्होने अपना धन, जनता की सेवा मे पानी की तरह बहा दिया था। प्रस्तर-रत्नो की अपेक्षा वे नररत्नो को विशेष महत्त्व देते थे। भगवान् महावीर की अहिसा मे उनका अटूट विश्वास था। उनकी दृष्टि बडी ही सूक्ष्म थी। जवाहरात की परख मे तो उनकी आँखे, चमत्कारपूर्ण काम करती थी।

सफल मंत्री

कहते है एक बार बादशाह मुहम्मद के दरबार मे 'सूरत' से एक जोहरी दो मोती लेकर आया। बादशाह मोतियो को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। खरीदने की दृष्टि से उसने मोतियो का मूल्य अँचवाने के लिए अहमदाबाद शहर के सभी प्रमुख जौहरियो को बुलाया। सभी जोहरियो ने दोनो मोतियो को 'सच्चा' बताया। जब लोकाशाह की बारी आई तो उन्होने एक मोती को खरा और दूसरे को खोटा बताया। खोटे मोती की परख के लिए उसे एरन पर रखकर हथोडे की चोट लगाई गई। चोट लगते ही उसके टुकडे २ हो गये। मोती की इस परीक्षा को देखकर सारे जौहरी आश्चर्यचकित हो गए। लोकाशाह की विलक्षण-बुद्धि

देखकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ । उसने उन्हे अपना कोषाध्यक्ष बना लिया । कुछ इतिहासकारो का मत है कि बादशाह ने उन्हे अपने मन्त्री-पद पर नियुक्त किया था । इस पद पर वे दश वर्ष तक रहे । इन्ही दिनो चम्पानेर के रावल ने मुहम्मदशाह पर आक्रमण कर दिया । शत्रु के प्रति शिथिल नीति अपनाने के कारण उसके पुत्र कुतुबशाह ने जहर देकर अपने पिता को मार डाला । बादशाह की इस क्रूर हत्या से लोकाशाह के हृदय पर बडा प्रभाव पडा । अब वे राज काज से पूर्णतया विरक्तमे रहने लगे । कुतुबशाह ने उन्हे राज्य-प्रबध मे पुन लाने के अनेक प्रयत्न किये, किन्तु श्रीमान् लोकाशाह ने सब प्रलोभन अस्वीकार कर दिये ।

सुन्दर लेखक

हम पीछे बता आये है कि श्री लोकाशाह के अक्षर बडे ही सुन्दर थे । वे नित्यप्रति अपने घर पर बैठकर कुछ न कुछ अवश्य ही लिखा करते थे । इसीलिए उनका नाम लेखको की श्रेणी मे प्रसिद्ध हो गया । एक दिन तत्कालीन प्रसिद्ध यति श्री ज्ञान सुन्दर जी लोकाशाह के घर आये । उन्होने उनके सुन्दर अक्षरो को देखकर विनोद मे कहा—शाह ! तुम्हारे अक्षर बडे ही सुन्दर है, यदि तुम प्राचीन-शास्त्रो के सरक्षण मे इनका योग दे सको तो जिनवाणी माता की बडी भारी सेवा होगी । आगम साहित्य दिनोदिन विशीर्ण होता जा रहा है । उनके अक्षर मिट रहे हैं । यदि तुम थोडा सा समय निकालकर शास्त्रो की प्रतिलिपियाँ कर दो तो जिन शासन का बडा उपकार होगा । यति जी की प्रेरणा से श्री लोकाशाह जी ने शास्त्रो को लिखना आरम्भ कर दिया । आगम के रसिक तो वे पहिले से ही थे । श्रुत-ज्ञान के लेखन से उनके भाव और उन्नत हो गए । वे दिन

मे यति जी के लिए प्रतिलिपि करते और रात्रि मे उसी शास्त्र की अपने लिए प्रतिलिपि कर लेते। ज्यो ज्यो शास्त्र लेखन आगे बढ़ता रहा त्यो-त्यो आत्मचिंतन की गति तीव्र वेग से दौड़ने लगी। शास्त्र-लेखन कार्य के द्वारा बढ़ते हुए शास्त्रीय ज्ञान से उन्हे ऐसा प्रतीत हुआ कि वर्तमान साधु- समाज अपनी मुनिमर्यादाओ के विपरीत जा रहा है, सिद्धान्तो का सरक्षण करने वाला वर्ग ही सिद्धान्तो की अवहेलना कर रहा है, जीवन मे दम्भ अधिक प्रवेश कर चुका है। चैत्यवाद के नाम पर जनता की श्रद्धा के साथ खिलवाड की जा रही है। अपरिग्रही कहलाने वाले धर्म के नाम पर परिग्रह का सञ्चय कर रहे हैं। आगमो के अर्थो के अनर्थ करके भोली जनता को अपनी ओर आकर्षित किया जा रहा है। यह सब कुछ पढकर तथा आँखो से देखकर श्रीमान् लोकाशाह की आत्मा काँप उठी। उन्होने इस शास्त्र-विरुद्ध व्यवहार का प्रतिकार करने का दृढ सकल्प कर लिया। वे वीतराग के धर्म से जनता को परिचित कराना चाहते थे। जनता को दम्भ और पाखण्ड से बचाने का यही सरल उपाय था।

अथक प्रचारक

शास्त्र-लेखन के साथ-साथ अब वे अपने आगमानुसारी विचारो का भी लोगो मे प्रचार करने लगे। उनके क्रातिकारी विचार बडे वेग के साथ चारो ओर फैलने लगे। धर्म के नाम पर होने वाले प्रपचो से जनता सजग होने लगी। धर्मदम्भी लोग उन्हे सशक दृष्टि से देखने लगे। शास्त्रो की प्रतिलिपियाँ कराने वाले यति जी भी श्री लोकाशाह के सत्य विचारो को सुनकर घबरा उठे एक दिन वे उनके घर पर आहार लेने गये। वहाँ शास्त्र की दो प्रतिलिपियाँ देख कर उनका हृदय आशका से भर गया। उन्होने उसी क्षण मे लेखन-कार्य बन्द करा दिया। शाह जी

अब तक जितनी प्रतिलिपियां कर चुके थे उन्ही के आधार पर उन्होने निर्ग्रन्थ धर्म का सच्चा स्वरूप जनता के सन्मुख रखना आरम्भ कर दिया। लोग वास्तविकता की ओर आकर्षित होने लगे। उधर विरोधियो ने भी अपने बचाव के लिए विरुद्ध प्रचार आरम्भ कर दिया। एक बार चारो ओर धर्म और अधर्म का सघर्ष छिड गया।

अहमदाबाद व्यापार का प्रसिद्ध केन्द्र था। अनेक देशो से व्यापारी लोग वहाँ आते थे। श्रीमान् लोकाशाह के विचार सहज ही मे उनके कानो तक पहुँच जाते थे। उनके सिद्धान्तो का दिनोदिन प्रचार तथा प्रभाव बढने लगा। चैत्यवासियो की अपेक्षा जनता श्री लोकाशाह की ओर अधिक आकर्षित होने लगी। विरोधी लोग इस प्रचार को सहन न कर सके। ये निरन्तर उनके विषय मे विरुद्ध प्रचार करते रहे।

सफलता का श्री गणेश

विक्रम सम्वत् १५२८ की बात है। अणहिलपुर के प्रसिद्ध सेठ लखमसी भाई श्री शाह के विचारो मे परिवर्तन लाने के लिए अहमदाबाद आये। उन्होने श्रीमान् लोकाशाह से मूर्ति-पूजा आदि विषयो पर अनेक प्रश्नोत्तर किए। किन्तु शाह के विचारो को बदलते-बदलते वे स्वय बदल गए। उनका अज्ञान मल एक दम धुल गया। उन्हे निश्चय हो गया कि मूर्ति-पूजा शास्त्र-विरुद्ध है। उनकी दृढ धारणा बन गई कि मूर्ति एक कला है। वह इतिहास की वस्तु बन सकती है, पर आध्यात्मिकता से उसका कोई सम्बन्ध नही है। श्री शाहजी ने जिनदास मेहत्तर तथा श्री हरिभद्र सूरि जी आदि अनेक पूर्ववर्ती विद्वान् आचार्यो के मूर्ति-पूजा-विरोधी विचारो से श्री लखमसी को अवगत कराया और

जिन शासन के अनेक तत्त्व उन्हे समझाये गये । जिनसे प्रभावित होकर सेठ लखमसी श्री शाह के शिष्य होकर वापिस चले गये ।

एक आदर्श गृहस्थ

यहां एक बात पर विचार करना आवश्यक है । कुछ विद्वानो का मत है कि श्री लोकाशाह ने जैन मुनि-दीक्षा ग्रहण की थी । कुछ इतिहासकार इस बात का समर्थन करते है कि वे आजीवन गृहस्थ ही रहे । दीक्षा-पक्ष के विद्वान् अपने अनेक ढाल चौपाइयो के प्रमाणो से उन्हे दीक्षित होना सिद्ध करते है । उनका कहना है कि जैसलमेर के भण्डार मे ताडपत्राङ्कित एक प्राचीन पट्टावली मे श्री लोकाशाह के दीक्षित होने का स्पष्ट उल्लेख है । श्री ज्ञान यतिनिर्मित 'धर्म-परीक्षा' नाटक मे भी श्री शाह की दीक्षा के बारे मे यह उल्लेख मिलता है कि उन्होने वि० स० १५३६ के मार्ग शीर्ष शु० पचमी को श्री ज्ञानमुनिजी के शिष्य श्री सोहनमुनिजी के पास दीक्षा ग्रहण की थी ।

इसके विरुद्ध गृहस्थ-पक्ष के विद्वान् उन्हे गृहस्थ ही स्वीकार करते है । उनके पास अनेक प्राचीन पट्टावलियो के प्रमाण है, जिनमे लोकाशाह को गृहस्थ ही स्वीकार किया गया है । वि० स० १५४३ के लावण्यसमय कवि ने अपनी चौपाइयो मे स्पष्ट लिखा है कि लोकाशाह पौषध प्रतिक्रमण तथा पच्चक्खाण नही करता था वह जिनपूजा, अष्टापद तीर्थ तथा प्रतिमाप्रसाद का भी विरोध करता था । इससे यह तो स्पष्ट होता है कि यदि श्री लोकाशाह दीक्षित होते तो उन पर पौषध आदि क्रियाओ के न करने का आरोप न लगाया जाता । कुछ भी हो, भले ही उन्होने द्रव्यरूप से दीक्षा न ग्रहण की हो पर उनके भाव तो दीक्षारूप ही थे । वे एक आदर्श गृहस्थ थे । उनका जीवन सयम-पोषक था । विक्रम

सम्वत् १५०६ मे पाटन मे श्री सुमतिविजय जी के पास उनके दीक्षित होकर श्री लक्ष्मीविजय, नाम से प्रसिद्ध होने के प्रमाण मे कुछ तथ्य नही दीखता। यदि ऐसा हुआ होता तो उनके गच्छ का नाम लोकागच्छ न पडता। क्यो कि 'लोकाशाह' उनका पूर्ण का नाम था। इस प्रकार उनको दीक्षा के विषय मे अनेक परस्पर विरोधी प्रमाण मिलने पर भी उनका गृहस्थ रहना ही अधिक सगत जँचता है, फिर भी इतिहास के विद्वानो को इस महत्त्वपूर्ण तथ्य का पता लगाने का प्रयत्न अवश्य ही करना चाहिए।

लौंकागच्छ की स्थापना

श्री लखमसी भाई के शिष्यत्व स्वीकार कर लेने के कुछ समय बाद सिरोही, अरहट्टवाडा पाटण और सूरत के चारो सघ यात्रा करते हुए अहमदाबाद आये। यहाँ श्री लोकाशाह जी के साथ चारो सघो के सघपति नागजी, दलीचद जी, मोतीचन्द जी और शभुजी इन चारो प्रमुख पुरुषो ने अनेक तत्त्वचर्चाएँ की। श्री शाह की पवित्र वाणी का उन पर इतना गहरा प्रभाव पडा कि सघ-समूह मे से ४५ पुरुष श्री लोकाशाह की प्ररूपणा के अनुसार दीक्षा लेने को तैयार हो गए। यहाँ श्री लोकाशाह की प्ररूपणा के अनुसार दीक्षा लेने का प्रसग भी यही प्रमाणित करता है कि वे उस समय तक स्वय दीक्षित नही हुए थे। गृहस्थवास मे ही उन्होने इन ४५ पुरुषो को प्रतिबोध दिया था। कहते है कि हैदराबाद की ओर विचरण करने वाले श्री ज्ञानमुनिजी को अहमदाबाद पधारने की प्रार्थना की गई। श्री मुनिराज २१ मुनिराजो के साथ अहमदाबाद पधारे। वि०स० १५२८ वैशाख शुक्ला अक्षय तृतीया के दिन ४५ पुरुषो को भागवती जैन दीक्षा प्रदान कर दी गई। श्री लोकाशाह की विशेष प्रेरणा से ये दीक्षाएँ हुई थी। अत इसी

स्मृति मे यहाँ पर समस्त मुनियो के सघटन का नाम लोकागच्छ रखागया। लोकागच्छ की एक पृथक् तथा शास्त्र-सम्मत समाचारी तैयार की गई। उसके अनुसार चलने वाले मुनियो को शुद्ध साधु स्वीकार किया गया। छासठ मुनिराजो ने सर्वप्रथम इस समाचारी पर चलने का दृढ सकल्प किया। मुनिराजो ने अपने उपकारो के नाम-स्मरण के लिए ही गच्छ का यह नाम चुना था।

चतुर्विध संघ निर्माण

साधु मुनिराजो का पूर्ण सहयोग मिलने से श्री लोकाशाह के विचार बडी ही द्रुत गति से घर-घर पहुँचने लगे। जनता बडे ही वेग के साथ इन विचारो की ओर आकर्षित होने लगी। थोडे ही वर्षो मे लोकागच्छ के साधुओ की सख्या चारसौ तक पहुँच गई। लाखो की सख्या मे श्रावक उनके अनुयायी हो गए।

वि० स० १५३१ के लगभग अनेक स्त्रियो के भी लोकागच्छ मे दीक्षित होने के प्रमाण मिलते है। उनमे श्री सोमाजी, गोधाजी तथा श्री इन्द्राजी के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। ये सब दीक्षाएँ श्री 'चरणा' महासतीजी के श्रीचरणो में हुई थी। श्री चरणाजी ज्ञानमुनिजी की परम्परा मे से थी। उस प्रकार लोकागच्छ के चतुर्विध सघ का निर्माण बडे ही सुन्दर ढग से हो गया। सभी मुनिराज तथा महासतियांजी मुनि-मर्यादा-पालन मे पूर्ण दृढ थे। उनका आदर्श जीवन तत्कालीन शिथिलाचारियो के लिए एक महान् चुनौती था।

अबाधित प्रचार

कर्तव्यपरायण मुनिराजो के धर्म-प्रचार से चैत्यवादियो मे खलबली मच गई। असत्य के पैर उखड गये। लोकागच्छ दिन दुगुनी

रात चौगुनी उन्नति करने लगा। विरोधियो ने लोकाशाह तथा उनके अनुयायियो पर अनेक असत्य आक्षेप लगाये। पर कोई भी आक्षेप उस सत्यवीर के प्रचार को न रोक सका। जिस प्रकार सूर्य के प्रकट होते ही अन्धकार समाप्त हो जाता है, ठीक उसी प्रकार लोकासिद्धान्तरूप शास्त्रीय सूर्य का उदय होने पर मिथ्या, पाखड का अधकार समाप्त हो गया। जनता धर्म की वास्तविकता को समझने लगी। अब यह तथ्य किसी से भी छिपा न रह सका कि—मूर्तिपूजा जिन-शासन-सम्मत नही है। यह तो स्वार्थ-लोलुपी लोगो का चलाया हुआ मार्ग है। आत्मा की सत्ता मे विश्वास करने वाले साधक के लिए मूर्ति-पूजा की कोई उपयोगिता नही है। भगवान् की मूर्ति बनाकर उस पर नाना-प्रकार के व्यञ्जन चढाना, किसी भी प्रकार उचित नही है। पूर्व-वर्ती जितने भी सम्यक्त्वी आचार्य हुए है उन सभी ने मूर्ति पूजा को अनावश्यक बताया है। साधु को केवल उसके गुणो से ही पूज्य माना जाता है। साधु का वेश पहन कर पालकी मे बैठना, मृतको के पगले पुजवाना। मूर्त्ति पूजा के नाम पर धन-सग्रह करना, कल्याण का मार्ग नही है। यह तो पतन का रास्ता है। धर्मवीर लोकाशाह के सिद्धान्त-प्रचार से भोली जनता चैत्य-वासियो के चगुल से मुक्त होने लगी। यह जिन-शासन के सौभाग्य का समय था। जनता के मन-मानस मे सच्चे साधुओ की प्रतिष्ठा पुन स्थापित होने लगी। स्थान-स्थान नगर-नगर और शहर-शहर मे शास्त्रार्थ सभाएँ होने लगी। मूर्त्ति-पूजा के हिमायती सभी जगह परास्त होते चले गये। यह सारा प्रचार दश-बारह वर्षो के थोडे से समय मे ही हुआ था। सूर्य का उदय होने पर—अधकार के छटने मे अधिक समय नही लगता। लगभग भारत के सभी प्रमुख प्रान्तो मे श्रीमान् लोकाशाह का प्रचार पहुँच चुका था।

धर्मप्राण का स्वर्गगमन

धर्मप्राण श्री लोकाशाह के स्वर्गवास के विषय मे भी अनेक मतभेद हैं। यतिराज भानुचन्द्रजी का मत है कि धर्मवीर लोकाशाह का स्वर्गवास विक्रम सम्वत् १५३२ मे हुआ था। लोकागच्छीय यति श्री केशवजी उनका स्वर्गवास ५६ वर्ष की अवस्था मे वि० स० १५३३ मे मानते है। वीर-वशावली मे उनका स्वर्गवास काल १५३५ माना है। प्रभु वीर पट्टावली के लेखक श्री मणिलाल जी महाराज ने लोकाशाह के स्वर्गवास का समय १५४१ निर्धारित किया है। ये सभी प्रमाण एक दूसरे से भिन्न है। इनमे १५४१ का काल ही उचित लगता है। उनके स्वर्गवास के विषय मे भी अनेक धारणाएँ प्रचलित है। कोई तो उनका स्वाभाविक मृत्यु मानते है। कोई उन्हे विरोधियो के द्वारा विष देकर मारा गया बताते है। इनमे दूसरे 'विषप्रसग' के प्रमाण अधिक पुष्ट मिलते है। एक प्रमाण मे उनका स्वगवास स्थान अलवर माना गया है।

कुछ भी हुआ हो, उनका जीवन और मरण दोनो ही ससार के लिए आदर्श थे। वे एक वीर योद्धा की भाँति ससार मे आये और कर्त्तव्य-निष्ठ सैनिक की भाँति अपने जीवन का बलिदान कर गये। सच तो यह है कि उन्हे पाकर जीवन धन्य हुआ और अन्त मे उनका दर्शन करके मृत्यु भी धन्य हो गई।

लोंकागच्छ की समाचारी

महापुरुष अपने जीवन मे कुछ अटल सिद्धान्तो को लेकर चलते है। सत्य-सिद्धान्तो पर चलते-चलते अन्त मे उनका जीवन ही सिद्धान्त बन जाता है। साधु-सस्था के कल्याण के लिए श्रीमान् लोकाशाह तथा उनके समर्थको ने अनेक आगमसम्मत

नियमो का निर्माण किया था। इन नियमो पर चलने से साधु तथा श्रावक दोनो का हित हो सकता है। प्राचीन शास्त्र-भण्डारो मे इन नियमो के अनेक पत्र प्राप्त होते है। उन सभी नियमो का लिखना यहाँ आवश्यक नही है। उनमे से कुछ उपयोगी नियम जानकारी के लिए यहाँ दिये जारहे है।

१–आगमसम्मत टीकाओ को ही प्रामाणिक माना जाय।
२–आगम के अनुसार दृढतापूर्वक सयमी जीवन व्यतीत किया जाय।
३–धर्मदृष्टि से 'प्रतिमा-पूजन' शास्त्रसम्मत नही है।
४–शुद्ध सात्त्विक शाकाहारी प्रत्येक कुल का आहार लिया जा सकता है।
५–स्थापनाचार्य की स्थापना की कोई आवश्यकता नही है।
६–उपवास आदि व्रतो मे सभी प्रकार का प्रासुक जल लिया जा सकता है।
७–पर्व-तिथि के बिना भी उपवास किया जा सकता है।
८–साधुओ को मन्त्र-तन्त्र तथा यन्त्र आदि विद्याओ का प्रयोग नही करना चाहिए।
९–श्रावक भिक्षा कर सकता है, पर दान नही ले सकता।
१०–दया भाव से गरीबो को दान देना पाप नही है, अपितु पुण्य का कारण है।
११–दण्ड नही रखा जाना चाहिए।

इसी प्रकार के और भी अनेक नियम बनाये गये थे। जिनका पालन तत्कालीन लोकागच्छीय साधु जन बडी ही दृढता के साथ करते थे। इसी दृढ साधुत्व के कारण लोकागच्छ ने जनता मे लोकप्रियता प्राप्त की थी। सच्चे साधुत्व का धर्म-प्रेमी जनता सदा से सम्मान करती आई है।

एक सिंहावलोकन

धर्मप्राण लोकाशाह ने जिस सत्य का सिंहनाद किया था, उसके पीछे कोई मत, पन्थ या सम्प्रदाय चलाने की सकुचित भावना उनके मन मे नही थी। ससार मे पूजा अथवा प्रतिष्ठा प्राप्त करने का भी उनका कोई सकल्प नही था। सुधारक या क्रान्ति-स्रष्टा बनकर यशोपार्जन की कामना भी उनके हृदय मे नही थी। वे तो सच्चे हृदय से अपना और दूसरे जीवो का कल्याण चाहते थे। सबको सुख की राह बताने का ही उनका सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य था। सत्य को स्वय समझकर फिर उसे जनता के सम्मुख रखना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे। इसी शुभ सकल्प की पूर्ति के लिए उन्होने अपने सुख ऐश्वर्य के समस्त ठाठ बाट को कल्याणपथ की बलि-वेदी पर चढा दिया था। इतना करने पर भी अनेक अधविश्वासी धर्मवीर लोकाशाह को अच्छी तरह नही समझ पाये। वर्तमान मे भी ऐसे अनेक व्यक्ति है जो अपने साम्प्रदायिक दृष्टिकोण के कारण उस नरपुगव के आदर्श-जीवन को नही समझ पारहे है। यह उनके पूर्वसचित कर्मो का ही दोष है कि वे साक्षात् सन्मुख खडे सत्य का भी दर्शन नही कर पा रहे है।

धर्ममूर्ति लोकाशाह के सन्मुख विरोधियो का एक बहुत बडा दल था। किन्तु वे किंचित् भी घबराये नही। जिस प्रकार भी बन सका अपना सत्य प्रचार कर लेते है पर विरोधियो मे अपने सिद्धान्तो का प्रचार करना कोई आसान काम नही है। लोकाशाह इसके अपवाद थे। उन्होने अपने विरोधियो मे निर्भीकतापूर्वक दिल खोलकर अपने शास्त्रीय तत्त्व-ज्ञान का प्रचार किया था। रागद्वेष की दावाग्नि मे शांति का प्रचार कोई समर्थ व्यक्ति ही कर सकता है। उनके सभी प्रचार अहिंसात्मक होते थे। उनमे

असत्य का किंचिन्मात्र भी लेश नही था। सत्य को छिपाने की चोरी उन्होने कभी नही की। ब्रह्मचर्यसम्मत सदाचार की प्रतिष्ठा उनकी रग-रग मे व्याप्त थी। वे सासारिक महान् ऐश्वर्य पाकर भी निर्लिप्त कमल के समान थे। उनकी तत्त्व-विवेचनशैली बडी ही विलक्षण थी। वे चतुर्विध सघ के सफल चिकित्सक थे। सैकडो वर्षो के पाखण्ड रोग को उन्होने बडी ही कुशलता के साथ थोडे ही दिनो मे समाप्त कर दिया था। उस पक्षपात के युग मे समाज को स्वस्थ विचारधारा देना उन्ही के वश की बात थी। विरोधी दूर से ही उनका विरोध कर पाते थे। समीप आने पर तो उनका विरोध ही शात हो जाता था। सत्य तो यह है कि लोका-शाह के अनुयायियो मे अधिक सख्या उन्ही लोगो की थी, जो पहले उनका जी भर कर विरोध करते थे।

पिछली शताब्दियो मे अनेक ऐसे आचार्य हो चुके थे, जो साधु-समाज के शिथिलाचार से अत्यन्त दुखी थे। जिन चन्द्रसूरी (सघ पट्टावलीकार) और हरिभद्र जैसे अनेक उद्भट विद्वानो के पुरातन लेख इस विषय मे प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते है। उन सबके विचार ग्रन्थो तक ही सीमित रह गये। शिथिलाचार से लोहा लेने की हिम्मत कोई नही कर पाया। निर्भीक धर्मात्मा लोकाशाह का हो उस युग मे एक ऐसा व्यक्तित्व था, जो सभी बुरा-इयो से डटकर जूझ सका और शासन के सम्मान को सुरक्षित कर सका। वह श्रावक था, पर साधुओ को भी शिक्षा दे गया। उसके पास विराट् आत्मिक-शक्ति थी। एक महान् चरित्र-बल था। इसी बल के सहारे वह अनेक विघ्न-बाधाओ को चीरता हुआ, अपने लक्ष्य तक पहुँच गया। जब तक ससार मे चतुर्विध सघ का एक भी सदस्य रहेगा, उस महापुरुष की कीर्ति-गाथाएँ गाता ही रहेगा। धर्म-प्राण लोकाशाह भगवान् महावीर के अमर पुत्र थे।

हमारे देश को आज लोकाशाह जैसे वीर पुत्रो की अत्यन्त आवश्यकता है।

लोंकाशाह और स्थानकवासी समाज

धर्मप्राण लोंकाशाह ने अपने जीवनकाल मे किसी नये मत पन्थ या सम्प्रदाय की स्थापना नही की थी। उनका उद्देश्य तो केवल धर्म-जागृति करना था। साम्प्रदायिक सकुचित भावनाओ मे वे कोसों दूर थे। वे श्रमण-धर्म के सच्चे प्रचारक थे। सच्चे श्रमणो को ही वे अपना धर्मगुरु मानते थे। उनकी आस्था त्याग मे अधिक थी। इसी कारण उनका प्रचार सदा स्वतत्र और निर्भीक रहा था। उनके अनुयायिओ ने अपने उपकारी के उपकारो की स्मृति के लिए ही लोंकागच्छ की स्थापना की थी। उनकी भावना भी इसे साम्प्रदायिक रूप देने की नही थी। वास्तव मे लोंकागच्छ एक अनुशासनिक सस्था थी। साधु-समाज के पुनर्निर्माण मे इस सस्था का पूरा-पूरा योग रहा था। इतिहास मे केवल लोंकागच्छ का नाम ही यत्र तत्र देखने मे आता है। अन्य किसी भी नाम का कोई उल्लेख नही मिलता। तत्कालीन साधु-समाज के रहन-सहन, वेश-भूषा, आदि का भी कोई समुचित उल्लेख नही मिलता। श्रीमान् लोंकाशाह के बाद लोंकागच्छ किस नाम से प्रचलित रहा, यह आज अत्यन्त शोध का विषय है। इतना तो अवश्य निश्चित है कि वर्तमान मे प्रचलित श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन-समाज लोंकागच्छ की वर्तमानकालीन कडी है। इसी समाज मे हमे आज सही रूप मे श्री लोंकाशाह-सिद्धान्त के दर्शन होते है। आज के धर्मस्थानक' प्राचीन श्रावको की पौषधशालाओ के रूपान्तर है। स्थानको मे धर्मध्यान करने के कारण जनता इन्हे स्थानकवासी कहने लगी। प्रारम्भ मे स्थानकवासी शब्द श्रावको के लिए प्रयुक्त हुआ था। बाद मे श्रावक-

समाज के परम आराध्य मुनिराजो के लिए भी इसका प्रयोग होने लग गया। स्थानक शब्द एक गुण-गरिमापूर्ण शास्त्रीय-शब्द है। जैन-शास्त्रो मे चौदह गुणस्थानको का वर्णन आता है, इन गुणस्थानो मे आत्मा के क्रमिक विकास का इतिहास निहित है। अथवा इसे यो भी कह सकते है कि गुणस्थानक, मोक्षधाम की चौदह सीढियाँ है। हमारे धर्मस्थानो के लिए प्रयुक्त 'स्थानक' शब्द के पीछे भी एक धार्मिक परम्परा का इतिहास है। वर्तमान का स्थानकवासी समाज उस परम्परा का ज्वलत प्रमाण है।

लोंकाशाह के सहयोगी और परम्परा

धर्मवीर लोकाशाह एक असाधारण पुरुष थे। उनका मति-ज्ञान बडा ही निर्मल था। उनके जीवन मे सुन्दरता ही सुन्दरता थी। अपने नगर अहमदाबाद मे वे बडे ही राज्यमान प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। लोग उन्हे 'महताजो' कहते थे। बाल्यकाल से ही उनकी धर्म तथा धर्मशास्त्रो मे रुचि थी। उनका शास्त्रीय-ज्ञान बडा ही विशाल था। उन दिनो का यतिवर्ग अपने साधनापथ से विचलित हो चुका था। श्री पूज्य लोग सामन्तो की भाँति छडी, चामर, छत्र और पालकी आदि का खुला प्रयोग करते थे। साधुता के नाम पर भोगवाद को पोत्साहन मिल रहा था। यन्त्र, मन्त्र और तन्त्रो द्वारा जनता को अपनी ओर आकर्पित करने की प्रवृत्ति का प्रचार बढ रहा था। ज्योतिष और वैद्यक विद्या के द्वारा यतिलोग अपना जीवन निर्वाह करने लग गये थे। उनमे शिथिलता बढ चुकी थी। 'सयम' नाम का शब्द केवल उपदेशो मे रह गया था। ऐसे समय मे लोकाशाह ने अपनी धर्म-गर्जना की। उनके सिंहनाद से पाखण्ड की दीवारे हिल उठी। जनता का

सोया हुआ धार्मिक भाव पुन जाग उठा। यतियो ने वीर लोकाशाह के प्रचार को रोकने के अनेक षड्यन्त्र रचे, पर शास्त्रीय सूर्य के सन्मुख अन्धकार कैसे टिक सकता है ? चारो ओर सत्य का प्रकाश फैल गया। उस धर्म-देवता के प्रवचनो से प्रभावित होकर रूपचन्द्र शाह लखमसी जैसे पाटन के प्रसिद्ध व्यक्तियो का अन्ध-विश्वास भी बदल गया। उनके ज्ञान-कपाट खुल गये। पैतालीस मुमुक्षुजनो ने श्री ज्ञानमुनिजी के पास दीक्षाव्रत स्वीकार करके जनता के सन्मुख मुनिधर्म का आदर्श उपस्थित कर दिया। अनेक सहयोगी इस प्रचार मे कूद पडे। काफी समय तक यह धर्म-प्रचार को परम्परा अवाध रूप से चलती रही। लोकागच्छ की छत्रछाया मे भगवान् महावीर के सिद्धातो का द्रुतगति से प्रचार तथा प्रसार बढ रहा था। अभी तक यह सगठन साम्प्रदायिक बधनो से मुक्त था।

श्रीमान् लोकाशाह जी की प्रेरणा से दीक्षा लेने वाले ४५ नर-पु गवो मे 'श्री भाणा जी' सर्व प्रमुख थे। ये सिरोही के रहने वाले पोरवाड जाति के थे। लोकागच्छ का सर्वप्रथम नेतृत्व आपको ही सौपा गया था। आप एक प्रतिभा-सम्पन्न कुशल मुनिनायक थे। श्री भीदाजी, नूनाजी, परम त्यागी श्री भीमाजी, केशवजी, रतनजी, श्री जगमालजी तथा श्री सोनजी आदि अनेक महापुरुषो के सहयोग से लोकागच्छ की खूब उन्नति हुई। विक्रम सम्वत् १५६० मे अणहिलपुर पाटण निवासी श्री रूपचन्द जी स्वय प्रतिबोधित सत हुए। ये बडे ही समयज्ञ तथा शास्त्राभ्यासी मुनिराज थे। 'श्री रूपऋषि' के नाम से इनकी अधिक प्रसिद्धि है। इनका व्यक्तित्व बडा ही महान् था। लोकाशाह–सिद्धातो के ये प्रबल समर्थक थे। इनको तर्क शक्ति बडी विलक्षण थी। इन्होने छोटी उम्र मे ही दीक्षा ग्रहण करली थी। कुछ ही वर्षो मे इन्हे

अपने तपोवल के सहारे विशेष आत्म-सिद्धि प्राप्त हो गई। अपने काल मे आपने गच्छ का उत्तरदायित्व बडी कुशलता से निभाया। लगभग इन्ही दिनो मे श्री जीवाजी ऋषि हुए है। इनका जन्म १५५१ माघ कृष्णा द्वादशी का माना जाता है। विक्रम सम्वत् १५७८ मे इन्होने दीक्षाव्रत स्वीकार किया। श्री रूपऋषि जी के स्वर्गवास के बाद १५८५ विक्रमार्क मे लोकागच्छ के आचार्य पद का भार आपको सौप दिया गया। श्री जीवा-ऋषि जी महाराज अपने समय के प्रचारक मुनिराज थे। इनकी व्याख्यान-शैली बडी ही रोचक थी। सूरत शहर के ६०० घर आपके उपदेशो से प्रभावित होकर श्रावक धर्म मे दीक्षित हुए थे। कितने ही इतिहासकार श्री जीवाऋषि को पांच क्रियोद्धारको मे मानते है। परन्तु वास्तविकता यह है कि ये जीवा ऋषिजी क्रियोद्धारक श्री जीवराज जी महाराज से भिन्न है। लोकाशाह के उदय से लेकर अब तक लोकागच्छ के साधुओ की सख्या ११०० तक पहुँच चुकी थी। इस काल के सभी मुनिराजो का मुख्य रूप से प्रचार का ही दृष्टिकोण रहा था। लोकागच्छ के मुनिराज नियमानुसार अपने सयमव्रत का पालन करने मे तल्लीन थे। उनमे अभी तक शिथिलता का प्रवेश नही हो पाया था। क्रियोद्धार महायज्ञ का शुभारम्भ सत्तरहवी शताब्दी के दूसरे जीवराज जी महाराज मे हुआ है।

लोकागच्छ के अधिपति श्री जीवाऋषि जी महाराज के तीन प्रधान शिष्य थे। श्री कुवर ऋषि जी, श्री वृद्धवरसिंह जी, तीसरे श्रीमल जी। गुरुदेव के स्वर्गवास के बाद श्री वृद्धवरसिंह जी गच्छ से अलग हो गये। परिणामस्वरूप लोकागच्छ तीन भागो मे विभक्त हो गया—

१ गुजराती लोकागच्छ

२ नागोरी लोकागच्छ

३ उत्तरार्ध लोकागच्छ

इस विभाजन के परिणामस्वरूप लोकागच्छ की एकता टूट गई। सम्प्रदायवाद का विष साधु समाज मे प्रवेश कर गया। इन तीनो गच्छो मे श्री रूपसिहजी, श्री केशवजी श्री शिवजी तथा श्री कहानजी आदि अनेक महा-पुरुष हुए। सबने अपने-अपने गच्छ के नाम से श्री लोकागच्छ की कीर्ति बढाई।

श्री वरसिह जी के स्वर्गवास के बाद श्री यशवत जी गच्छ के आचार्य पद पर आये। ये गुजराती लोकागच्छ के थे। इन्ही दिनो मे श्री सोनजी के शिष्य श्री वज्रागजी स्वामी हुए है। ये बडे भारी विद्वान् थे। शास्त्रीय ज्ञान तो उनका विशाल था, पर क्रिया मे कुछ शिथिल थे। यतियो की प्रवृत्तिप्रधान परम्परा ने उन्हे आकर्षित कर लिया था। यही से लोकाशाह की परम्परा मे शिथिलता प्रवेश पा गई। जो साधु अपने कर्तव्य को पहचानते थे, वे तो अपने सयम मार्ग पर दृढ रहे। दूसरे जो यति परम्परा की ओर खिच गये, वे अपने पथ से विचलित हो गए। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि यद्यपि यति लोग सयम की दृष्टि से शिथिल थे तो भी धर्म-सुरक्षा और धर्म-प्रभावना की भावना उनमे पूर्ण-रूप से विद्यमान थी। यति-समाज ने अपने वर्चस्व मे अनेक धर्म सरक्षण के अभूतपूर्व कार्य किए है। उनके मन मे अपने धर्म के प्रति पूर्ण अपनत्व था।

लोकाशाह की परम्परा पूरी एक शताब्दी तक चलती रही। बाद मे पारस्परिक अनैक्य के कारण उसमे अनेक दोष

आ गये। जिनके कारण धर्म-प्रचार का आन्दोलन मन्द पड़ गया। धर्म के नाम पर आपस मे कलह होने लगा। धर्म के उपदेष्टा अपने मार्ग मे पिछड़ने लगे। ऐसे विकट समय मे देश को एक बार फिर किसी लोकाशाह की आवश्यकता हुई। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए कुछ महापुरुष क्रिया उद्धार का सन्देश लेकर जनता मे आये। जिन्होने श्रीमान् लोकाशाह के पवित्र सिद्धान्तो का पूरी शक्ति लगाकर समस्त देश मे प्रसार किया।

प्रकरण छठा

आवश्यकता आविष्कार की जननी है

जब जब देश मे धार्मिकता, सामाजिकता तथा राष्ट्रीयता का ह्रास हुआ है तब तब कोई न कोई महापुरुष अवश्य ही अवतरित हुआ है। यह सिद्धान्त आज का नही अनादिकाल से चल रहा है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है कि—

जब जब होती है हानि धर्म की भारी।
तब तब लेते है जन्म धर्म ध्वज धारी ।।

हम पिछले प्रकरण मे बता आये है कि श्री जीवाजी ऋषि महाराज के स्वर्गवास के बाद लोकागच्छ तीन धाराओ मे बँट गया। श्री जीवाजी के शिष्य श्री वरसिंहजी जब अपने बड़े गुरुभाई श्री कुँवर जी से पृथक् हो गये तो वि० स० १६१३ ज्येष्ठ कृष्णा दशमी के दिन बडौदा के भावसारो ने आपको श्री पूज्य की पदवी पर स्थापित कर दिया। यही से गुजराती लोकागच्छ की स्थापना हुई। श्री जीवाऋषिजी महाराज ने श्री कुवर जी की शास्त्रार्थ-शक्ति से प्रभावित होकर इन्हे वि० स० १६१२ मे पूज्य पद पर स्थापित कर दिया था। इसी कारण इनसे श्री वरसिंह जी पृथक् हो गए थे। श्री कुँवर जी के बाद

श्री मलजी-आचार्य पदासीन हुए। इनके शिष्य श्री रत्नसिंह जी हुए। इनकी दीक्षा १६४८ मे हुई थी। इनके शिष्य श्री शिव जी ऋषि हुए। इनकी दीक्षा १६७० मे हुई थी और १६८८ में आचार्य पदवी प्राप्त हुई। इन्ही आचार्य शिवजी के शिष्य श्री हीरागरजी हुए हैं ये अपने समय के बडे सुधारक तथा सयमी सत थे। अनेको यतियो को आपने सन्मार्ग पर लगाया। आप नागौर के निवासी थे। इसलिए आपने अपनी साधु शाखा का नाम नागौरी लोकागच्छ रखा। प्रसिद्ध आचार्य श्री मनोहरदास जी म भी इसी गच्छ के अधिनायक हुए है। उत्तरार्ध लोंकागच्छ की स्थापना के विषय मे अभ तक कोई प्रमाणित सामग्री दृष्टि-गोचर नही हो पाई है। फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि श्री जीवाजी महाराज की परम्परा के किसी विद्वान् सत ने इसकी स्थापना की होगी। पजाबप्रात की ओर विचरण करने वाले सत इसी शाखा से सम्बन्धित हैं। धर्मवीर लोकाशाह से लेकर श्री जीवा ऋषि जी म० तक शुद्ध सयमी साधुओ का पूर्ण वर्चस्व था। गच्छ की अनुशासन-व्यवस्था उचित रूप से चल रही थी बाद मे अनैक्य होने पर गच्छ के साधुवो का सयम-स्तर गिरने लगा। यतिसमाज का प्रभाव फिर बढने लगा। आगम विरुद्ध अनेक मान्यताएँ पुन॰ प्रचलित हो गई।

यति शब्द का बदलता रूप

आदि काल मे यति शब्द साधु के अर्थ मे लिया जाता था। यति शब्द की व्युत्पत्ति यम् और यत् इन दो धातुओ से हुई हैं। यमनात् नियंत्रणात् इति यतिः अथवा यमात् धारणात् यति अर्थात् सयम का प्रयत्न करने से और इन्द्रियो को वश मे रखने से यति होता है। आगम के अनुसार पचयमो–महाव्रतो के पालन करने

वाले को यति कहते है। पूर्व काल मे बहुत समय तक यति शब्द इसी अर्थ मे प्रयुक्त होता रहा है। धीरे धीरे जब यति समाज मे शिथिलाचार बढने लगा तो यति शब्द का प्रयोग साधुओ मे भिन्न, शिथिल वर्ग के अर्थ मे लिया जाने लगा। श्रीमान् लोकाशाह से पूर्व साधु धर्म से पिछडे हुए यति वर्ग का बडा जोर था। उस समय यतियो के साथ ही उनका सघर्ष रहा था। इसका परिणाम यह हुआ कि वर्षो से पिछडा हुआ आत्म साधन का मार्ग पुन प्रशस्त हो गया। जड उपासना के स्थान पर आत्म उपासना का महत्व बढ गया। किन्तु काल की गति बडी विचित्र है। 'नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण' अर्थात् गाडी के पहिये के समान ससार मे सब की दशा का परिवर्तन होता रहता है। सत्तरहवी शताब्दी के प्रथम चरण तक लोकागच्छ की धार्मिक प्रगति पूर्ण रूप से चलती रही। बाद मे जितने वेग से उसका विकास हुआ था, दुर्भाग्यवश इतने ही वेग से उसमे चारित्र की शिथिलता घुस गई। जनता को सच्चा मोक्ष-मार्ग बताने वाला वर्ग एक बार फिर स्वय अपना रास्ता भूल गया। सही मार्ग बताने वालो की नितान्त आवश्यकता अनुभव की जाने लगी।

चतुर्मुखी क्रियोद्धार की दिव्य-ध्वनि

ऐसे समय मे पाच महा पुरुष देश मे अवतरित हुए :-

१ श्री जीवराज जी महाराज।

२ श्री लवजी ऋषिजी महाराज।

३. श्री धर्मसिंह जी महाराज।

४ श्री धर्मदासजी महाराज।

५ श्री हरजी ऋषिजी महाराज।

इन पाचो मुनि पुङ्गवो ने चारो दिशाओ मे फिर से सत्य-धर्म का सिंहनाद किया था। जनता का सोया सिंहत्व पुन जागृत हो गया। सबको अपने-अपने कर्त्तव्य का बोध होने लगा। धार्मिक जगत् यति और साधु के अन्तर को अच्छी तरह समझने लगा। भोगवाद पर योगवाद की विजय आरम्भ हो गई। राग-भाव को त्यागभाव ने जीत लिया। मूर्ति पूजा आदि शास्त्र-विरुद्ध क्रियाकाण्ड से हटकर धर्म पिपासु लोग. आत्मदेव की आराधना करने लगे। अज्ञान अधकार छटने लगा। चारो ओर प्रकाश ही प्रकाश व्याप्त हो गया। अपना भला-बुरा सबको अपनी आखो से दिखने लगा। परावलम्बन के बन्धन से मुक्त होकर लोग, स्वावलम्बन को अपनाने लगे। इन सब अच्छाइयो का श्रेय उपरोक्त पाच महापुरुषो को प्राप्त हुआ।

सर्वश्री जीवराज जी महाराज

महापुरुष अपने जीवन मे एक विशेष प्रकार का कर्त्तव्य-क्षेत्र चुनते है। वे मानवता के प्रतिनिधि बनकर ससार मे आते है। उनका जन्म जगत् को जीवन प्रदान करता है। उनका जीवन जागरण का दिव्य सन्देश देता है। वे अन्तिम समय तक समाज के अनैतिक तत्वो से जूझते रहते है। उनको आत्मा का एक महान् लक्ष्य होता है। जब तक वे अपने लक्ष्य तक पहुच नही जाते तब तक निष्प्रमाद-गति से चलते ही रहते है। ऐसे महापुरुष जिस समाज, देश, अथवा राष्ट्र मे जन्म लेते है। उनका इतिहास युगो-युगो के लिए अमर हो जाता है।

भगवान् महावीर से लेकर लोकाशाह युग की समाप्ति तक श्रमण परम्परा मे, उत्थान तथा पतन के अनेक चक्र आये है। सयम साधनाशील सन्त-समुदाय ने अनेक बार मारणान्तिक

संघर्षों से टक्कर ली है। फिर भी वे घबराये नही है। भयभीत नही हुए है। दिनोदिन अपनी साधना के मार्ग मे बढते ही रहे है। उनकी परम्परा अभी तक अविच्छिन्न रूपमे चली आई है। जब तक इक्कीस हजार वर्ष पूरे नही हो जाते श्रमण सस्था समुचित रूप से चलती ही रहेगी। यह हमारा अपना नही सर्वज्ञ भगवान् की वाणी का उद्घोष है। श्री जीवराज जी महाराज उसी भगवान् महावीर की साधु सम्प्रदाय की एक दिव्य विभूति हुए है।

सामग्री के अभाव में भी इतिहास सुरक्षित

उनके जन्म तथा माता-पिता आदि के विषय मे अभी तक कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नही हो पाई है। कुछ विद्वान् उनका जन्म स्थान 'सूरत' तथा उनके पिता-माता का नाम वीरजी बोरा और केशर बाई मानते है। किन्तु सत्तरहवी शताब्दी के अतिम चरण मे होने वाले महापुरुष श्री लवजी ऋषि के नाना के लिए भी इन्ही सज्ञाओ का उल्लेख मिलता है। निश्चित रूप से इस विषय मे कुछ भी कहा जाना सभव नही है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनके पारिवारिक जीवन के विषय मे जो किंवदन्तिया प्रचलित है उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि श्री जीव-राजजी महाराज का तत्कालीन किसी ऊ चे वश से सम्बन्ध अवश्य होगा। यति परम्परा मे उन दिनो अधिकाश व्यक्ति अच्छे सम्पन्न परिवारो मे से आते थे। कुछ भी हो उनका बाल्यकाल किसी सस्कारित परिवार की देख-रेख मे सस्कारवान् बनाथा। वे बडे ही कुशाग्र बुद्धि वाले थे। प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध न होने पर भी उनका जीवन इतिहास समाज के विश्वासो मे पूर्णरूपेण सुरक्षित है।

दीक्षा और शास्त्राभ्यास

कुछ इतिहासज्ञो का मत है कि श्री जीवराज जी का विवाह भी हुआ था। उनके यौवन का कुछ भाग बडे ही आमोद-प्रमोद मे बीता था। गृहस्थ के इस सुख मे कुछ ही दिनो मे वे उदासीन हो गये। सासारिक विषय विकारो के प्रति उनके मन मे घृणा उत्पन्न हो गई। उनका मन वैराग्य के महासागर मे हिलोरे मारने लगा। बचपन से ही वे साधु सतो की संगति के प्रेमी थे। जब-जब और जहा-जहा उन्हे सत्सग का प्रसग मिलता उससे वे अवश्य ही लाभ लेने का प्रयत्न करते थे। सत्सगति के प्रभाव के कारण उनकी भावना ससार से ऊपर उठने लगी। वे भोग के पथ से हटकर योग के महा पथपर चलना चाहते थे। इसके लिए उन्होने प्रथम गृहस्थ मे रहकर ही दृढ साधना करनी आरम्भ करदी। जब उनका आत्मविश्वास पूर्ण रूप से दृढ हो गया तो उन्होने अपने माता पिता, पत्नि आदि से दीक्षा लेने की अनुमति मागी। पहिले तो उनके सम्बन्धीजनो ने उन्हे ऐसा करने से रोका पर अन्त मे जब उनका दृढ तथा निश्चित निर्णय देखा तो उन्हे दीक्षा लेने की आज्ञा देनी पडी।

उन दिनो 'पीपाड शहर' मे लोकागच्छ के यति श्री तेजराज जी विराजमान थे। ये अपने समय के बडे प्रसिद्ध यतिराज थे। जनता की उनमे अटूट श्रद्धा थी। श्री जीवराज जी, यति जी की प्रसिद्धि सुनकर उनकी सेवा मे आये। यति जी ज्योतिष-शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। आगन्तुक वैरागी महानुभाव के पुण्य चिन्हो को देखकर उन्हे अनुमान हो गया कि यह व्यक्ति एक दिन बडा प्रभावशाली महापुरुष बनेगा। उन्होने श्री जीवराज जी को बडे प्रेम से अपना धार्मिक प्रवचन सुनाया। प्रवचन से प्रभावित होकर वे कुछ काल तक श्रीयति जी की सेवा मे ही रहकर धर्म ध्यान

करने लगे। अंत मे उनका वैराग्य जब परिपक्व हो गया तो विक्रम सम्वत् १६५४ के लगभग श्री तेजराज जी यति के पास दीक्षित हो गये।

दीक्षित होने के बाद उनका अध्ययन आरम्भ हुआ। ज्यो-ज्यो वे शास्त्रज्ञान की गहराई मे उतरते गये, उन्हे सत्य का प्रत्यक्ष दर्शन होने लगा। वर्तमान यति समाज की शास्त्र विरुद्ध क्रियाओ का अब उन्हे पूर्णज्ञान हो गया। उन्होने अनेक बार अपने गुरुदेव से अनेक शास्त्रीय प्रश्नोत्तर किए। किन्तु किसी भी प्रश्न का सन्तोषजनक सत्य उत्तर न मिल सका। अब उन्हे निश्चय हो गया कि वर्तमान यतिमार्ग साधना-पथ से सर्वथा विपरीत है। इसे छोडने मे ही जीवन की भलाई है।

क्रियोद्धार का शुभारम्भ

सत्य का दर्शन हो जाने पर मानव का मन असत्य से हट जाता है। असत्य एक अ धकार है, जिसमे मनुष्य को अपना भला-बुरा कुछ भी नही सूझता। सत्य के प्रकाश मे आत्मा को अपना हानि-लाभ, सब कुछ स्पष्ट दिखने लगता है। असली दूध-का स्वाद ले लेने पर, नकली सफेद पानी को कौन दूध मानकर पियेगा। श्री जीवराज जी महाराज को आज शुद्ध सयम का ज्ञान प्राप्त हो चुका। उन्होने कई बार गुरुदेव को शुद्ध सयम की ओर बढने की प्रेरणा दी, पर यतिश्री जी मानसिक दुर्बलता के कारण अपने गच्छ की गद्दी का मोह न छोड सके। अन्त मे विक्रम सम्वत् १६६६ मे श्री जीवराज जी उनसे पृथक् हो गये। उनके साथ श्री अमीपाल जी, महीपाल जी, हीरो जी, गिरधर जी और हरजी, इन पाच मुमुक्षु जनो ने भी यतिमार्ग का परित्याग कर दिया।

पीपाड नगर के बाहर आकर छहो कल्याण-पथ के पथिको ने एक वृक्ष के नीचे बैठकर अपने भविष्य के कर्त्तव्य का निर्णय किया। भगवान् महावीर के सयम मार्ग पर चलने का अखण्ड निश्चय करके उन्होने, अनत अरिहतो, तथा सिद्धो को अपनी भाव वन्दना अर्पित की। इसके बाद भूतकाल के अपने यति जीवन के दोषो को शुद्ध हृदय से आलोचना की। तदुपरान्त पूर्ण दृढता-पूर्वक सबने पूर्वाभिमुख होकर पच - महा व्रत रूप सयम व्रत स्वीकार कर लिया।

एक प्रश्न और उसका समाधान

कुछ लोग प्रश्न करते है कि बिना गुरु के यह दीक्षा-विधिशास्त्र विरुद्ध है। गुरु के बिना जीवन का कल्याण नही होता। यह प्रश्न तो ठीक है, पर इसके उत्तर मे इतना समझ लेना आवश्यक है की शास्त्र मे गुरु के दो प्रकार माने गये है। व्यवहार गुरु और निश्चय गुरु। इसी आधार पर सम्यक्त्व के भी दो प्रकार माने गये हैं। एक व्यवहार सम्यक्त्व और दूसरा निश्चय सम्यक्त्व। किसी भी व्यक्ति विशेष को गुरु स्वीकार करना व्यवहार गुरु धारण' कहलाता है। अपनी आत्मा के ज्ञान गुण को ही अपना गुरु मान कर चलना 'निश्चय गुरु धारण' कहलाता है। यह दूसरा निश्चयात्मक गुरु धारक ही वास्तव मे आत्म-कल्याण करता है। जब आत्मा उच्च गुणस्थानारोहण करता है और व्यवहार को पीछे छोड देता है तो वह केवल अपनी आत्मा को ही अपना देवगुरु और धर्म स्वीकार करता है। व्यवहार तो अन्त मे सबको त्यागना ही पडता है। किन्तु यहाँ यह कभी नही भूलना चाहिए कि व्यवहार का त्याग अवस्था विशेष का अवसर आने पर ही उचित होता है। अवसर से पूर्व का त्याग उचित नही होता।

नाव मे बैठा हुआ प्रत्येक व्यक्ति किनारे पर पहुचने पर ही नाव के छोडने की भावना रखता है दरिया के बीच छोडना कभी भी हित-कर नही होता। नदी के बीच मे नाव छोडना सबके वश की बात नही है। जो तैरना जानता है वही ऐसा कर सकता है। क्योंकि वह अपने बाहुओ से उस जल राशि को पार कर सकता है।

हमारे प्रथम क्रियोद्धारक श्री जीवराज जी महाराज भी 'तिन्नाण तारयाण' के आदर्श थे। स्वय तिरणा और दूसरो को तारणा सहज गुण था। अत उनका स्वत ही दीक्षित होना अनुचित नही था।

विचार प्रचार और विहार

श्री जीवराज जी महराज की विचार-क्राति ने एक बार यति समाज मे तहलका मचा दिया। जिस शुद्ध साधु-धर्म की भूमिका पर वे खडे थे, वहा यति वर्ग पहुचता हुआ भय खाता था। प्रतिष्ठा-सुख ऐश्वर्य के नाम पर कभी २ मनुष्य सत्य की भी बलि चढा देता हैं। यह बात तत्कालीन यतियो के लिए पूर्णत लागू होती थी। यति वर्ग ने उनका प्रत्येक प्रकार से विरोध किया, पर उनका विचार क्राति आन्दोलन बढता ही गया वे जहा भी गये जनता उनके पीछे हो गई। हजारो की सख्या मे लोगो ने उन्हे अपना धर्म गुरु स्वीकार कर लिया। तत्कालीन जन-समुदाय उनके तपोमय जीवन से अत्यन्त प्रभावित था। मालवा, मारवाड और मेवाड आदि अनेक प्रान्तो मे आपका विहार हुआ। सभी जगह आपको सम्मान प्राप्त हुआ। सूर्य के प्रकाश से सभी को प्रसन्नता होती है। इसी प्रकार महाराज श्री के ज्ञान सूर्य से जनता का अज्ञान अन्धकार छँट रहा था। लोगो

की आत्माएँ परम सन्तुष्ट थी। उन्हे सच्चा धर्म-उपदेशक, धर्म गुरू मिल गया था।

श्री जीवराज जी म० लोकाशाह सिद्धान्तो के प्रबल समर्थक थे। उन्होने आगम विरुद्ध मूर्ति पूजा का डटकर विरोध किया था। आगमो के विषय मे वे बारह अङ्ग-सूत्र, ग्यारह उपाङ्ग सूत्र, चार मूल-सूत्र, चार छेद-सूत्र, और एक आवश्यक इन बत्तीस शास्त्रो को प्रामाणिक मानते थे। मुख वस्त्रिका मुख पर ही बाधी जानी चाहिए, उनका यह दृढ विश्वास था। मुख वस्त्रिका हाथ मे रखने से प्रमाद जन्य अनेक दोष लग जाते है। वे स्वय भी सदा मुख वस्त्रिका मुख पर बाधते थे। मुखवस्त्रिका और रजोहरण को वे साधु का धम-चिन्ह मानते थे। साधु समाचारी के अनेक शास्त्रानुकूल नियमो का उन्होने निर्माण किया था। उनका तत्कालीन सगठन उननियमो का पूर्ण रूप से पालन करता था।

सहयोगी और शिष्य परम्परा

हम पीछे बता आये है कि श्री जीवराज जी महाराज के साथ पाच महापुरुषो ने भी यति समाज से अपना सम्बन्ध विच्छेद, कर लिया था। उन्होने श्री जीवराजजी म० के प्रचार मे पूरा पूरा साथ दिया था। वे सभी सच्चे साधक थे। अनेक कष्ट आने पर भी वे अपने मार्ग से पीछे नही हटे। इन छहो साधको मे से श्री जीवराज जी म० का शिष्य परिवार अधिक लम्बा हुआ है। श्री धन्नाजी, लालचद जी, नाथूराम जी, नन्दलाल जी, धनजी, अमरसिंहजी, और दूसरे लालचद जी आदि अनेक मुमुक्षुजन आपके साधु शिष्य हुए है। वर्तमान काल की अनेक सम्प्रदाएँ श्री जीवराजजी म० को अपना मूलपुरुष मानती हैं। ऊपर उल्लिखित शिष्यो से अनेक शिष्यो का परिवार शृङ्खला बीच मे ही समाप्त हो गई।

एक प्रभावक कवि

श्री जीवराज जी म० वक्ता होने के साथ-साथ एक प्रभावक कवि भी थे। उनकी कविताएँ साध्वाचार के अनुरूप होती थी। उनमे वैराग्य का रग पूर्ण रूप से भरा रहता था। जो भी एक बार उनकी कविता पढ अथवा सुन लेता था, वही आनन्द मग्न हो जाता था। उनकी बनाई हुई चौबीसो तीर्थङ्करो की विस्तृत चौबीस स्तुतियाँ आज भी उपलब्ध है। पाठको की जानकारी के लिए हम यहाँ उनकी आठवे तीर्थङ्कर श्री 'चन्द्रप्रभ' स्वामी जो की स्तुति का अतिम कलश लिख रहे हैं। जिससे उनकी कविता तथा उनके अस्तित्वकाल का स्पष्ट पता चलता है।

सम्वत् सोलह सिओत्तरा वर्षे भादवा शुदि आठम सार ए।
मगल वारे तवन कीधो 'बालापुर' नगर मझार ए।
भल भाव आणी, भक्ति जाणी तवन भणे जे इकमना।
कर जोडी मुनि जीवराज बोले काज सरसे तेहना॥

इसी प्रकार उनकी और भी अनेक कविताएँ प्राप्त होती हैं। चौबीस तीर्थङ्करो के विषय मे लिखी हुई प्रत्येक स्तुति के अत मे निर्माणकाल का पूरा उल्लेख है। कोई स्तुति १६७६, की लिखी हुई है। कोई १६७१ कोई १६७५ की लिखी हुई है। उनकी कविताएँ बडी ही मार्मिक हैं। कविताओ के भाव सीधे आत्मा को छू जाते है। जब स्वय महाराज श्री इन कविताओ का उच्चारण करते होगे तो कितना वर्णनातीत आनन्द आता होगा। उनकी अधिक कविताएँ स्तुतिप्रधान मिलती हैं।

समाधिमरण

महापुरुषो का सारा जीवन समाधिमय होता है। वे समाधि

का सन्देश लेकर ही ससार मे आते है। जब वे यहा से जाते है तब भी जनता को समाधि का आदश प्रमाण देकर ही जाते है। उनकी शरण मे जो भी आता है वही कृत-कृत्य हो जाता है। उसका जीवन शातिमय हो जाता है। उसकी आत्मा पापो मे ऊपर उठ जाती है। श्री जीवराज जी म० इन सब बातो के ज्वलत प्रमाण थे। उन्होने अपने जीवनकाल मे खूब धर्म-प्रचार किया था। जनता को जी खोलकर समाधि का सन्देश दिया था। विक्रम स० १६६६ से लेकर अब तक वे अपने कर्त्तव्यपथ पर अडिग यात्री की भाँति चले आये थे।

कहते है इन दिनो वे आगरा शहर मे विराजमान थे। उन्हे अपने शरीरान्त होने का पहिले ही ज्ञान हो गया था। उनका मरण पूर्ण समाधिपूर्वक हुआ था। अनेक पट्टावलियो मे उनके स्वर्गवास के सम्वत् प्राप्त होते है। सभी सम्वत् एक दूसरे से मेल नही खाते है। किसी-किसी प्रमाण मे तो पूरी शताब्दी का ही अतर आ जाता है। अत उनकी स्वर्गगमन-तिथि का सही उल्लेख करना कठिन है। फिर भी उनका स्वर्गवास विक्रम सम्वत् १६६८ के लगभग हुआ प्रतीत होता है। वे अपने समय के सर्वप्रथम क्रियोद्धारक थे। धर्मप्राण लोकाशाह की आध्यात्मिक परम्परा को पुन जागृत करने का उन्होने पूरी शक्ति से सफल प्रयत्न किया था।

महान् क्रियोद्धारक श्री लवजी ऋषिजी

नवयुग-स्रष्टा श्री लवजीऋषिजी महाराज सामत कुल मे उत्पन्न हुए थे। उनकी माता का नाम फूलाबाई था। फूलाबाई अपने पिता की एक मात्र सतान थी। इसलिए उन्होने अपनी पुत्री का विवाह सूरत के ही एक प्रतिष्ठित श्रेष्ठिपुत्र के साथ बडी धूमधाम से कर दिया था। श्री लवजी के पिता का नाम अभी तक उपलब्ध नही हो पाया है। पति की मृत्यु के बाद फूलाबाई अपने माता-पिता के घर सूरत मे रहने लगी थी। लवजी यही पर अपने नाना श्रीवीरजी वोरा के यहाँ रहते थे वीरजी वोरा श्रीमाली वणिक् थे। राज्य एव समाज मे उनकी पूरी धाक थी। वे करोडो की सम्पत्ति के स्वामी थे, उनका सारा परिवार यति-परम्परा के जैन धर्म का अनुयायी था। विक्रम सम्वत् १६४६ मे गुर्जरदेशीय लोकागच्छ के पाट पर श्री बजरग जो स्वामी विराजमान थे। ये अपने समय के बडे ही शास्त्रज्ञ और समयज्ञ विद्वान् थे। सूरत निवासी श्रीवीर जो वोरा उनके परम भक्त थे। एक दिन फूलाबाई अपने पुत्र लवजी को साथ लेकर श्री बजरग स्वामी के दर्शनो के लिए उपाश्रय मे गई। वहाँ जाकर उसने श्री बजरग स्वामी से प्रार्थना की कि हे गुरुदेव! बालक लवजी को सामायिक तथा प्रतिक्रमण सिखाने की कृपा करे। माता की प्रार्थना को सुनकर बालक लवजी बीच मे ही बोल पडा—माताजी सामायिक तथा प्रतिक्रमण तो मुझे कण्ठस्थ है। पुत्र के उत्तर से माता को बडा आश्चर्य हुआ। उसने पूछा— तूने सामायिक तथा प्रतिक्रमण कब और किससे सीखा है? बालक ने कहा—माताजी! जब आप नित्यप्रति सामायिक तथा प्रतिक्रमण करती थी, तभी आपके उच्चारण को सुनते सुनते मुझे सारे पाठ याद हो गये। उसने उसी समय सारे पाठ अपनी माता के सन्मुख श्री वजरग जी स्वामी को सुना दिये।

बालक लवजी की इस समय सात वर्ष की आयु थी। बचपन से ही वह बडा ही चचल और बुद्धिमान् था। धार्मिक रुचि तो उसके रग-रग मे भरी हुई थी। उसकी अद्भुत स्मरण-शक्ति का चमत्कार देख कर बजरग स्वामी बहुत ही प्रभावित हुए। उन्होने लवजी को अपने पास धार्मिक ज्ञानाभ्यास कराना आरम्भ कर दिया। थोडे ही दिनो मे अनेक शास्त्रो के अभ्यासी बन गये। शास्त्राभ्यास करते-करते उनका आत्मा वैराग्य रग मे रँग गई। उनका जन्म-जन्म का सोया हुआ आत्मभाव जागृत हो गया। जैसे-तैसे उन्होने अपनी माता तथा नाना जी से दीक्षा लेने की अनुमति प्राप्त करली। पूरे हरे-भरे यौवनकाल मे आपने श्री बजरग स्वामी के पास विक्रम सम्वत् १६६२ मे यति दीक्षा-धारण करली। गुरु ने अपने विचक्षण शिष्य की योग्यता का पहिले ही अनुभव कर लिया था। उन्होने दीक्षित होने के बाद श्री लवजी ऋषि को आगम के सूक्ष्म तत्त्वो का बडा ही विशद अध्ययन कराया। इस अध्ययन से लवजी ऋषि के अन्तर नेत्र खुल गये। अब वे साधु धर्म और यति धम के अन्तर को भली भाँति समझ गये। उन्हे अपना वर्तमान यति-जीवन भार-सा लगने लगा। उनकी आत्मा गुरु के मोहपाश मे ऊपर उठ चुकी थी।

आत्मोद्धार का दृढ सकल्प

श्री लवजी ऋषि ने अनेक बार अपने गुरुदेव से प्रार्थना की कि हम और आप वर्तमान मे जिस शिथिल मार्ग पर चल रहे है, वह सही नही है। अत. आप कृपा करके स्वय भी इस मार्ग से ऊँचे उठिए और मेरा भी उद्धार करिये। गुरुदेव ने इसके उत्तर मे कहा—पचम काल है, मेरी अवस्था वृद्ध है, अत मैं तुम्हारे निर्णय किये हुए कठोर मार्ग पर नही चल सकता। यदि तुम चलना चाहो तो चल सकते हो। मेरी तुम्हे खुली आज्ञा है।

गुरु की आज्ञा मिलने पर श्री लवजी ऋषि ने श्री थोभनऋषि जो और श्री भानु ऋषि जी नाम के दो सतो को साथ मे लेकर सूरत से खभात की ओर प्रस्थान कर दिया। यहाँ आकर आपने कुछ दिनो तक तो जनता मे धर्म-प्रचार किया। इसमे अनेक लोगो मे आपके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई। खम्भात मे यतियो का बडा प्रचार था। उनके यन्त्र मन्त्र और ज्योतिष आदि के प्रभाव मे जनता आकर्षित थी। यतियो के बताये हुए उपदेश को ही लोग सत्य मानते थे। श्री लवजी ऋषि जी ने सर्वप्रथम इस प्रदेश मे शुद्ध साधु धर्म का उपदेश दिया। उन्होने पथ-भूले श्रावको को बताया कि साधु वही होता है जो आत्म-कल्याण की साधना करता है। पच महाव्रतो का निर्दोष पालन करना प्रत्येक साधु का मुख्य कर्त्तव्य है। पालकी आदि मे बैठना साधु धर्म के विरुद्ध है। सच्चा साधु तो सदा पादविहारी होता है। इन उपदेशो ने जनता की आँखे खोल दी। हजारो की सख्या मे श्रावक श्री लवजी ऋषि जी के समर्थक हो गये।

क्रियोद्धार का शुभारम्भ

दूसरो को उपदेश देने का उसी को अधिकार होता है जो स्वयं उस उपदेश पर चलता हो। उसी की शिक्षाओ का जनता पर प्रभाव पडता है। श्री लव जी ऋषि जी म० जिस साधु धर्म का उपदेश देते थे, वे स्वय भी पूरी सजगता के साथ उस पर चलते थे। इतनी बात अवश्य है, कि अभी तक उनका वेश अपने गुरु श्री बजरंग जी के अनुसार ही था। वे अब स्वतन्त्र रूप से आगम के अनुसार शुद्ध चारित्र स्वीकार करना चाहते थे। इसके लिए अपनी गृहीत परम्परा का त्याग करना आवश्यक था। इसी विचार से वे अपने दोनो सहयोगी साधुओ को लेकर एक दिन खम्भात नगर के बाहर उद्यान मे पहुँचे और पूर्व दिशा की ओर

मुख करके अनत अरिहन्त तथा सिद्धो को विधिपूर्वक वन्दन किया । इसके बाद यति वेश के दोषो की शुद्ध हृदय से आलोचना की । शुद्ध साधुत्व के समर्थक श्री सघ की साक्षी से पच महाव्रत रूप शुद्ध सयम व्रत पुन धारण कर लिया । उनके दोनो साथी मुनिराजो ने भी इसी प्रकार शुद्ध सयम पालन को प्रतिज्ञाएँ ली । यह घटना विक्रम सम्वत् १६६४ की है । स्वत सयम धारण करके तीनो सत, खम्भात की प्रसिद्ध गुसाई धर्मशाला के पास एक मकान के बरानदे मे विराजमान होगये । आपके इस क्रियोद्धार का समाचार सारे नगर मे फेल गया । जनता की भारी भीड उनके दर्शन तथा उपदेश श्रवण करने के लिए आने लगी । आपकी वराग्य-भरी वाणी मे बडा ही रस था । धर्म-जिज्ञासु उपदेश सुन कर अपने जोवन का सुधार करने लगे । चारो ओर आपकी कीतिपताका फहराने लगी ।

शुद्ध सयम स्वीकार करने के बाद आप निरन्तर मुख पर मुखवस्त्रिका बांधे रखते थे । निर्दोष आहार पानी तथा स्थान आदि ग्रहण करते थे । सर्वथा निष्परिग्रही रहते थे । ज्ञान-ध्यान आदि क्रियाओ मे अपना अधिक समय व्यतीत करते थे । इन सब उत्कृष्ट आचरणो से प्रभावित होकर सैकडो यतिपक्ष के अनु-यायी उनके श्रावक बन गये । शिथिलाचारी यतियो के समाज मे खलबली मच गई । वे इस धर्मवीर योधा को परास्त करने के अनेक प्रकार के प्रयत्न सोचने लगे ।

विरोधियो के षड्यत्र

श्री लवजी ऋषिजी महाराज, भगवान् महावीर का दिव्य-सन्देश लेकर जनता के सन्मुख आये थे । उनकी आदर्श शिक्षाएं सबके कल्याण के लिए होती थी । परन्तु कुछ ऐसे व्यक्ति भी

थे जो उनके उपदेश को जीवन मे पचा नही सके थे। अपने जीवन की कमियो के कारण वे हतप्रभ से हो गये थे। जिस यति-वर्ग का ओर हम यह संकेत कर रहे है वह उस समय अपने आपको श्रावक समाज का गुरु मानता था। इस अहमन्यता के कारण उसमे अनेक दोष आगये थे। श्री लवजी ऋषिजी म० जब-जब अपना आदर्श जनता के समुख रखते, तब-तब यति लोग बोखला जाते थे। वे श्री ऋषि जी का प्रचार रोकना चाहते थे। उन्होने अनेक प्रयत्न किये पर किसी मे भी उन्हे सफलता नही मिल सकी। अन्तमे उन्होने श्री लवजी ऋषिजी के ससार पक्ष के नाना श्री वीरजी बोरा को भडकाना प्रारम्भ कर दिया। अनेक झूठी-सच्ची बाते बनाकर उन्हे अपने पक्ष मे कर लिया। वीरजी बोरा का खम्भात के नवाब के साथ बड़ा ही घनिष्ठ मैत्री सबध था नवाब सा० कई बार उनसे आर्थिक सहायता भी ले चुके थे। इसलिए वे श्री बोहरा की कोई बात नही टालते थे। उनकी झूठी चाल मे आकर बोहरा जी ने नवाब को एक पत्र मे लिख भेजा कि लवजी साधु तथा उनके साथियो को अपने राज्य मे निकाल दे अथवा ऐसा प्रबन्ध करदे जिसमे उनका प्रचार रुक जाये।

नवाब साहब ने पत्र मिलते ही अपने हुक्म से श्री लवजी ऋषि जी महाराज तथा उनके साथी सतो को नजर कैद करवा दिया। जिस जगह आपको नजर कैद करके रखा गया था, वह स्थान राजमहल के बिल्कुल समीप और सामने ही था। सतो के पास तो धर्मसकट के समय तपस्या का ही सहारा होना है। इसीलिए सब सतो ने तेले की तपस्या अङ्गीकार करली। तीसरे दिन एक बादी ने मुनियो को देख लिया। उसने सारी बात का पता लगाकर बेगम साहिबा से कहा कि आपके राज्य मे ये निर्दोष सत क्यो कैद करवाये गये है। ये बेचारे न तो कुछ खाते है न पीते है, हमेशा अपने धर्मशास्त्र पढते रहते है।

मुख करके अनत अरिहन्त तथा सिद्धो को विधिपूर्वक वन्दन किया। इसके वाद यति वेश के दोषो की शुद्ध हृदय से आलोचना की। शुद्ध साधुत्व के समर्थक श्री सघ की साक्षी से पच महाव्रत रूप शुद्ध सयम व्रत पुन धारण कर लिया। उनके दोनो साथी मुनिराजो ने भी इसी प्रकार शुद्ध सयम पालन की प्रतिज्ञाएँ ली। यह घटना विक्रम सम्वत् १६६४ की है। स्वत सयम धारण करके तीनो सत, खम्मात की प्रसिद्ध गुसाई धर्मशाला के पास एक मकान के बरामदे मे विराजमान होगये। आपके इस क्रियोद्धार का समाचार सारे नगर मे फैल गया। जनता की भारी भीड उनके दर्शन तथा उपदेश श्रवण करने के लिए आने लगी। आपकी वैराग्य-भरी वाणी मे बडा ही रस था। धर्म-जिज्ञासु उपदेश सुन कर अपने जोवन का सुधार करने लगे। चारो ओर आपकी कीर्तिपताका फहराने लगी।

शुद्ध सयम स्वीकार करने के बाद आप निरन्तर मुख पर मुखवस्त्रिका बांधे रखते थे। निर्दोष आहार पानी तथा स्थान आदि ग्रहण करते थे। सर्वथा निष्परिग्रही रहते थे। ज्ञान-ध्यान आदि क्रियाओ मे अपना अधिक समय व्यतीत करते थे। इन सब उत्कृष्ट आचरणो से प्रभावित होकर सैकडो यतिपक्ष के अनु-यायी उनके श्रावक बन गये। शिथिलाचारी यतियो के समाज मे खलबली मच गई। वे इस धर्मवीर योधा को परास्त करने के अनेक प्रकार के प्रयत्न सोचने लगे।

विरोधियों के षड्यन्त्र

श्री लवजी ऋषिजी महाराज, भगवान् महावीर का दिव्य-सन्देश लेकर जनता के सन्मुख आये थे। उनकी आदर्श शिक्षाएँ सबके कल्याण के लिए होती थी। परन्तु कुछ ऐसे व्यक्ति भी

थे जो उनके उपदेश को जीवन मे पचा नही सके थे। अपने जीवन की कमियो के कारण वे हतप्रभ से हो गये थे। जिस यति-वर्ग का ओर हम यह संकेत कर रहे है वह उस समय अपने आपको श्रावक समाज का गुरु मानता था। इस अहमन्यता के कारण उसमे अनेक दोष आगये थे। श्री लवजी ऋषिजी म० जब-जब अपना आदर्श जनता के समुख रखते, तब-तब यति लोग बोखला जाते थे। वे श्री ऋषि जी का प्रचार रोकना चाहते थे। उन्होने अनेक प्रयत्न किये पर किसी मे भी उन्हे सफलता नही मिल सको। अन्तमे उन्होने श्री लवजी ऋषिजो के ससार पक्ष के नाना श्री वीरजी बोरा को भडकाना प्रारम्भ कर दिया। अनेक झूठी-सच्ची वाते बनाकर उन्हे अपने पक्ष मे कर लिया। वीरजी बोरा का खम्भात के नवाब के साथ बढा हो घनिष्ठ मैत्री सबध था नवाब सा० कई बार उनसे आर्थिक सहायता भी ले चुके थे। इसलिए वे श्री बोहरा की कोई बात नही टालते थे। उनकी झूठी चाल मे आकर बोहरा जो ने नवाब को एक पत्र मे लिख भेजा कि लवजो साधु तथा उनके साथियो को अपने राज्य मे निकाल दे अथवा ऐसा प्रबन्ध करदे जिसमे उनका प्रचार रुक जाये।

नवाब साहब ने पत्र मिलते ही अपने हुक्म से श्री लवजी ऋषि जो महाराज तथा उनके साथी सतो को नजर कैद करवा दिया। जिस जगह आपको नजर कैद करके रखा गया था, वह स्थान राजमहल के बिल्कुल समीप और सामने हो था। सतो के पास तो धर्मसकट के समय तपस्या का हो सहारा होता है। इसोलिए सब सतो ने तेले की तपस्या अङ्गोकार करलो। तोसरे दिन एक बादो ने मुनियो को देख लिया। उसने सारी बात का पता लगाकर बेगम साहिबा से कहा कि आपके राज्य मे ये निर्दोष सत क्यो कैद करवाये गये है। ये बेचारे न तो कुछ खाते है न पीते है, हमेशा अपने धर्मशास्त्र पढते रहते है।

बेगम साहिबा ने नवाब साहब से प्रार्थना करते हुए कहा कि हुजूर ! इन साधुओ ने आपका क्या गुनाह किया है ? इन्हे कैद क्यो करवाया गया है ? नवाब साहब बोले—इन्होने मेरा तो कोई कसूर नही किया है। मैने तो अपने एक मित्र के कहने पर इन्हे कैद करवाया है। नवाब साहब के उत्तर मे बेगम ने कहा जहाँ-पनाह ! फकीरो की बददुआ लेना ठीक नही है। महरबानी करके इन्हे जल्दी से छुडवा दीजिए। बेगम की बात नवाब साहब के मन मे जँच गई। उसने वोहरा साहब के पत्र की सारी बात श्री ऋषिजी को बताकर उन्हे आदरसहित मुक्त करवा दिया। साथ मे यह भी कहा कि आप जहाँ भी चाहे अपना उपदेश कर सकते है।

यति लोग श्री लवजी ऋषि जी के कैद होने की बात से बडे प्रसन्न हुए थे, पर उनके आदरसहित मुक्त होने के समाचार से उनके किए कराए पर पानी फिर गया। उनका षड्यन्त्र एकदम असफल हो गया। सत्य है, त्याग की सदा विजय होती है। झूठ हमेशा ही सत्य से हारता आया है।

आचार्य पद और श्री धर्मसिंहजी का मिलन

श्री लवजी ऋषि जी म० अदम्य उत्साह के धनी थे। अनेक कष्ट आये, पर वे अपने मार्ग से किंचिन्मात्र भी विचलित नही हुए। खम्भात के घर घर मे उनकी गुण गरिमा के गीत गाये जाने लगे। उनके अनुयायिओ की सख्या में भी यहाँ आशातीत वृद्धि हो चुकी थी। खम्भात मे सत्य मार्ग पर चलने वाले श्रावको का एक सघ स्थापित हो चुका था। श्री सघ ने जिनशासन की व्यवस्था की दृष्टि से आपको पूज्य पद पर स्थापित कर दिया। अब धर्म

श्रद्धालु जनता उन्हे पूज्य श्री लवजी ऋषि के नाम से सम्मान देने लगी। यहाँ से बिहार करके आप 'कालोदरे' पधारे। यहाँ आपके निष्पक्ष उपदेशो से लोगो ने खूब लाभ लिया।

पूज्य श्री वीर शासन की अधिक से अधिक उन्नति चाहते थे। एक दिन उन्हे विचार आया कि कुछ प्रभावशाली व्यक्तियो के प्रतिबोध से प्रचार का कार्य अधिक सुगम हो सकता है। खम्भात सूरत और अहमदाबाद आदि प्रदेशो के शासक वीरजी बोरा के हाथ मे है। यदि 'वीरजी' भगवान् का सच्चा मार्ग स्वीकार करलें तो प्रचार के कार्य मे बडी सहायता मिल सकती है। अपने इसी निर्णय के अनुसार पूज्य श्रीजीने कालोदरे से अहमदाबाद की ओर प्रस्थान कर दिया।

अहमदाबाद, धर्मप्राण लोकाशाह की प्रचार भूमि रह चुकी है। वहा की जनता आरम्भ से ही धर्म तथा धर्मोपदेश की रुचि रखती आई है। पूज्य श्री के आगमन से एकबार फिर वहा धर्म प्रचार का रग जम गया। श्रीमान् लोकाशाह के सिद्धान्त, जो यति वर्ग के प्रभाव के कारण धूमिल हो गये थे, अब पुन चमक उठे। एकसौ वर्षो का इतिहास पुन अपने आपको दोहराने लगा।

एकदिन पूज्यश्री आहार को जारहे थे। रास्ते मे उन्हे लोकागच्छीय यति श्री शिवजी के शिष्य श्री धर्मसिंह जी महाराज मिल गये। दोनो मे आहार-विहार तथा आचार-विचार सम्बन्धी अनेक प्रश्नोत्तर हुए। आचार्य श्री लवजी ऋषिजी ने श्री धर्मसिंह जी से कहा कि आप सामर्थ्यवान् होकर भी यतियो के क्रिया-काण्ड मे क्यो फमे हुए है। आप तो धर्म के सिंह है। आपको तो धर्म-गर्जना करके जनता के सोये हुए सिंहत्व को जगाना चाहिए। यह कपडा जो आपने वायुकाय की रक्षा के लिये हाथ मे लिया हुआ है,

इसका नाम 'मुखवस्त्रिका है। मुखपर बाधने मे ही इसकी उप-योगिता है। यह हाथवस्त्रिका नही है।

सरल हृदय सत श्री धर्मसिहजी के मन पर इन सब बातो का बडा ही गहरा प्रभाव पडा। वे स्वय बडे विद्वान् थे। उन्होने सत्य को जल्दी ही ग्रहण कर लिया। उनकी आत्म-कल्याण तथा क्रियोद्धार की भावना और भी दृढ हो गई। अपने उपाश्रय मे पहुचकर उन्होने आज सर्वप्रथम अपने मुख पर मुखवस्त्रिका बाधी।

वीरजी को प्रतिबोध

यतियो के द्वारा समय-समय पर अनेक कष्ट पहुँचाये जाने पर भी पूज्य श्री लवजी ऋषिजी म० की धर्म-यात्रा अबाध रूप से चलती रही। अहमदाबाद से विहार करके वे गुजरात, काठिया-वाड, मारवाड, मालवा और मेवाड आदि अनेक प्रान्तो मे पधारे। सभी जगह उनके धर्म-प्रचार की धूम मच गई। अनेक भव्य प्राणियो ने उनकी सत्प्रेरणा से सन्मार्ग स्वीकार कर लिया। इस बार वे अपनी जन्मभूमि सूरत नगर मे पधारे। यहा आकर आपने श्री वीरजो वोरा को धर्म उपदेश दिया। आपके सच्चे उपदेश से प्रभावित होकर श्री बोराजी यति परम्परा को त्याग कर आपके शिष्य हो गये। सत्य की महिमा बडी विशाल है। कल जिस व्यक्ति ने उन्हे कैद करवाया था, आज वही उनका भक्त बन गया। यह सब पूज्य श्री के त्याग का ही प्रभाव था। यह विक्रम सम्वत् १७१० का चातुर्मास आपने सघ की प्रार्थना पर सूरत मे ही व्यतीत किया। इसी चातुर्मास मे आपके पास सूरत निवासी श्री सखिया भणसाली जी की दीक्षा हुई। चातुर्मास के बाद आप खम्भात पधारे। यहा श्री धर्मसिह जी म० श्री अमोपाल जो और

श्री श्रीपाल जी म० से आपका प्रेम मिलन हुआ। कहते है कि ये तीनो मुनिराज श्री कु वर जी की शाखा से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर चुके थे और अपना क्रियोद्धार करके आगमानुसार प्ररूपणा करने लगे थे। श्री लवजी ऋषिजी को इनके सहयोग से धर्म प्रचार मे बडी भारी सहायता मिली। उनका प्रचार बल और भी बढ गया। कालुपुरा (अहमदाबाद) के निवासी २३ वर्षीय युवक श्री सोम जी ने इन्ही दिनो मे उनके चरणो मे दीक्षा ग्रहण की थी। सोमजी ऋषि बडे ही सेवाभावी विद्वान् सत थे। श्री लवजी ऋषिजी म० की आपने अन्तिम समय तक सेवा की थी। अपने गुरुदेव के बाद आपने ही आचार्य पद को सुशोभित किया था। उत्तरार्ध लोकागच्छीय पजाब शाखा के मूल मे आपका नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

श्री सोमजी जसे प्रतिभा सम्पन्न शिष्य को पाकर पूज्य श्री का धार्मिक उत्साह चतुर्मुखी हो गया। अहमदाबाद के इस कोने से लेकर उस कोने तक धर्म दुन्दुभि बजने लगी। इधर पूज्य श्री लवजी ऋषिजी म० का प्रचार और उधर धर्ममूर्ति श्री धर्मसिहजी म० का धर्म-उपदेश इन दोनो क्रांतिसृष्टाओ के सहयोग से आगमानुकूल सिद्धान्तो का अविरल गति से प्रचार होने लगा।

महान् कष्टों में भी शांत

महापुरुषो के जीवन मे कष्ट सहिष्णुता का अपार भण्डार होता है। वे मरणान्तक उपसर्ग आने पर भी अपने मार्ग मे विचलित नही होते। समर्थ क्रियोद्धारक श्री लवजी ऋषिजी म० की सहनशीलता और शान्ति अनुपम थी। जीवन मे उन पर अनेक कष्ट आये पर सभी कष्टो को शांतिपूर्वक झेलते रहे। प्रतिशोध अथवा अशांति का भाव कभी मन मे नही आने दिया।

एक बार अहमदाबाद मे यतियो ने उनके शिष्य श्री भानुऋषि जी म० को कुटिलतापूर्वक अपने मन्दिर के पीछे ले जाकर कत्ल कर दिया और उनके शव को वही गड्ढा खोदकर दबा दिया। सायकाल तक भानुऋषि जी के उपाश्रय मे न पहुँचने पर जनता मे खलबली मच गई। बहुत खोज करने पर भी कई दिन तक कोई पता न चल सका। आखिर पाप कब तक छिपता। एक दिन एक सोनी के द्वारा सारा वृत्तान्त जनता मे खुल गया। धर्मश्रद्धालु लोगो मे प्रतिशोध की आग भडक उठी। पर शाति सेना के अधिनायक श्री लवजी ऋषिजी महाराज ने कर्मगति' का परिचय देते हुए अपने शाति सन्देश द्वारा सबको शात कर दिया। मुनिनायक की इस सहनशीलता से उनकी प्रतिष्ठा और बढ गई।

यति लोग इतना ही अनर्थ करके शात नही हुए। कभी-कभी धर्मात्मा पुरुषो के शातभाव को देखकर विरोधी गर्व के उन्माद मे आ जाते है। यही हाल अहमदाबाद के यति समुदाय का हुआ। उन्होने सत्यप्रिय सत श्रद्धालुओ का सामाजिक वहिष्कार करना आरम्भ कर दिया। कूओ पर से उनके मटके हटा दिये गये। नाइयो और धोबियो को उनका काम करने से रोक दिया गया। शहर के २५—३० श्रावको ने दिल्ली जाकर बादशाह तक अपनी कष्ट कहानी पहुँचानी चाही, पर वहा पहिले मे ही यतियो ने ऐसा प्रबध करा लिया था कि कोई बादशाह से मिलने भी न पाया। फिर भी वे भक्त श्रावक अपना प्रयत्न करते ही रहे। एक दिन दिल्ली राज्य के एक प्रसिद्ध 'काजी साहब' के इकलौते लडके को विपैले साप ने काट खाया। अनेक प्रयत्न करने पर भी लडका सचेत न हो सका। सब लोग उसे मृत समझकर कब्रिस्तान मे ले आये।

अहमदाबाद से आये श्रावको मे एक श्रावकजी बडे ही दृढ

विश्वासी थे। उन्होने कब्रिस्तान मे पहुँचकर लडके को पचपर मेष्ठी-महामत्र सुनाया। महामत्र के प्रभाव से सर्प का विप उतर गया और लडका स्वस्थ होकर उठ बैठा। अपने लडके को जीवित और स्वस्थ देखकर काजीजी की खुशी का पार न रहा। वे उसी समय श्रावकजी के चरणो मे गिर पडे। काजीजा ने वडे हो नम्रशब्दो मे कहा आपने मुझ पर जो अहसान किया है, इसे मैं जिन्दगी भर भी नही भूल सकता।

धर्मात्मा श्रावकजी ने अहमदाबाद मे भानुऋषिजी के कत्ल से लेकर अब तक का सारा वृत्तान्त काजीजी को सुनाते हुए वहा के यतियो के अत्याचारो का कच्चा चिट्ठा उनके सामने रख दिया। अब क्या था काजीसा० ने सारा वृत्तान्त तुरंत ही बादशाह तक पहुँचा दिया और शाहीफर्मान लेकर स्वय ही अहमदाबाद पहुँचे। वहा जाकर सर्व प्रथम राज्य प्रबध मे मन्दिर का वह स्थान खुदवाया गया, जहाँ भानुऋषिजी के शव को दबाया गया था। खुदाई कराने पर शव का अस्थिपिजर ज्यो का त्यो मिल गया। अबतो काजीजो के क्रोध का पार न रहा। उन्होने उसी घडी उस मन्दिर को ध्वस्त करने का फर्मान जारी कर दिया। किन्तु श्रावको ने कुछ आगा पिछा सोचकर अनुनय विनय के साथ काजीसा० के विचार को बदलवा दिया। काजीसा० श्रावको की इस शांतिप्रियता से अत्यत प्रभावित हुए। उनका जैन धर्म के प्रति अटूट विश्वास होगया। कहते है आगे चलकर ये काजीसाहब भगवान् पार्श्वनाथ जी के दृढ श्रद्धालु हो गये थे। उन्होने अपने जीवन मे भगवान् पार्श्वनाथ जी को अनेक स्तुतिया भी लिखी थी।

महापुरुष का महा प्र०

महापुरुषो का जन्म जगत् के कल्याण के लिए होता

जो कुछ भी सोचते और करते है, उनमे सब के कल्याण की भावना निहित रहती है। उनका जन्म भी महान् होता है और मृत्यु भी महान् होती है। सच तो यह है कि महापुरुषो की आत्म॰ शक्ति इतनी प्रबल हो जाती है कि मृत्यु भी सीधी आती हुई उनके पास घबराती है। वह उनके समीप आने के लिए किसी बहाने की खोज करने लगती है। महापुरुष श्री लवजी ऋषिजी म॰ का अमर जीवन इस बात का स्पष्ट पमाण है। वह इन दिनो रहानपुर के उपनगर इन्दलपुर मे विराजमान थे। यहा यतियो का बडा जोर था। वे पूज्य श्री लवजी ऋषिजी म॰ से सदा चिढते रहते थे। उनकी यह दृढ धारणा बन गई थी कि जब तक 'श्री लवजी' जीवित हैं, उनका प्रचार पूरे वेग के साथ चलता ही रहेगा। किसी भी प्रकार से यदि श्री लवजी समाप्त हो जाय, तो यति सम्प्रदाय की उन्नति हो सकती है। अपने इस पैशाचिक निश्चय की पूर्ति के लिए उन्होने दो विष मिश्रित मोदक बनाए। अपने बेले की तपस्या के पारणे के लिए जब महामुनिराज श्री लवजी ऋषिजी गोचरी के लिए उठे तो एक रंगारिन बाई के द्वारा दोनो लड्डू उन्हे आहार मे दे दिए गये। इसके बाद क्या हुआ इसे लिखने की आवश्यकता नही है। मृत्यु को एक बहाना मिल गया। वह आई और अपना काम करके चली गई। हमारे धर्म नायक ने संथारा करके पूर्ण सम भावो के साथ समाधि मरण प्राप्त कर लिया। उनका यह धर्म बलिदान आनेवाली पीढियो को सदा धर्म सहिष्णुता का सन्देश देता रहेगा।

श्री लवजी ऋषिजी के स्वर्गवास से जो क्षति हुई उसका पूरा होना तो संभव नही था, फिर भी उनके योग्य शिष्य श्री सोमजी ऋषि ने अपने गुरुदेव के उत्तरदायित्व को पूरी तरह से संभाल लिया। धर्म गंगा का प्रवाह चलता ही रहा।

श्री लवजी ऋषिकी परम्परा

पूज्य श्री लवजी ऋषिजी म० अपने युग के एक महा प्रभावक सत थे। उनका समस्त जीवन ज्ञान मय था। तपोव्रत के आराधन मे तो वे अद्वितीय थे। सदा ही बेले वेले की तपस्या करना उनका स्वाभाविक धर्म बन गया था। गर्मी मे धूप की आतापना लेना और सरदो मे शीत तपस्या करना उनके जीवन का विशेष अग था। उनके अभूतपूर्व त्यागव्रत के कारण ही उनके शिष्यो मे भी ये गुण विशेष रूप से प्रतिष्ठा पागये। पूज्य श्री सोमजी ऋषि के बाद उनकी परम्परा मे अनेक प्रभावक सत हुए है। इन सभी सतो ने यथा समय जिन शासन की उन्नति मे अपना पूर्ण योगदान दिया है। श्री सोमजी ऋषि के अनेक शिष्यो मे श्री कहान ऋषिजी तथा श्री हरिदासजी म० के नाम मुख्य रूप से आते है। इन दोनो महापुरुषो से ही आगे चल कर क्रमश ऋषि सम्प्रदाय और पजाब सम्प्रदाय का निर्माण हुआ है।

श्री हरिदास जी महाराज

मुनि पुङ्गव पूज्य श्री हरिदास जी महाराज पहिले लोकागच्छीय यति थे। उनका आगम ज्ञान बडा ही विशाल था। आपके मन मे सम्यग् ज्ञान की बडी उत्कट जिज्ञासा थी। उनका शास्त्राध्ययन निरन्तर चलता रहता था। एकबार उन्होने आगम मे सच्चे साधुओ का स्वरूप पढा। जब उन्होने उसकी तुलना तत्कालोन यति समाज के साथ की तो यतियो के शास्त्र विरुद्ध शिथिलाचार से उन्हे घृणा हो गई। वे सोचने लगे कि उस ज्ञान से क्या लाभ है जो आचरण मे न आ सके। मैंने गृहस्थ का त्याग आत्म कल्याण के लिए किया है। शुद्ध आत्मसाधना के बिना यह वाह्य क्रिया काण्ड किसी काम का नही है।

यही सब सोचकर उन्होने यति परम्परा का त्याग कर दिया, और खोज करते करते एकबार अहमदाबाद आ गये। यहा पूज्य श्री धर्मसिहजी महाराज से उनकी भेट हुई। उनका सत्सग लाभ लेकर वे उसी नगर मे विराजमान पूज्य श्री सोमजी ऋषि की सेवा मे आये। यहाँ उन्होने कई दिन तक सच्चा धर्म लाभ लिया पूज्य श्री सोमजी के सदुपदेशो से उनकी आत्मा सयम मार्ग मे स्थिर हो गई। और वे उन्ही के शिष्य बन गये। कुछ पट्टावलियो मे उल्लेख है कि वे पूज्य श्री सोमजी की आज्ञा मे विचरने लगे। कुछ भी हो, श्री हरिदास जी महाराज के जीवन को शुद्ध सयम का मोड पूज्य श्री के सत्सग ने ही दिया।

अनेक भाषाओं के विद्वान्

भाषा को वह शक्ति है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरो पर प्रकट करता है। धर्मप्रचार करने वालो के लिए अधिक भाषाओ का ज्ञान होना उनकी सफलता का कारण होता है। आज हम जितनी भाषाएँ देख रहे हैं। इन सबकी दूर समीप जननी प्राकृत भाषा ही है। प्राकृत भाषा आद्य भाषा है। इसीलिए तो सभी तीर्थङ्कर इसी भाषा मे अपना धर्म उपदेश देते है। प्राचीन काल मे यह भाषा लोकभाषा के रूप मे प्रचलित थी। आज इसके जानकार न होने के कारण हम अपने शास्त्रीय ज्ञान से वचित होते जा रहे है।

श्री हरिदास जी महाराज अपने समय के प्रसिद्ध भाषाविद् थे। उन्होने अपने यति काल मे ही सस्कृत, प्राकृत, उर्दू और फारसी आदि भाषाओ का विशेष ज्ञान प्राप्त कर लिया था। आपकी भाषण शैली मे प्रभावित होकर ही पूज्य श्री जी ने आपको पजाब मे जाकर धर्मप्रचार करने की आज्ञा प्रदान कर दी।

पजाब सदा से धर्मवीरो और कर्मवीरो की भूमि रही है। क्रान्तियो का तो अग्रस्रष्टा रहता आया है। ओसा नगरी से आये हुए ओसवाल पजाब मे भावडे के नाम से प्रसिद्ध है। यह भावडा जाति (ओसवाल) अपने कर्त्तव्य क्षेत्र मे बडी ही शौर्य-पूर्ण रही है। पजाब मे आकर तो इस जाति की भावनाएँ बहुत उन्नत हो गई। इनकी इस भाव उन्नति के कारण ही लोग इन्हें भावडा कहने लगे।

पंजाब को धर्म-नेता मिल गया

उन दिनो पजाब को एक ऐसे धर्म-नेता की आवश्यकता थी जो स्वय शुद्ध साध्वाचार का पालन करता हो और उन्हे सच्चे वीतराग के मार्ग का उपदेश दे सके। श्री हरिदास जी महाराज के पजाब पहुँचने पर उनकी यह आवश्यकता पूर्ण हो गई। श्री हरि-दास जी महाराज शुद्ध सयमी होने के साथ साथ, आगम साहित्य के बडे भारी विद्वान् थे। पजाब मे आते ही उनके उपदेशो की धूम मच गई। हजारो की सख्या मे लोग उनके धर्म उपदेश मे आने लगे। अपने उपदेशो मे मुख्य रूप से वे सम्यक्त्व की स्थापना तथा मिथ्यात्व का विरोध करते थे। उन्होने सत्य ही कहा था कि —आत्मा ही अपने गुणो को चमका कर महात्मा बनता है। जब महात्मा तपस्या द्वारा अपने समस्त कर्मो को क्षय कर देता है तो वह परमात्मा बन जाता है। आत्म उपासना से ही परमात्म-पद की प्राप्ति होती है। चेतन को तो चेतन की ही उपासना करनी चाहिए। जड की उपासना करने से चेतन का अपमान होता है। जड पूजा मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व से कभी कल्याण नही हो सकता। सम्यक्त्व ही कल्याण की सीढी है। हमारे देव अरिहत है, गुरु निर्ग्रन्थ है, तथा धर्म अहिसा है। इन तीन महान् तत्त्वो का

विश्वास ही सम्यक्त्व कहलाता है। हम सबको सम्यक्त्व रत्न प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

शिष्यो को सद्गुरू मिल गया

सत्य को सभी ग्रहण करना चाहते है। जब सत्य का दर्शन हो जाता है तो झूठ से सबको घृणा हो जाती है। श्री हरिदास जी महाराज के आगमानुसारी प्रचार से जनता की आखें खुल गई। उन्हे अपने हित, अहित का बोध होने लगा। अनेक भव्य प्राणियो ने उन्हे सद्गुरु के रूप मे स्वीकार कर लिया। कितने ही कल्याण के इच्छुक तो उनकी चरण शरण मे साधु बन गये। धीरे-धीरे ज्यो-ज्यो उनका प्रचार उन्नति करता रहा, त्यो-त्यो उनके शिष्यो तथा अनुयायियो की सख्या मे वृद्धि होने लगी। एक समय ऐसा आया जब पजाब मे उनके अनुयायियो का एक सुदृढ सगठन बन गया। पजाब श्री सघ ने श्री हरिदास जी महाराज को सामूहिक रूप से बडे भारी उत्साह के साथ पूज्य पद पर स्थापित कर दिया। इसके बाद आपका श्रमणसघ एक विशिष्ट सम्प्रदाय का रूप ले गया। पूज्य श्री लवजी ऋषि के तीसरे पाट पर आपको आचार्य स्वीकार किया गया। पजाब के छोटे बडे अनेक क्षेत्रो मे क्रमश आपके शिष्य परिवार तथा सम्प्रदाय का विस्तार बढने लगा। यह सब आपके त्याग, तपोबल तथा विशाल शास्त्रीय ज्ञान का ही प्रभाव था। आपका जीवन समस्त मानव समाज के लिए आदर्श था।

ऐतिहासिक सामग्री तथा शिष्य परम्परा

पूज्य श्री हरिदास जी महाराज के विषय मे अभी तक कोई क्रमिक इतिहास सामग्री उपलब्ध नही हो पायी है। बहुत खोज

करने पर भी उनके जन्मस्थान, माता, पिता, जन्म सम्वत् आदि की कोई प्रामाणिक सामग्री नही मिली है कुछ जन श्रुतियो तथा पूर्वापर के मुनिराजो के जीवन-वृत्तो के आधार पर ही जनता मे उनका परिचय है। ऐतिहासिक विद्वानो को इस ओर प्रयत्न करना चाहिए।

पूज्य श्री हरिदासजी महाराज की शिष्य-परम्परा काफी विस्तृत थी। अनेक पट्टावलियो मे उनके शिष्यो के नाम मिलते है। 'आपके बाद पजाब के आचार्य पद पर श्री वृन्दावनलाल जी महाराज, श्री भवानीदासजी महाराज तथा श्री मलूकचन्द्र जी महाराज क्रमश विराजमान हुए। पूज्य श्री मलूकचन्द्र जी म० अपने समय के बडे ही प्रसिद्ध महापुरुष थे। विक्रम सम्वत् १८१० के वैशाख शुक्ला पञ्चमी मगलवार के दिन पचेवरगाम मे जो चार सम्प्रदायो का सम्मेलन हुआ था उसमे आप और आपकी सम्प्रदाय के श्री मनसारामजी महाराज तथा महासति श्री पूलाजी अपने शिष्य परिवार के साथ सम्मिलित हुए थे। इनके बाद परम प्रभावक महापुरुष पूज्य श्री महासिह जी हुए। इनका स्वर्गवास वि स. १८६१ मे माना जाता है इसके बाद कुशलसिह जी, छज्जुमल जी और रामलाल जी महाराज हुए श्री लवजी ऋषि के दशवे पाट पर पजाव मे प्रसिद्ध आचार्य श्री अमरसिह जी महाराज हुए।

पजाब के प्रसिद्ध नगर अमृतसर मे आपका जन्म हुआ था। आप तातेड गोत्रीय ओसवाल थे। वि स १८६८ वैशाख कृ० द्वितीया को आपने दीक्षा व्रत स्वीकार किया था। आप पजाब के बडे ही प्रभावशाली आचार्य हुए है। पजाब सम्प्रदाय आपको आद्य आचार्य के रूप मे स्वीकार करता है। वि स १९३८ अषाढ शु २ के दिन आपका अमृतसर मे स्वर्गवास हुआ। आप श्री रामलालजी के शिष्य थे। श्री अमरसिहजी म० के अनेक शिष्य हुए है उनमे

श्री रामवख्श का नाम मुख्य रूप से आता है। आपका अलवर के लोढा गोत्रीय ओसवाल थे। पच्चीस वर्ष की आयु मे आपने जयपुर मे दीक्षा ग्रहण की थी। मालेर कोटला पजाब मे आपको वि सं १६३६ ज्येष्ठ कृ ३ के दिन आचार्य पद दिया गया था। इस प्रकार आप केवल २१ दिन रहे। आपका शीघ्र ही स्वर्गवास हो गया इसके बाद पजाब की परम्परा मे अनेक विद्वान् साधु सत हुए। विशेषतया पजाब मे चार परिवार अधिक प्रसिद्ध है। (१) पूज्य सोहनलाल जी का, (२) पूज्य मोतीरामजी का, (३) श्री मयारामजी (४) श्री लालचन्द जी का।

पूज्य श्रीरामवक्ष के बाद पूज्य मोतीरामजी और और श्री सोहनलालजी म० आचार्य पद पर आये।

पूज्य श्री सोहनलालजी महाराज

स्यालकोट (पश्चिमी पंजाब) के सम्बडियाल नामक नगर मे आपका जन्म हुआ था। आपके पिता का नाम श्री मथुरादास और माता का नाम लक्ष्मीदेवी था। विक्रम स १६३३ मे आपने शिवदयाल जी, दूल्होराय जी और गणपतराय जी इन तीनो साथियों के साथ श्री अमरसिंह महाराज के चरणो मे दीक्षा ग्रहण की थी। श्री मोहनलाल जी और शिवदयाल जी श्री धर्मचन्द्रजी के शिष्य बनाये गये। श्री दूल्हाराय और श्री गणपत राय जी श्री मोतीरामजी के शिष्य हुए। आप सबका दीक्षा उत्सव बडी धूम धाम के साथ हुआ था। गुरुदेव श्री धर्मचन्द्र जी के स्वर्गवास के बाद श्री सोहन लालजी पूज्य श्री अमरसिंह जी की सेवा मे रहने लगे थे। थोडे ही दिनो मे आपने आगमो का विशद ज्ञान प्राप्त कर लिया। धीरे धीरे व्याख्यान कला मे भी आपकी प्रगति होने लगी। जब से आप प्रचार के क्षेत्र मे उतरे चारो ओर आपके

प्रचारो की धूम मच गई। आप शास्त्रार्थ कला मे भी बडे कुशल थे। श्री आत्माराम सवेगी जैसी मूर्ति पूजक विद्वान् साधु आपके नाममात्र से ही भय खाते थे। आपको जैन ज्योतिष विद्या मे भी विशेष प्रगति थी। आपने एक जैन पचाङ्ग का भी निर्माण किया था। वि, स १९५८ मार्ग शीर्ष शु० ५ बृहस्पतिवार के दिन पटियाला (पजाब) मे आपको आचार्य पद दिया गया। इस समय यहा गणावच्छेदक श्री गणपतरामजी तथा श्री लालचद जी महाराज आदि २६ साधु एकत्रित हुए थे। आपके अनेक शिष्य हुए है। उसमे गैंडेराय जी म तथा श्री काश नाथ जी म० का नाम प्रमुख है। श्रागैंडेराय जी के श्री गणिउदयचद जी महाराज पण्डित रत्न श्री कस्तूरचद जी म तथा तपस्वी श्री निहाल चद महाराज आदि शिष्य हुए। आपका स्वर्गवास वि स० १९६२ आषाढ शु० ६ के दिन अमृतसर मे हुआ था।

गणिवर्य श्री उदयचंद्रजी महाराज

गणिवर्य श्रीउदयचद जी महाराज ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न हुए थे। आपके दीक्षागुरु श्रीगैंडेराय जी महाराज थे। श्री गणिजी म० बडे ही कुशाग्र बुद्धि थे। शाति के तो आप देवता थे। आप बडे ही प्रगाढ पाण्डित्य के धनी थे। आपका आगम अध्ययन बडा ही विशाल था। तत्कालीन नाभा नरेश श्रीहीरासिंह जी के दरबार मे आपने अनेक शास्त्रीय युक्तियो द्वारा श्रीबल्लभ विजयजा सवेगी को परस्त किया था। यह शास्त्रार्थ वि० स० १९६१ ज्येष्ठ कृ० ४ को नाभा नरेश के ज्ञान गोष्ठी भवन मे आरम्भ हुआ था। इस शास्त्रार्थ मे श्रीहीरासिंह जो के अतिरिक्त भाई कहानसिंहजो, प० श्री धर जी, और बाबा परमानन्द जी आदि विद्वान् निर्णायक के रूप मे उपस्थित रहते थे। शास्त्रार्थ का मुख्य विषय 'मुख-वस्त्रिका था। श्रीबल्लभ विजयजो का मत था कि मखवस्त्रिका

हाथ मे रखनी चाहिए और श्री गणीजी का मत था कि इसे मुख पर बाधना ही शास्त्रानुकूल है। इस शास्त्रार्थ मे श्री गणीजी महाराज विजयी हुए थे। उनके तर्क बडे ही अकाट्य थे। उन्होने मुखवस्त्रिका मुख पर ही बाधनी चाहिए इस विषय मे जैन तथा जैनेतर अनेक ग्रथो के प्रमाणो से अपने मत का समर्थन किया। इसके अतिरिक्त आपने अपने जीवन मे अनेक धार्मिक तथा सामाजिक सुधार के कार्य किये। अजमेर साधु सम्मेलन मे आप शातिरक्षक के प्रमुख पद पर नियुक्त थे। ८५ वर्ष की अवस्था मे आप का दिल्ली मे स्वर्गवास हो गया। श्री रघुवर दयाल जी म० आपके प्रमुख शिष्य है।

पूज्य श्री काशीराम जी महाराज

आपका जन्म पसरूर (स्यालकोट) पजाब मे वि० स० १९६० मे हुआ था। आप पूज्य श्री सोहन लाल जी महाराज के शिष्य थे। आप पजाब के बडे ही तेजस्वी पुरुष थे। श्रद्धालु भक्त आपको पजाब केशरी के नाम से पुकारते थे। आप स्वभाव के जितने कोमल थे क्रिया से उतने ही कठोर थे। आगम शास्त्र के विद्वान् होने के साथ साथ आप अनेक भाषाओ के विद्वान् भी थे। वैराग्य और त्याग की आप साक्षात् मूर्ति थे। पजाब के अतिरिक्त यू० पी०, राजस्थान गुजरात और दक्षिण आदि प्रदेशो मे भी आपने पाद बिहार किया था। आपको होशियार पुर मे आचार्य पद दिया गया था। आपके प्रभावशाली उपदेशो से प्रभावित हो कर अनेक भव्य जीवो ने आत्म कल्याण का पथ अपनाया। अनुशासन व्यवस्था का आपको विशेष अनुभव था। आपका स्वर्गवास अम्बाला मे हुआ था। आपके अनेक शिष्य हुए है, जिनमे पण्डित श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज का नाम विशेष महत्व पूर्ण है। पूज्य

श्री काशीराम जी म० के स्वर्गवास बाद उनका उत्तराधिकार आपको ही प्राप्त हुआ था।

महान् आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज

आप क्षत्रियकुलोत्पन्न चोपडा गोत्रीय थे। आपके पिताजी श्री मनसा रामजी और माताजी श्री परमेश्वरी देवीजी थीं। विक्रम सम्वत् १६५१ मे आपको श्री गणपत रायजी म० ने दीक्षा दी और श्री शालिग्रामजी म० का शिष्य बना दिया। आपने पजाब के प्रमुख आचार्य श्री मोतीरामजी म० से शास्त्राभ्यास किया था। आप आगम शास्त्रो के उद्भट विद्वान् थे। उर्दू, फारसी, सस्कृत और प्राकृत" आदि भाषाओ पर आपका पूर्ण अधिकार था। आपका पाण्डित्य पूर्ण व्यापक था। आपकी विद्वत्ता तथा सयमशीलता देख कर सघ ने आपको उपाध्याय पद पर नियुक्त कर दिया। वि० स० १६६३ मे आपको साहित्यरत्न की पदवी से विभूषित किया गया। आपने अनेक जेनागमो पर स्वतन्त्र तथा विस्तृत हिन्दी टीकाएँ भी लिखी हैं। अनुमानत ६० ग्र थ आपने अपने जीवनकाल मे लिखे थे। आप काफी वर्षो तक लुधियाना मे स्थिरवास मे रहे और अत मे आपका स्वर्गवास भी यही पर हुआ। इन दिनो आप भारतवर्षीय श्रमण सघ के प्रथम आचार्य थे।

पजाब की इन विभूतियो के अतिरिक्त स्थविर स्वामी श्री नेकचन्दजी म०, स्वामी श्री भागमलजी म० श्री रघुवरदयालजी म० प० श्री हेमचन्द्रजी म० पजाब केशरी श्री प्रेमचन्द जी म० तत्त्ववेत्ता श्री फूलचन्दजी म० श्रमण' श्री पद्मचन्द्रजी म० (भण्डारी) श्री ज्ञानमुनिजी म०, श्री मनोहर मुनि जी म०, वक्ता श्री सुमनमुनिजी म० आदि मुनिराजो के नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सत मुनिराजो के समान ही पजाब का श्रमणी वर्ग भी

बडी विशाल सख्या मे है। पजाब की भूमि ने श्रमण समाज को अनेक त्यागी, तपस्वी और विद्वान् मुनिराज दिए है।

व्याख्यान-वाचस्पति स्व० श्री मदन लालजी महाराज अपने समय के एक प्रभावशाली तेजस्वी महापुरुष हुए है। आप कुछ समय तक श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रमणसघ के प्रधान मत्री भी रहे थे। सयम-साधना मे आप सदा तत्पर रहते थे। स्वर्गीय श्री मदन लालजी म० के सतो मे स्थविर श्री रामजीलाल जी म० विद्वान् श्री सुदर्शन मुनिजी म० तथा श्री रामप्रसाद जी म० श्री रामकृष्ण जी म० आजकल विशेष प्रसिद्ध है।

क्रियोद्धारक पूज्य श्री धर्मसिंह जी महाराज

सौराष्ट्र मे जामनगर अपनी ऐतिहासिकता के कारण अत्यत प्रसिद्ध है। इसी नगर मे जिनदास नाम के एक श्रीमाली श्रावक रहते थे। उनकी पत्नी का नाम शिवादेवी था। महान् क्रान्तिकारी श्री धर्मसिहजी का जन्म इन्ही पुण्यशाली दम्पति के यहाँ हुआ था। श्री जिनदास जी एक धार्मिक विचारो के व्यक्ति थे। अपनी पर-म्परा के अनुसार वे नित्य प्रति सामायिक आदि धर्म-क्रियाएं करते रहते थे। पिता के धार्मिक सस्कारो के कारण ही बालक धर्मसिह की धर्मरुचि जागृत हुई थी। पन्द्रह वर्ष की छोटी अवस्था मे ही इस बालक के हृदय मे तत्कालीन लोकागच्छ के अधिपति श्री रत्नसिह जी के शिष्य श्री देवजी यति की वाणी सुनकर वैराग्य का रग उभर आया। उसे ससार से एकदम विरक्ति हो गई। जब माता-पिता के सम्मुख दीक्षा लेने की आज्ञा का प्रश्न आया तो, वे बडे भारी आश्चर्य मे पड गये। उन्होने बालक धर्मसिह को शक्ति-भर समझाया, पर उसके मन पर उनकी कोई भी बात न बैठ सकी। अपने पुत्र के अकाट्य तर्कों को सुनकर श्री जिनदास जी

इतने प्रभावित हुए कि वे स्वय भी अपने पुत्र के साथ श्री शिव जो यति के पास दीक्षित हो गये।

दीक्षा लेने के बाद स्वल्पकाल मे ही श्री धर्मसिह मुनि आगम साहित्य, व्याकरण, तर्क और दर्शन के विशिष्ट विद्वान् हो गये। उनकी धारणाशक्ति बडा विशाल थी। महान् पाण्डित्य के साथ-साथ उनमे एक यह भी विशेषता थी कि वे अपने दोनो हाथो और दोनो पैरो से एक साथ कलमे पकड कर लिख सकते थे। शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद उनके हृदय मे उज्ज्वल चारित्र को भावना उत्पन्न होने लगी। तत्कालीन यति-समाज के बाह्य क्रिया-काण्ड से उनका मन उदासीन रहने लगा।

गुरुदेव के चरणों में प्रार्थना

एक बार असली दूध पी लेने के बाद नकली दूध को कोई भी पीना नही चाहता। श्री धर्मसिह मुनि को जब सत्य दर्शन हो गया तो उन्हे भी यति-परम्परा से घृणा हो गई। धर्म और साधुता के नाम पर शिथिलाचार उन्हे बिल्कुल ही अच्छा नही लगता था। एक दिन उन्होने अपने गुरुदेव से प्रार्थना करते हुए कहा कि इस समय हमने जो आचरण स्वीकार कर रखे हैं वे शास्त्र-विरुद्ध हैं। सयम की शिथिलता जीवन का नाश करती है। अत हमे उसे सुधारना चाहिए। हमारी क्रिया का उद्धार हुए बिना जीवन का उद्धार सभव नही है।

शिष्य की यथार्थ बातो को श्री शिवजी ने काल का प्रभाव बताकर टाल दिया। उन्होने कहा—शुद्ध सयम का पालन करना आज के युग मे असभव है और फिर मेरी अवस्था भी बडी हो चुकी है। तुम जिस सिद्धान्त पर चलना चाहते हो उसका पालन

मुझसे तो नही हो सकता। यदि तुम स्वय अपनी क्रिया का उद्धार करना चाहो तो कर सकते हो, पर मै तुम्हे इस महान् कार्य के लिए तभी आज्ञा दे सकता हूँ, जब कि तुम मेरी परीक्षा मे सफल हो जाओगे। बोलो! तुम्हे परीक्षा देना स्वीकार है?

श्री धर्मसिंह मुनि के परोक्षा देना स्वीकार कर लेने पर श्री शिवजी ने कहा–कि तुम आज रातभर यहाँ के प्रसिद्ध पीर दरियाखान की दरगाह मे जाकर रहो। यदि तुम प्रात काल जीवित वापिस आगये तो तुम्हे स्वतन्त्र रूप से क्रियोद्धार करके धर्म-प्रचार करने की आज्ञा मिल जायेगी। याद रखो इस दरियाखान दरगाह मे रात को जो भी रहता है, प्रात काल उसका शव ही मिलता है। एक प्रकार से यह मृत्यु के साथ टक्कर है।

दरियाखान पीर का अहमदाबाद और उसके पास के इलाके मे पूरा आतक छाया हुआ था। कई आदमियो की वहा मृत्यु हो चुकी थी। उस पीर से नगर के सब लोग डरते थे। रात में उसके स्थान पर रहना तो दूर रहा, वहाँ कोई जाता भी नही था। पर आत्मविश्वासी श्री धर्मसिंह मुनि निर्भयतापूर्वक दरगाह मे चले गये और पद्मासन लगाकर ध्यानारूढ हो गये। रात्रि में पीर आया और मुनि के तेजोमय रूप को देखकर चकित रह गया। उसने मुनिजी के साथ अनेक प्रश्नोत्तर किये। अत मे वह उनके तप, त्याग के सन्मुख नतमस्तक हो गया। रात्रिभर वह उनकी सेवा मे भक्तिपूर्वक बैठा रहा। मुनिजी ने उसे अनेक शास्त्रो की गाथाओ से दयाधर्म का उपदेश दिया। उस पर उपदेश का इतना प्रभाव पडा कि सदा के लिए उसने किसी जीव को न सताने–न मारने का नियम ले लिया। वह पूर्णरूप से उनका भक्त बन गया।

प्रात काल सूर्य उदय होते ही श्री धर्मसिंह मुनि सकुशल

अपने गुरुदेव के समीप लौट आये। श्री शिवजी यति उन्हे जीवित आया देखकर आश्चर्य-चकित हो उठे। अब उन्हे विश्वास हो गया कि उनका यह शिष्य कोई साधारण व्यक्ति नही है। यह तो कोई महापुरुष है। यह अवश्य ही जनता का उद्धार करेगा। यही सब निर्णय करके उन्होने श्री धर्मसिह जी को क्रियोद्धार की आज्ञा प्रदान कर दी।

क्रियोद्धार और साहित्य-निर्माण

गुरुदेव की आज्ञा मिलने पर श्री धर्मसिह मुनिजी उनसे अलग होकर सर्वप्रथम दरियाखान पीर की दरगाह मे पधारे। यही पर उन्होने अपना सबसे पहला स्वतन्त्र तथा शास्त्रानुकूल उपदेश देना प्रारम्भ किया। इसी कारण आगे चलकर श्री धर्म-सिह जी मुनि की सम्प्रदाय का नाम 'दरियापुरी' प्रसिद्ध हो गया। कुछ इतिहासकार इस घटना को विक्रम सम्वत् १६८५ की बताते है और कुछ का मत है कि यह घटना १६९२ की है। किन्तु श्री लवजी ऋषि के द्वारा श्री धर्मसिह मुनि को क्रियोद्धार की सत्प्रेरणा दिया जाना इस बात को प्रमाणित करता है कि यह घटना १६९४ के बाद की होनी चाहिए।

श्री धर्मसिह जी महाराज की स्मरण-शक्ति बडी ही विलक्षण थी। इस विषय मे एक किवदन्ती भी प्रचलित है कि एक बार एक ब्राह्मण एक हजार श्लोको का एक ग्रथ लेकर उनकी सेवा मे आया। मुनिजी से वह उस ग्रथ का अर्थ समझना चाहता था। तत्त्वज्ञ मुनि श्री ने वह ग्रन्थ एक दिन के लिए ले लिया और दूसरे दिन उसके सब श्लोको का अर्थ ब्राह्मण को जबानी समझा दिया। वह ब्राह्मण उनकी बुद्धि के चमत्कार को देखकर उनका शिष्य हो गया। साहित्यिक क्षेत्र मे भी उनका विशेष प्रभाव था।

उनके शास्त्रीयज्ञान के आगे बडे बडे विद्वान् भी हतप्रभ हो जाते थे। सत्ताइस आगमो पर उनकी तत्त्वपूर्ण टिप्पणियाँ (टब्बे) जैन-साहित्य की अमूल्य निधि है। इसके अतिरिक्त उनकी —

१ समवायाग सूत्र की हुण्डी, २. भगवती सूत्र का यन्त्र, ३. रायपसेणी, ४ ठाणाङ्ग, ५ जीवाभिगम, ६, जम्बूद्वीप पन्नत्ती और चन्द्रपन्नत्ती यन्त्र, ७ व्यवहार तथा समाधि सूत्र की हुण्डी, ८ द्रौपदी और सामायिक की चर्चा, ९ साधु-समाचारी, १०. चन्द्रप्रज्ञप्ति की टीप, आदि कृतिया बडी ही महत्त्वपूर्ण है।

उनकी उपदेश-शैली इतनी चमत्कारपूर्ण थी कि जो भी एक बार उनका व्याख्यान सुन लेता था उसके ज्ञान-नेत्र खुल जाते थे। यतियो के साथ चर्चा वार्ता करने मे वे सिद्धहस्त थे। सैकडो व्यक्तियो ने उनकी चरण-शरण मे बैठकर अपने जीवन का सुधार किया था। उनका प्रत्येक तर्क अकाट्य होता था।

यति समाज पर प्रभाव

वह युग एक प्रकार से यतियो का युग था। मूर्तिपूजा आदि बाह्य क्रियाकाण्डो का जनता मे विशेष प्रचार था। पूज्य श्री धर्मसिंह जी महाराज ने अपनी अकाट्य युक्तियो के द्वारा पथ मे भूली जनता को सन्मार्ग बताया। अनेको यतियो ने आपके उपदेशो से प्रभावित होकर शुद्ध साधु-दीक्षा ग्रहण कर ली थी। आपके अनुयायी श्रावको की सख्या भी कुछ कम नही थी। तत्कालीन यति-समुदाय ने कई वार उनसे तत्त्व-चर्चाएँ की, पर किसी मे भी उसे सफलता नही मिली।

सफलता मिलती भी कैसे ? सत्य तो श्री धर्मसिंह जी की ओर था। आपका प्रचार विशेषतया गुजरात और सौराष्ट्र के आस-

पास ही हो पाया था। शरीर अस्वस्थ रहने के कारण वे दूर के क्षेत्रो मे नही विचर सके। फिर भी उनकी यश कीर्ति सारे देश मे व्याप्त हो चुकी थी। पूज्य श्री लवजी ऋषिजी महाराज के तत्का-लीन प्रचार को पूज्य श्री धर्मसिंह जी महाराज के प्रचार से बडा-भारी बल मिला था।

पूज्य श्री धर्मसिंह जी म० की मान्यता

मान्यताओ की भिन्नताओ के कारण ही साम्प्रदायिक भिन्नताएँ उत्पन्न होती हैं। इन मान्यताओ के नाम पर ही समाज मे भिन्न-भिन्न परम्पराएँ चली हैं। यहाँ इतना अवश्य जान लेना चाहिए कि सभी मान्यताएँ गलत नही होती। उनमे से कुछ सत्य भी होती हैं। हमारा स्थानकवासी जैन समाज वेश आदि अन्य सभी बातो मे समान है, लेकिन मान्यता के नाम पर उसमे समय-समय पर अनेक सम्प्रदायो का उदय हुआ है।

पूज्य श्री धर्मसिंह जी म० का विश्वास था कि मृत्यु अपने निश्चित समय पर ही आती है। अकाल मृत्यु को वे नही मानते थे। आयुष्य टूटने के सात कारणो को वे स्वीकार नही करते थे। दूसरी मान्यता उनकी सामायिक के विषय मे थी। वे मानते थे कि साधु की सामायिक नवकोटि से होती है और श्रावक की सामायिक आठ कोटि से। इस मान्यता के पीछे उनके शास्त्रीय क्या आधार रहे हैं? यह एक विचारणीय प्रश्न है। उनकी साधु-समाचारी भी कई अशो मे स्वतन्त्र सी ही थी। आज भी इन मान्यताओ का दरियापुरी सम्प्रदाय मे विशेष प्रचलन है। इस सम्प्रदाय का गुजरात मे अधिक प्रभाव रहा है।

स्वर्गवास और परम्परा

पूज्य श्री धर्मसिंह जी म० के स्वर्गवास के विषय मे प्रमाण-

पूर्ण सामग्री उपलब्ध नही हो पाई है। फिर भी कुछ लोग उनकी मृत्यु विक्रम सम्वत् १७२८ की आश्विन शुक्ला चतुर्थी को हुई मानते है। श्री लवजी ऋषि के पट्टधर श्री सोमजी ऋषि का पूज्य श्री धर्मसिंह जी के साथ हुआ वार्तालाप इस बात को प्रमाणित करता है कि उनकी मृत्यु श्री लवजी ऋषि के बाद हुई है।

आपकी परम्परा मे अनेक विद्वान् साधु और साध्वियाँ हुई है। आपके स्वर्गवास के बाद श्री सोमजी पूज्य हुए। इसके बाद मेघजी, द्वारकादास जी, मुरारजी आदि सत हुए। इसके बाद ग्यारहवे पाट पर सम्वत् १८२० मे शास्त्रार्थ-विजेता श्री प्रागजी महाराज हुए। 'समकित-सार' ग्रथ के निर्माता श्री जेठमल जी महाराज भी इसी समय मे हुए है। यति वीरविजय के साथ उनका विक्रम सम्वत् १८७८ पोह शु १३ के दिन राजकीय व्यवस्था मे शास्त्रार्थ हुआ था। साधुमार्गी समाज की ओर से श्री जेठमल जी म० आदि सत थे। इस शास्त्रार्थ मे श्री जेठमल जी विजयी हुए थे। शास्त्रार्थ का विषय मूर्तिपूजा था। श्री प्रागजी स्वामी का स्वर्गवास वि० स० १८६० मे माना जाता है। श्री धर्मसिंह जी म० की शिष्य परम्परा अबाधित रूप से चली आई है। उनके २१ वें पाट पर वि० स० १६४० फाल्गुन शु० १ बुधवार को श्री रघुनाथ जी म० विराजमान हुए। ये विरम गाँव के रहने वाले थे। इनकी जाति भावसार थी। पिता का नाम डाह्या भाई और माता का नाम जवल बाई था। इनका जन्म १६०४ मे हुआ था। इन्होंने १६२० की माह शु० १५ के दिन पूज्य श्री मलूक चन्द्रजी स्वामी के चरणो मे कलोल गाँव मे दीक्षा ली थी।

क्रियोद्धारक श्री धर्मदासजी महाराज

श्री लवजी ऋषिजी म० तथा श्री धर्मसिंह जी म० सत्तरहवी शताब्दी के अन्तिम चरण मे हुए है। श्री धर्मदास जी म० का अस्तित्व विक्रम की अठारहवी शताब्दी के प्रारम्भ मे माना जाता है। तीनो ही क्रियोद्धारक लगभग समकालीन थे।

श्री धर्मदास जी म० एक युगप्रधान सत थे। इनका जन्म विक्रम सम्वत् १७०१ चैत्र शुक्ला एकादशी के दिन अहमदाबाद के पास 'सरखेज' गाँव मे हुआ था। इस गाँव मे भावसार जाति के ७०० घर थे। धर्मदास जी के पिता जीवन भाई पटेल भावसारो के प्रमुख थे। इनकी धर्मपत्नी का नाम हीरा बाई था। बालक धर्मदास अपने माता-पिता की परमप्रिय सतान था। जीवन भाई और हीरा बाई दोनो ही जैन धर्मानुयायी थे। बालक के जीवन पर उसके अभिभावको के सस्कारो का विशेष प्रभाव पडता है। यही कारण था कि धर्मदास बचपन से ही धार्मिक रुचि रखने लगा था। उसका शैशवकाल बडे ही सुन्दर सस्कारो मे बीता। कुछ बडा होने पर वह अपनी पारिवारिक परम्परा के धर्मगुरु श्री तेजसिंह जी यति की सत्सगति मे आने लगा। स्वल्पकाल मे ही उसने अपना प्रारम्भिक अध्ययन समाप्त कर लिया। यतिजी ने बालक की विलक्षण प्रतिभा को देखकर धीरे-धीरे उसे शास्त्रीय-ज्ञान देना आरम्भ कर दिया। धर्मदास की धार्मिक रुचि और धर्म शास्त्रो के अध्ययन की तीव्र गति को देखकर गुरुजी भविष्य के अनेक सुनहरे स्वप्न देखने लगे।

वैराग्य-जागरण

शास्त्रो के गहन अभ्यास से उस होनहार बालक के हृदय मे

ससार के प्रति उदासीनता के भाव जागृत होने लगे। ससार की अनित्यता से ऊपर उठने के लिए उसको आत्मा तिलमिलाने लगी। घर मे सभी प्रकार की सुख-सामग्री उपस्थित थी। किसी भी प्रकार की कमी नही थी। किंतु धर्मदास की रुचि धर्म के अतिरिक्त और किसी बात मे नही थी। वह अब ससार के मोहपाश से मुक्त होना चाहता था। इस समय उसकी अवस्था लग-भग पन्द्रह वर्ष की थो। प्रात साय नित्य सामायिक-प्रतिक्रमण करना वह कभी भो नही भूलता था। उसका जोवन सामान्य बालको की भाँति न होकर एक विशिष्ट बाल-योगी के रूप मे परिणत हो चुका था।

माता-पिता अपने पुत्र की धार्मिक उन्नति देख कर बडे ही प्रसन्न थे। उन्हे क्या पता था कि आज का यह बालक भविष्य मे साधुसमाज का अग्रणी नेता बनेगा। श्री तेजसिहजी तो उसकी दिव्य प्रतिभा से इतने प्रभावित थे कि निकट भविष्य मे वे उसे अपना उत्तराधिकार का सकल्प ही कर चुके थे। माता-पिता कुछ और सोच रहे थे। गुरु के मन मे कुछ और था और बालक धर्मदास के विचार कुछ और हो थे। वह तो धर्म के प्रभाव मे जनता को परिचित कराने के लिए ससार मे आया था।

एक नया पंथ

उन दिनो एक नये पथ का प्रचार बहुत बढ रहा था। इस पथ का नाम था 'पात्रिया मघ" इस पथ के ब्रह्मचारी लाल वस्त्र पहनते थे। भोजन के लिए हाथ मे एक पात्र रखने के कारण ही इमे लोग 'पात्रिया' कहने लगे थे। विक्रम सम्वत् १६६० माघ कृष्णा सप्तमी के दिन इस पथ की उत्पत्ति हुई थी। तत्कालीन 'सर्वानिया' गाँव मे श्री प्रेमचन्दजी और श्री श्रीमालजो

नामक दो विशिष्ट व्यक्ति इसके आद्य सस्थापक थे। लोकागच्छीय यति श्री कुवरजी से सघष होने के कारण ही यह नया पथ चलाया गया था।

इस पथ के अनुयायियो की यह मान्यता थी कि पचम-काल मे शुद्ध साधु व्रत नही निभाया जा सकता। जिस प्रकार १४ पूर्वों का ज्ञान विच्छेद हो गया है उसी प्रकार शुद्ध सयम का भी विच्छेद हो गया इस पथ मे साधु नही होते थे। इसके सभी प्रचारक श्रावक होते थे। इसी पथ के अग्रणी नेता श्री कल्याण-जा भाई एक बार विचरते हुए 'सरखेज' आये। यहाँ धर्मदास जी के जीवन पर उनका बडा गहरा प्रभाव पडा। इस समय तक उनका साधु बनने का दृढ सकल्प हो चुका था। किन्तु तत्कालीन यतियो के शिथिलाचार के कारण वे उनमे दीक्षित नही होना चाहते थे।

विवाह से इन्कार और शिष्यत्व स्वीकार

श्री धर्मदास जी की वैराग्य भावना का जब उनके पिता को पता चला तो उन्होने शीघ्र ही उन्हे वैवाहिक सम्बन्ध मे बाँधना चाहा। किन्तु आपने अपने पिताजी से स्पष्ट रूप मे कह दिया कि मै विवाह करना नही चाहता। मै तो आजीवन ब्रह्मचारी रह कर सयमी जीवन व्यतीत करना चाहता हू। माता-पिता ने आपको बहुत समझाया, पर आप अपने निश्चय से तिलमात्र भी इधर-उधर न हुए। अन्त मे अपने पिताजी की आज्ञा लेकर आप पोत्रिया सघ के श्री कल्याण जी के शिष्य बन गये। इस परम्परा मे अनुमानत आप दो वर्ष तक रहे। सयोगवश एक दिन आप श्री भगवती सूत्र के २१ वे शतक के तीसरे उद्देशक का पाठ पढ रहे थे। उसम स्पष्ट रूप से भगवान् की यह उद्घोषणा थी कि—

यह शासन भगवान् के निर्वाण के अनन्तर २१००० वर्ष तक चलेगा।

शास्त्र का प्रमाण मिल जाने पर पात्रिया-संघ की मान्यता से उनका विश्वास हट गया। अब वे पंच महाव्रतधारी मुनि बनना चाहते थे।

दीक्षाव्रत धारण

इन्ही दिनो मे अहमदाबाद मे श्री कहान जी ऋषि अपने पूज्य गुरुदेव श्री सोम जी ऋषि के साथ पधारे। जिनवाणी के रसिक श्री धर्मदास जी नित्य प्रति उनका व्याख्यान सुनने जाया करते थे। एक दिन श्री कहान जी ऋषि के मुख से निरयावलिका सूत्र के तीसरे वर्ग का उपदेश सुनकर वे गद्गद् हो उठे। उनका आन्तरिक वैराग्यभाव रोमरोम मे मुखरित हो उठा। पूज्य श्री सोमजी ऋषि के सन्मुख उन्होने अपने दीक्षा ग्रहण करने के भाव व्यक्त किये किन्तु मान्यतासम्बन्धी कुछ विचार भेद के कारण दीक्षा न हो सकी। अत मे उन्होने अपने माता-पिता तथा अपने शिक्षागुरु श्री तेज-सिंह जी यति से परामर्श लिया। जब उन्हे सब ओर का समर्थन प्राप्त हो गया तो विक्रम सम्वत् १७१६ की आश्विन शुक्ला ११ सोमवार के दिन अहमदाबाद की बादशाह-बाडी मे स्वयमेव दीक्षित हो गये। यह दीक्षाव्रत आपने अष्टम तप करके स्वीकार किया था। तप समाप्त होने पर आप उसके पारणे के लिए सहसा एक कुम्हार के घर पधार गये। कुम्हारी का मन उस दिन किसी कारण से अशान्त था। उसने आवेश मे आकर मुनि के पात्र मे राख डाल दी। श्री धर्मदास जी राख लेकर अपने स्थान पर आ गये और उस राख को छाछ में घोलकर शांतिपूर्वक पी गये।

दूसरे दिन उन्होने यह सब वृत्तान्त अहमदाबाद मे विराजमान

महान् क्रियोद्धारक श्री धर्मसिंह जी म० से कहा। उत्तर मे पूज्य श्री धर्मसिंह जी ने कहा कि जिस प्रकार राख तुम्हारे पात्र मे फैल गई थी, इसी प्रकार एक दिन तुम्हारा श्रमण-परिवार चारो ओर फैल जायेगा।

यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि कुछ पट्टावलियो मे श्री धर्मसिंह जी महाराज की अनुमति से आपके स्वय दीक्षित होने के प्रमाण मिलते है। जयतारण की पट्टावली मे श्री जीवराज जी म० के पास दीक्षा लेने का निर्देश है। कुछ पट्टावलियो मे लिखा है कि आपने श्री कहानजी ऋषि के पास शास्त्राभ्यास किया था, किन्तु मान्यता-भेद के कारण उनके पास दीक्षित नही हुए। श्री कहान ऋषिजी पूज्य श्री सोम ऋषि के शिष्य थे। उनकी दीक्षा श्री लवजी ऋषिजी के स्वर्गवास के बाद मानी जाती है। श्री लवजी ऋषि के साथ उनकी चर्चा के प्रमाण भी मिलते है। इससे ऐसा लगता है कि पीछे से किसी भ्रातिवश लवजी ऋषि के स्थान पर श्री कहान जी ऋषि का नाम जोड दिया गया। अत श्री धर्मदासजी एवं श्री लवजी ऋषि के साथ चर्चा होना ही अधिक सगत है। यह भी कहा जाता है कि श्री धर्मदास जी के साथ १७ अन्य पुरुषों ने भी दीक्षा ली थी। कही-कही तीन और कही-कही सात पुरुषो के दीक्षित होने का उल्लेख मिलता है।

श्रमण-संघ का नेतृत्व

दीक्षा ग्रहण करने के बाद कुछ समय तक आप सौराष्ट्र मे ही धर्म प्रचार करते रहे। यहाँ आपने सैकडो प्राणियो को शुद्ध श्रमण-परम्परा का अनुयायी बनाया। कितनेही मुमुक्षुओ ने आपकी सत्प्रेरणा से शुद्ध साधु व्रत स्वीकार किये। स्वल्प काल मे ही आपका धर्म-प्रचार एक व्यापक रूप ले गया। सौराष्ट्र से विहार

करके आप मालवा प्रदेश मे पधारे। यहाँ पर भी आपके प्रचार को बड़ी सफलता मिली। इस समय तक आपके अनुयायियो का एक सुगठित सघ बन चुका था। आपकी प्रचार-कुशलता तथा शुद्ध सयम मे दृढता देखकर श्री सघ ने आपको मालवा के पाट नगर उज्जयिनी मे विक्रम सम्वत् १७२१ माघ शुक्ला पचमी के दिन संघ के पूज्य पद पर स्थापित कर दिया। इसके बाद आप पूरे ३८ वर्ष तक आगमानुकूल अपना धर्म-प्रचार करते रहे। गुजरात, मालवा, मेवाड, मारवाड, कच्छ और झालावाड आदि अनेक प्रदेशो मे विचरण करके आपने भगवान् महावीर के सिद्धान्तो का प्रचार किया। मारवाड मे श्री धन्नाजी और धार में श्री रामचन्द्रजी जैसे विशिष्ट व्यक्तियो ने आपके चरणो मे दीक्षित होकर आपके धर्म-प्रचार मे पूरी शक्ति के साथ सहयोग दिया। सघ-व्यवस्था मे आप बडे ही कुशल थे। यही कारण था कि अनेको प्रातो के मुनिराज और श्रावक आपकी एक छत्र-छाया मे रह कर सुव्यस्थित रूप से अपने अपने कर्त्तव्यो का पालन करते रहे।

प्रचार और प्रभाव

पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज ने अपने जीवन मे प्रचार को विशेष महत्त्व दिया। उनकी सयम-साधना बडी कठोर थी। जिन-वाणी के प्रचार मे उन्होने अपना सर्वस्व लगा दिया था। एक बार जो भी उनके सम्पर्क मे आ जाता था, वह शिष्यत्व ग्रहण करके जाता था। उनकी प्रचार-साधना आदर्श थी। पूज्य श्री धर्मसिंह जी महाराज की, की हुई भविष्यवाणी उस समय सचमुच सत्य होगई जब पूज्य श्री धर्मदास जी का विशुद्ध प्रचार थोडे ही समय मे बडे वेग के साथ भारत के अधिकाश भागो मे फैल गया। उनके प्रभाव मे एक आकर्षण था। उनका व्यक्तित्व

अनुपम था। सब उनके प्रभाव से प्रभावित थे। उनका स्वभाव बडा ही मिलनसार था। वे जिस किसी के सामने अपने पक्ष की स्थापना करते थे। उस समय बडे ही विवेक से काम लेते थे। श्री लवजी ऋषिजी महाराज और श्री धर्मसिंहजी महाराज के साथ तत्त्व-चर्चाएँ करते समय आपने जिस निर्दोष धार्मिक स्नेह का परिचय दिया था, उसे स्थानकवासी समाज कभी भी नही भुला सकता।

शिष्य-परम्परा और संघ-व्यवस्था

तत्कालीन सभी महापुरुषो से पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के शिष्यो की संख्या अधिक थी। उनके ६६ शिष्य थे, जिनमे अनेक मुनिराज तो संस्कृत और प्राकृत भाषा के माने हुए पण्डित थे। पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज का व्यक्तित्व सर्वतोमुखी था। इसीलिए उनका श्रमण और श्रावक परिवार आशातीत संख्या मे पहुँच चुका था। संघ-व्यवस्था की ओर उनका प्रारम्भ से ही लक्ष्य रहता आया था। वे सुव्यवस्थित धर्म-प्रचार के दृढ समर्थक थे। अपनी धर्म-प्रचार-योजना को व्यवस्थित तथा सुसंगठित रूप देने के लिए आपने धार मे अपने शिष्यो तथा प्रशिष्यो का एक सम्मेलन किया। इस सम्मेलन मे आपने अपने समस्त शिष्य-परिवार को विक्रम सम्वत् १७७२ चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन अपने प्रमुख २२ शिष्यो के उत्तरदायित्व मे सौप दिया। यह विभाजन केवल व्यवस्था की दृष्टि मे ही किया गया था। इसके पीछे किसी भी प्रकार की साम्प्रदायिक भावना नही थी। आगे चलकर विभक्त श्रमण-समाज बाइस सम्प्रदाय के रूप मे परिणत हो गया। कही-कही पर इनके लिए 'बाइस टोला" शब्द का प्रयोग भी किया जाने लगा।

कुछ इतिहासकारो का मत है कि यह विभागीकरण पूज्य श्री धर्मदास जी म के स्वर्गवास के बाद हुआ था। क्योकि पूज्य श्री का स्वर्गवास वि स १७७२ से पूर्व हो चुका था। इसके साथ-साथ यह भी उल्लेखनीय है कि पूज्य श्री के बाद १७६४ मे श्री मूलचन्द जी को पूज्य पदवो प्रदान की गई। इन सब प्रमाणो से यही मत अधिक उपयुक्त तथा इतिहास सम्मत लगता है कि पूज्य श्री धर्मदास जी म के स्वर्गवास के बाद उनके विद्वान् शिष्यो ने पूज्य श्री मूलचन्दजो महाराज के नेतृत्व मे अपने गुरु के समस्त शिष्य परिवार को २२ समुदायो मे विभाजित कर लिया। गुरु के होते हुए शिष्यो का २२ समुदायो मे विभक्त होना तथा उनकी उपस्थिति मे ही उनके शिष्य का पूज्यपद ग्रहण करना किसी भी दृष्टि से उचित नही लगता।

बाईस संगठनों के नाम

(१) पूज्य श्री धर्मदास जी म० (२) पूज्य श्री धनराज जी म
(३) पूज्य श्री लालचन्द जी म (४) पूज्य श्री हरिदास जी म.
(५) पूज्य श्री जीवाजी म (६) पूज्य श्री बडे पृथ्वीराजजी म,
(७) पूज्य श्री छोटे पृथ्वीराजजी (८) पूज्य श्री छोटे हरिदासजी म.
(९) पूज्य श्री मूलचन्दजी म (१०) पूज्य श्री ताराचन्दजी म
(११) पूज्य श्री प्रेमराजजी म. (१२) पूज्य श्री खेतशी जी म
(१३) पूज्य श्री पदार्थ जी म. (१४) पूज्य श्री लोकमन जी म.
(१५) पू० श्री भवानीदासजी (१६) पू० श्री मलूकचन्द्र जी म.
(१७) पू पुरुषोत्तमदासजी म (१८) पू० श्री मुकुटराम जी म.
(१९) पू० श्री मनोहरदासजी म (२०) पू० श्री गुरुसहायजी म.
(२१) पू० श्रीसमर्थ जी म (२२) पू० श्री बाघसिंह जी म

इन सभी सत-शिरोमणि मुनिराजो ने अपने-अपने सम्प्रदाय

की शिक्षा, और दीक्षासम्बन्धी व्यवस्था मे कोई कमी नही रखी थी। मुनिराजो के अनेक सघो मे विभक्त होकर धर्म-प्रचार करने से तत्कालीन श्रावक तथा साधु समाज को बडा भारी लाभ पहुँचा। वीर भगवान् के मुखारविंद से निकली हुई जिनवाणी गगा २२ धाराओ मे प्रवाहित होती हुई, भारत के कोने-कोने मे अपना सत्य सन्देश देने लगा।

आदर्श बलिदान

महापुरुषो का जीवन समूचे ससार के लिए आदर्श होता है। जिस प्रकार उनका जीवन सबके लिए महत्त्वपूर्ण होता है उसी प्रकार उनका मरण भी महत्त्वपूर्ण होता है। युग पुरुष पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज का जीवन जिस प्रकार ससार के सन्मुख सयम का आदर्श उपस्थित करता रहा, ठीक उसी प्रकार उनका देहावसान एक अनूठा आदर्श बन गया। अपने जीवन मे अन्तिम दिनो मे वे मालवा की भूमि मे विचर रहे थे। उन्ही दिनो उन्होने सुना कि धार नगरी मे एक मुनि ने आजीवन अनशन अर्थात् सथारा कर दिया है। अब उसकी भावना अपनी प्रतिज्ञा से पीछे हट रही है। वह अपनी प्रतिज्ञा को तोडना चाहता है।

पूज्य श्री जी ने यह समाचार सुनते ही धार नगरी में समाचार भिजवा दिया कि मेरे आने तक अपनी प्रतिज्ञा मे दृढ रहे। मैं शीघ्र ही पहुँच रहा हूँ। अनशनधारी मुनि की ओर से आश्वासन आते ही आपने धार नगरी की ओर विहार कर दिया। जैसे तैसे अनेक कष्टो को सहते हुए जल्दी से जल्दी धार नगरी मे पहुच गए। वहाँ जाकर उन्होने सर्वप्रथम उस मुनि को समझाया कि तुम्हे यह प्रतिज्ञा पहिले खब सोच समझकर ग्रहण

करनी चाहिए थी। अब प्रतिज्ञा लेली है तो उसे भग मत करो। किन्तु मुनि का साहस दूर हो चुका था। वह तो शीघ्र ही अपनी प्रतिज्ञा को भग करने पर उतारू था। पूज्य श्री जी के उपदेश का उसके मन पर कोई प्रभाव नही पडा।

पूज्य श्री जी दिनभर के थके हुए थे। रास्ते मे उन्हे बडी जोर की प्यास लगी, पर निर्दोष जल न मिल सका। जब से चले उन्होने आहार भी नही किया है। भूख और प्यास का परीसह अत्यन्त तीव्र होने पर भी वे कर्तव्य-पालन की बात कह रहे है। सत मर्यादा का उपदेश कर रहे है। किन्तु पत्थर पर पडी बून्द के समान मुनि पर कोई प्रभाव नही पडा रहा। अन्त मे उन्होने अपने आदर्श की रक्षा के लिए एक आदर्श मार्ग अपनाया अपने शिष्य श्री मूलचन्द जी महाराज को अपने श्रमण-सगठन का समस्त उत्तरदायित्व सौप दिया। धार नगरी के श्री सघ को अपनी भावना बता कर शीघ्र ही उस मुनि के स्थान पर स्वय सथारा ग्रहण करके बैठ गए। उन्होने भयकर सकल्प किया किन्तु उनके मन मे जीवन के प्रति कोई मोह नही था और मृत्यु मे कोई भय नही था। वे निर्भय धर्मयोगी थे।

अनशन मे स्वाध्याय, जप, तप कायोत्सर्ग आदि क्रियाएँ नियमित रूप से चलती रही। नित्य आलोचना करते समय तो वे बडे ही स्वस्थ दीखते थे। ज्यो ज्यो शरीर की शक्ति कम होती जाती था त्यो त्यो उनका आत्म-तेज विशेष रूप से चमकता जाता था। उनके मन मे अपनी प्रतिज्ञा के प्रति कोई सकल्प विकल्प नही थे। अन्त मे विक्रमसम्वत् १७५६ आषाढ शुक्ला पञ्चमी की सध्या को समाधि पूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया। अपने आदर्श धर्म के पवित्र आदर्श की रक्षाके लिए किया गया उनका आत्म-बलिदान सदा के लिए इतिहास मे अमर हो गया। वे धन्य थे।

उनका जीवन धन्य था। उनका प्रत्येक क्षण धन्य था। वह धार नगरी भी युगो-युगो के लिए धन्य हो गई, जहाँ उनका प्रचार हुआ, सघव्यवस्था हुई तथा औरो मे महाप्रचार हुवा। उनके उपकार महान् थे। आज देश के कोने कोने मे फैली हुई श्वे स्था. जन परम्परा के वे मूल जनक थे। वे सही अर्थो मे भविष्य द्रष्टा थे। उन्होने जो कुछ कहा है उस पर चलना और उन्होने जो कुछ किया है उसे करना हम सबका यथासाध्य कर्त्तव्य है।

परिस्थितियाँ और उनका सुधार

पूज्यश्री धर्मदासजी महाराज का जन्म ऐसे समय मे हुआ था जब हमारे जैन समाज मे यतिवाद और मूर्तिवाद का सघर्ष बडे जोरो से चल रहा था। एक तरह से वह युग विश्वासो के टकराव का युग था। अधिकाश समाज यतिवर्ग के हाथो की कठपुतली बना हुआ था। यतियो का मन्त्र, तन्त्र, और ज्योतिष आदि विद्याओ के कारण तत्कालीन सामत कुलो मे बडा भारी प्रभाव था।

कही तपगच्छ और खरतरगच्छ टकरा रहे थे, तो कही दिग॰म्बर तारणपन्थ, बीसपन्थ और तेरह पन्थ का सघर्ष चल रहा था। चारो ओर धर्म, धर्म-शास्त्र, और साहित्य के नामपर एक अजीब द्वद मच रहा था।

इसी समय मे जब एक तरफ गणी यशोविजय जी जैन साहित्य को एक नयी दिशा दे रहे थे, और दूसरी ओर पूज्य श्री धर्मसिंह जी महाराज प्रामाणिक शास्त्रो की छँटनी करके उन पर सरल शास्त्रीय टिप्पणियाँ एव हुण्डिया लिख रहे थे। इन शास्त्रीय टिप्पणियो (टब्बो) ने समाज मे एक ऐसी नव चेतना

फूँकदी कि जनता का विसुप्त विश्वास जागृत होने लगा। तभी इधर पूज्य श्री जी के शिष्यो ने अपने गुरुदेव के धर्म-प्रचार मे पूरा पूरा साथ दिया, उनकी आध्यात्मिक-वाणी ने लोगो के कान खोल दिए। सारे सौराष्ट्र गुजरात, अहमदाबाद, पजाब, मालवा, मारवाड तथा मेवाड आदि प्रमुख प्रदेशो मे धर्म जागृति का विगुल बज उठा। यतिवर्ग के पैर उखड गये। जनता मे त्याग की विजय हुई। धर्म-पिपासु जनता ने पूज्य श्री जी को अपने धर्म-गुरु के रूप मे स्वीकार कर लिया। अब क्या था ? इस आदर्श गुरु के शिष्यो की सख्या दिनो दिन बढती ही चली गई। इन्ही शिष्यो ने आगे चलकर समूचे श्रमण-परिवार को २२ विभागो मे बांट कर देश के कोने २ मे अपना धर्म-प्रचार आरम्भ कर दिया। आज हमारी समाज का जो भी कुछ रूप दृष्टिगोचर हो रहा है उसमे परमादरणीय पूज्य श्री धमदास जी महाराज का कृपा का विशेप हाथ है। सच तो यह है कि यदि वे न होते तो न जाने समाज की क्या दशा होती ? उनका जीवन समूचे समाज का परिष्कार कर गया। उनका त्याग, उनका तप, और उनका आत्म-बलिदान युगो-युगो के लिए धन्य हो गया। उन्हे अपने जीवन मे जो कुछ करना था कर गये। अब उनके बताये मार्ग को सुरक्षा और उसपर चलने का हम सबका कर्त्तव्य है।

क्रियोद्धारक श्री हरजी ऋपिजी महाराज

श्री हरजी ऋषिजी म० अपने समय के एक महान् युगप्रवर्तक सत हुए है। ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध न होने के कारण उनका जीवन जन-साधारण के सन्मुख नही आ पाया है। श्रमण-परम्परा मे श्री हरजो ऋषि के नाम के कई मुनि हुए है। इसो कारण इतिहासकार उनके विषय मे अब तक एक मत नही हो पाये है। कुछ इतिहासकारो का मत है कि श्री जीवराज जी महाराज के

साथ निकले हुए पाँच महापुरुषो मे जो हरजी स्वामी हुए है वे ही क्रियोद्धारक श्री हरजी ऋषि के नाम से प्रसिद्ध हुए। कुछ विद्वान् कहते है कि पाँचवे क्रियोद्धारक श्री हरजी ऋषि ने विक्रम सम्वत् १७८५ मे क्रियोद्धार किया था, अत यह जीवराज जी के हरजी से भिन्न है। श्री हरजी ऋषि का इतिहास कुछ भी रहा हो, पर उनके विषय मे जो भी सामग्री आज उपलब्ध है, उसके आधार पर यह तो निश्चित ही है कि ये महापुरुष बडे ही दीर्घ तपस्वी तथा आगम-ज्ञाता थे। तत्कालीन यति-समाज से आपका काफी सघर्ष रहा था। आपने क्रियोद्धार से पूर्व कुछ प्रश्न भी यति-वर्ग के सम्मुख रखे थे। किन्तु क्रियाशिथिल यति वर्ग उनके प्रश्नो का कोई भी उचित उत्तर न दे सका। श्री हरजी ऋषिजी महाराज एक जाति-सम्पन्न महात्मा थे। उ हे साधुता के नाम पर शिथिलाचार से अपार घृणा थी। वे शुद्ध संयम की साधना चाहते थे। उनके मन मे आत्म-कल्याण की उत्कट भावना जाग चुकी थी। यति-समाज मे रहना अब उनके लिए असभव हो चुका था। वे दिखावटी बाह्य आडम्बरो से मुक्त होना चाहते थे।

पृथक् क्रियोद्धार क्यों ?

श्री हरजी ऋषिजी महाराज के पूर्व से ही क्रियोद्धार की परम्परा जाग चुकी थी। उनसे पहिले अनेक महापुरुषो ने अपना क्रियोद्धार कर लिया था। उन सबकी विस्तृत शिष्य-परम्परा अनेक प्रदेशो मे अपना धर्म-प्रचार कर रही थी। ऐसी स्थिति मे यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि शुद्ध क्रियाशील साधुओ के होते हुए स्वय सयम धारण करना कहाँ तक उचित है। इस विषय मे केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जिस प्रदेश मे जिस किसी महापुरुष ने क्रियोद्धार किया होगा, दूसरे क्रियोद्धारक महापुरुष किसी कारणवश उन तक नही पहुँच पाये होंगे। दूसरी

बात परिस्थिति की भी विवशता होती है। शीघ्र ही क्रियोद्धार करने की परिस्थिति मे सच्चे सतो की खोज मे निकलना, किसी भी मुमुक्षु के लिये सभव नही होता। यहाँ इस विषय मे एक बात बता देनी और भी आवश्यक है कि उन दिनो क्रियोद्धारक महानुभावो मे कठिन सयम-साधना की एक होड सी लग रही थी। प्रत्येक क्रियोद्धारक अधिक से अधिक कठोर साधना करना चाहता था। दूसरे क्रियोद्धारको के पास जाकर दीक्षा लेने मे उमे उनके साथ चलना पडता था। ऐसी स्थिति मे आगे बढ़ने की प्रगति शिथिल हो जाती थी। क्रियोद्धार की भावना-गति बडी तीव्र होती है। पृथक् पृथक् अपना क्रियोद्धार करने से अपने अपने प्रारम्भ किये हुए कार्य को आगे बढाने की सबको पूरी लगन रहती है। आध्यात्मिकता की हो, सदा ही लाभदायक होती है।

एक विशेष गुण

पिछले सभी क्रियोद्धारको का विशेषतया क्रिया के उद्धार का ही लक्ष रहा है। श्री हरजी ऋषिजी महाराज मे क्रिया-उद्धार के साथ-साथ श्रमण-सस्था को सगठित रूप देने का भी विशेष गुण था। वे चाहते थे कि सभी शुद्ध साधनाशील श्रमण यदि सगठित हो कर आगम-विरुद्ध मान्यताओ से टक्कर ले तो आसानी से सफलता मिल सकती है। किसी अश मे उनका यह प्रयत्न सफल भी हुआ, पर उसे जितनी सफलता मिलनी चाहिए थी उतनी न मिल सकी। आपस मे आचरणसम्बन्धी अनेक विचार-भेद होने के कारण अन्य सगठनो के सत सामूहिक रूप से एकत्रित न हो सके। पर इसका यह अर्थ नही था कि वे आपस मे एक दूसरे का विरोध करते थे। सभी प्रेम से मिलते थे। वार्त्तालाप करते थे। आवश्यकता होने पर धार्मिक प्रचार मे एक दूसरे की सहायता भी करते थे। धार्मिक रूप से उनमे कोई मत-भेद नही था। सबका लक्ष्य

एक ही ओर था। मार्ग भिन्न-भिन्न होने पर भी सबका आदर्श एक ही था। सभी सत्पथ पर चलते थे और दूसरो को सत्पथ पर चलने की प्रेरणा देते थे।

आगमों के विशेष मर्मज्ञ

शास्त्र का कथन है कि क्रिया-हीन ज्ञान किसी काम का नहीं होता। केवल मात्र जानकारी से किसी का कल्याण नही हो सकता। सत्य विश्वास और सत्य ज्ञान के साथ-साथ सत्य आचरण की जीवन मे अत्यन्त आवश्यकता रहती है। प्रत्येक साधना मे आचरण का मुख्य महत्त्व माना गया है। यदि वह आचरण ज्ञानसहित हो तो फिर कहना ही क्या ? श्री हरजी ऋषिजी महाराज मे दोनो ही गुण विद्यमान थे। वे सफल क्रियावान् तो थे ही साथ मे पूर्ण विद्वान् भी थे। जिनवाणी के सूक्ष्म तत्त्वो का उन्हे बडा ही विशद ज्ञान था। प्राकृत भाषा के साथ २ उन्होने सस्कृत का भी अध्ययन किया था। उन्होने तत्कालीन साधु समाज की भलाई के लिए अनेक बोल-मर्यादाएँ भी निर्धारित की थी। उनका अनुशासन बडा ही कठोर होता था। अनेक साधु महात्माओ ने उनसे शास्त्र-ज्ञान प्राप्त किया था। अपने विरोधियो को सदा वे प्रेम से ही समझाते थे। क्रोध तो मानो उनको छू ही नही गया था। पूज्यवर श्री हरजी ऋषि की सम्प्रदाय आगे चलकर 'कोटा सम्प्रदाय' के नाम से अधिक प्रसिद्ध हुई। इस सम्प्रदाय मे उन दिनो २६ महापण्डित मुनिराज और एक परम पण्डिता साध्वीजो थी। इस प्रकार सत्ताईस साधु तथा साध्वीजी का परिवार था। इस परिवार मे श्री लालचद जी महाराज एक परम त्यागी महापुरुष हुए है।

बात परिस्थिति की भी विवशता होती है। शीघ्र ही क्रियोद्धार करने की परिस्थिति मे सच्चे सतो की खोज मे निकलना, किसी भी मुमुक्षु के लिये सभव नही होता। यहां इस विषय मे एक बात बता देनी और भी आवश्यक है कि उन दिनो क्रियोद्धारक महानुभावो मे कठिन सयम-साधना की एक होड सी लग रही थी। पत्येक क्रियोद्धारक अधिक से अधिक कठोर साधना करना चाहता था। दूसरे क्रियोद्धारको के पास जाकर दीक्षा लेने मे उसे उनके साथ चलना पडता था। ऐसी स्थिति मे आगे बढने की प्रगति शिथिल हो जाती थी। क्रियोद्धार की भावना-गति बडी तीव्र होती है। पृथक् पृथक् अपना क्रियोद्धार करने से अपने अपने आरम्भ किये हुए कार्य को आगे बढाने की सबको पूरी लगन रहती है। आध्यात्मिकता की हो सदा हो लाभदायक होती है।

एक विशेष गुण

पिछले सभी क्रियोद्धारको का विशेषतया क्रिया के उद्धार का ही लक्ष रहा है। श्री हरजी ऋषिजो महाराज मे क्रिया-उद्धार के साथ-साथ श्रमण-सस्था को सगठित रूप देने का भो विशेष गुण था। वे चाहते थे कि सभी शुद्ध साधनाशोल श्रमण यदि सगठिन हो कर आगम-विरुद्ध मान्यताओ से टक्कर ले तो आसानी से सफलता मिल सकती है। किसो अश मे उनका यह प्रयत्न सफल भो हुआ, पर उसे जितनी सफलता मिलनी चाहिए थी उतनी न मिल सकी। आपस मे आचरणसम्बन्धी अनेक विचार-भेद होने के कारण अन्य सगठनो के सत सामूहिक रूप से एकत्रित न हो सके। पर इसका यह अर्थ नही था कि वे आपस मे एक दूसरे का विरोध करते थे। सभी प्रेम से मिलते थे। वार्त्तालाप करते थे। आवश्यकता होने पर धार्मिक प्रचार मे एक दूसरे की सहायता भी करते थे। धार्मिक रूप से उनमें कोई मत-भेद नही था। सबका लक्ष्य

अतिरिक्त समस्त महापुरुषो के मगल स्मरण से ही हम अपने इस प्रकरण का शुभारम्भ कर रहे है।

पूज्य श्री जीवराजजी महाराज की परम्परा

प्रथम क्रियोद्धारक श्री जीवराज जी महाराज अपने समय के प्रसिद्ध शुद्ध सयमी मुनिराज हुए है। आपने अपने प्रचार मे मुख्यत तीन बातो पर विशेष बल दिया था। (१) बारह अग सूत्र, बारह उपाङ्ग सूत्र, चार मूल सूत्र और चार छेद सूत्र य बत्तीस आगम ही प्रामाणिक है (२) मुख वस्त्रिका मुख पर बांधना और रजोहरण सर्वदा साथ रखना प्रत्येक मुनि का कर्त्तव्य है (३) मूर्तिपूजा अनावश्यक है।

ये तीनो ही धार्मिक सिद्धान्त हमारे धर्म के मूल विश्वास है। आज हम स्थानकवासी समाज मे जो धार्मिक व्यवस्था का रूप देख रहे हैं वह इन्ही महात्मा का कृपाप्रसाद है। वैसे यह धार्मिक व्यवस्था अनादि काल से चली आ रही है। समय के प्रभाव से जब जब इसमे कुछ शिथिलता आई तब तब महापुरुषो ने क्रियोद्धार करके उसे पुन सुव्यवस्थित रूप दिया। श्री जीवराज जी महाराज सत्तरहवी शताब्दी के प्रथम धर्मसुधारक हुए है। उनकी शिष्य-परम्परा बडी विशाल रही है। उसमे अनेक त्यागी, तपस्वी तथा विद्वान् सत हुए है। उन सब का पूर्ण परिचय देना तो सभव नही है, यहां केवल कतिपय विशिष्ट विभूतियो का ही परिचय दिया जा रहा है। इन विभूतियो के परिचय से धर्म-जिज्ञासु जनता को श्री जीवराज जी महाराज के परम पुनीत गौरव का ज्ञान अवश्य ही हो सकेगा।

प्रकरण सातवाँ

महापुरुषों की परम्परा

महापुरुष समूचे संसार की सम्पत्ति होते है। उनका जीवन समस्त मानव-समुदाय के हित के लिए होता है। प्रत्येक महापुरुष एक 'कर्त्तव्य संहिता' होता है। उसके जीवन का प्रत्येक दिन अनेक सार-गर्भित शिक्षाओ से परिपूर्ण एक पृष्ठ के समान होता है प्रत्येक दिन का प्रत्येक क्षण एक आदर्श शिक्षा-प्रद शब्द होता है। महापुरुषो की परम्परा युगो-युगो की परम्परा है। वह पहिले थी, आज है और भविष्य मे भी रहेगी। भारतीय महापुरुष सूर्य के समान जगत्प्रकाशक रहे है। जैसे सूर्य एक पूर्व दिशा से ही जन्म लेता है किन्तु उसके प्रकाश से सारा ससार आलोकित हो उठता है। भूत काल मे हुए समस्त महापुरुषो का क्रमिक वर्णन करना तो किसी के वश की बात नही है। उनका इतिहास कालगणना की परिधि से बाहर है। अत हम इस प्रकरण मे केवल कतिपय महापुरुषो की परम्परा मे से कुछ विशिष्ट व्यक्तित्वो का ही वर्णन करेगे। इनके अतिरिक्त और भी जो महापुरुष हुए है वे भी हमारे इतिहास की विशिष्ट विभूतियाँ हैं। श्रद्धा और भक्तिपूर्वक उनका स्मरण करना हमारी सांस्कृतिक परम्परा का कर्त्तव्य है। अत वर्णित महापुरुषो के

श्री उत्तमचन्द्राचार्य की परम्परा मे श्री रत्नचन्द्र जी म० तथा श्री मजुलाल जी म० हुए है।

पूज्यपाद श्री मंजुलाल जी महाराज

आपका जन्म "चन्द्रजी का गुडा" नामक ग्राम मे हुआ था। जाति से आप पल्लीवाल थे। लघु वय मे ही आपने दीक्षा धारण कर ली थी। आपकी माताजी तथा बहन भी जैन श्रमणी-सघ मे दीक्षित हो गई थी। स्वमत तथा परमत के आप पूर्ण विद्वान् थे। ज्योतिष विद्या मे उन दिनो आपका अद्वितीय स्थान माना जाता था। सस्कृत प्राकृत के साथ-साथ आप अग्रेजी, फारसी और अरबी के भी विशिष्ट विद्वान् थे। आपके असाधारण पाण्डित्य से प्रभावित हो कर ही तत्कालीन अलवर-नरेश महाराजा मगल सिह ने आपको 'राज्यपण्डित' की उपाधि से अलकृत किया था।

शास्त्रार्थ-कला मे तो उन दिनो आप की धाक मची हुई थी। आपका प्रत्येक तर्क अकाट्य होता था। कहते हैं—एक बार श्राद्ध के विषय पर शास्त्रार्थ करते हुए एक पण्डित ने कहा कि जैसे मनीआर्डर-द्वारा भेजा हुआ रुपया यथास्थान पहुँच जाता है, उसी प्रकार श्राद्ध का अन्न भी पितरो को मिल जाता है।

विलक्षणबुद्धि श्री मजुलाल जी महाराज ने तुरन्त ही भरी सभा मे प्रश्न कर दिया कि पण्डितो के पास उस मनीआर्डर की रसीद भी है या नही? इस प्रश्न से पण्डित लोग निरुत्तर हो गए। यह शास्त्रार्थ अलवर मे हुआ था। मुनि श्री जी के युक्तिवाद से महाराजा मगलसिह जी बडे प्रसन्न हुए। उन्होने महाराज श्री को उपहार देना चाहा, पर त्यागी मुनिराज ने लेने मे इन्कार कर दिया।

पूज्यपाद श्री धनजी महाराज

पूज्य श्री जीवराज जी महाराज के शिष्यो मे दो शिष्यो के नाम प्रमुख रूप से आते है। सर्वश्री धन जी तथा श्री लाल चद जी। श्री धनजी स्वामी बडे ही प्रभावक महा सत हुए है। श्री जीवराज जी के स्वर्गवास के बाद आपने ही उनके पद के कार्य भार को समुचित रूप से सभाला था। आपके विषय मे एक किवदन्ती है कि एक बार बीकानेर की महारानी ने आपसे राज्य मे पधारने की प्रार्थना की थी। आप जब बीकानेर पधारे तब विरोधियो ने द्वार पर ही आपको रोक दिया। पास ही मे श्मशान की स्मारक छतरियाँ थी। वही आप अपने शिष्य-समुदाय के साथ ठहर गये। यहाँ आपको आठ दिन निराहार हो गए। नवमे दिन किसी तरह ये समाचार महारानी जी तक पहुँच गये। महारानी जी ने स्वय आकर मुनिराजो से क्षमा माँगी और बडे समारोहपूर्वक आपका नगर-प्रवेश करवाया। यहाँ आपके पवित्र उपदेशो से अनेक भव्य आत्माओ ने आत्मकल्याण का मार्ग स्वीकार किया। कुछ अनुवदन्तियो और पवित्र नाम के अतिरिक्त आप का विशेष परिचय उपलब्ध नही है।

आपके बाद श्री विष्णुजी तथा श्री मनजी क्रमश इस सम्प्रदाय के पूज्य हुए। तत्पश्चात् जयपुर राज्य के खण्डेलवाल जैन दिगम्बर परिवार मे से श्री नाथुराम जी हुए। आप शास्त्रार्थ-कला मे बडे ही कुशल थे। श्री लक्ष्मीचन्द्र जी और श्री रायचन्द्र जी ये आपके दो शिष्य हुए है। लक्ष्मीचन्द्र जी के शिष्य छत्रपाल जी तथा उनके दो शिष्य राजा रामाचार्य और उत्तमचन्द्राचार्य हुए। राजा रामाचार्य की परम्परा मे श्री रामलाल महाराज तथा श्री फकीरचन्द्र जी म० हुए हैं। धर्मोपदेष्टा श्री फूलचन्द्र जी महाराज श्री फकीरचन्द्र जी म० के ही शिष्य है।

काव्य, "आचार्य सम्राट्" आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं। स्वभाव से आप बडे ही मिलनसार है। आपकी व्याख्यानशैली बडी ही रोचक है। जनता मे धार्मिक श्रद्धा जागृत करना आपका मुख्य कार्य है, आप इतिहास के भी बडे प्रेमी है। आपके पास अनेक ऐतिहासिक सामग्रियाँ सगृहीत है। श्री जीतमल जी महाराज की कला-कृतियो के सुन्दर-सुन्दर चित्र आपके पास सुरक्षित है। इन चित्रो से पता चलता है कि पिछली शताब्दियो का मुनिसमाज धर्मप्रेमी होने के साथ-साथ कलाप्रेमी भी रहा है।

श्री शीतलदास जी की परम्परा मे श्री देवीचन्द्र जी, श्री हीरा चन्द्र जी, श्री पन्नालाल जी, श्री नेमिचन्द्र जी, कजोडीमल जी और श्री छोगालाल जी आदि दश सत हुए है। श्री छोगालाल जी के श्री मोहन मुनि जी महाराज है।

श्री गगाराम जी महाराज की परम्परा मे श्री जीवनराम जी म०, श्री चन्द्रजी म०, श्री जवाहर लालजी म०, श्री माणकचद जी म० और श्री पन्नालाल जी महाराज हुए। जगल देश पजाब के लोकप्रिय प्रसिद्ध कवि श्री चन्दन मुनिजी महाराज श्री पन्ना-लालजी म० के शिष्य हैं। प्रसिद्ध मूर्तिपूजक सत श्री आत्मारामजी (विजयानन्द सूरि) पहिले इसी परम्परा के सत श्री जीवनराम जी के शिष्य थे। विपरीत श्रद्धा होने के कारण बाद मे उन्हे सम्प्रदाय से अलग कर दिया गया था।

श्री दीपचन्द्र जी महाराज के श्री स्वामीदास जी और मलूक चन्द्र जी ये दो शिष्य हुए। श्री स्वामीदासजी की परम्परा मे उग्रसेन जी, घासीराम जी, कनीराम जी, ऋषिराय जी, रगलाल जी और फतहचन्द्र जी म० हुए।

आप त्यागी तो थे ही साथ ही साथ विद्वान् कवि भी थे। 'शान्ति प्रकाश' ग्रंथ आपके पाण्डित्य का जीता-जागता प्रमाण है। श्री मोतीलाल जी महाराज आपके प्रमुख विद्वान् शिष्य थे।

श्री रामचन्द्र जी म० के शिष्य श्री रतिराम जी तथा इनके शिष्य श्री नन्दलाल जी म० के श्री जोकीराम जी, श्री किशनचंद जी तथा श्री रूपचन्द्र जी म० ये तीन शिष्य हुए।

श्री जोकीराम जी के बाद श्री चनराम जी और घासीलाल जी म० हुए। श्री घासीलाल जी के श्री गोबिन्दराम जी, श्री जीवनरामजी और श्री कुन्दन लालजी ये तीन शिष्य हुए। वर्तमान श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के प्रसिद्ध संत, सर्व धर्म सम्मेलन के प्रेरक तथा अहिंसा-शोध-पीठ जैसी विशाल संस्था के संस्थापक श्री सुशील कुमार जी महाराज श्री गोबिन्द रामजी के शिष्य श्री छोटेलाल जी महाराज के शिष्यरत्न हैं।

श्री जीवराज जी म० के दूसरे शिष्य श्री लालचन्द्र जी के--श्री अमरसिंह जी, शीतलदास जी, गंगाराम जी और दीपचन्द्र जी ये चार शिष्य हुए। श्री अमरसिंह जी की परम्परा में क्रमश: श्री तुलसीराम जी, श्री सुजानमलजी, श्री जीतमल जी, ज्ञानमल जी, पूनमचन्द्र जी, जेठमल जी, नैनमल जी, दयालचंद जी और ताराचन्द्र जी हुए। श्री ताराचन्द्र जी के शिष्य श्री पुष्कर मुनिजी महाराज हैं।

श्री पुष्कर मुनिजी महाराज

आप जन्म से ब्राह्मण है। वि० सम्वत् १९८१ में आपने दीक्षा ग्रहण की। संस्कृत तथा प्राकृत आदि भाषाओं का आपको विशिष्ट ज्ञान है। आप लेखक, वक्ता और कवि भी हैं। "सूरि-

जी म० ने निभाया। ये दोनो ही सत आगम-साहित्य के द्भट विद्वान् थे।

श्री पन्नालाल जी म० आरम्भ से ही सुधारवादी रहे है। अहिंसा प्रचार तो आपके जीवन का मुख्य उद्देश्य है। जाति-सुधार के आपने अनेक महत्त्वपूर्ण काम किये है। आप शास्त्रो के सूक्ष्म तत्त्वज्ञ है। आपकी व्याख्यानशैली बडी ही आकर्षक है। स्वाध्याय के प्रति आपकी विशेष रुचि है। ज्योतिष विद्या के भी आप ज्ञाता है। वर्तमान श्रमण-सघ मे आपका एक विशेष स्थान है।

पूज्यश्री सुखलाल जी म० के बाद यह परम्परा दो धाराओ मे विभक्त हो गई। एक धारा के प्रमुख पूज्यश्री अभयराज जी हुए और दूसरी धारा के पूज्य श्री हरकचन्द्र जी हुए। इनके बाद दयालुचन्द्र लक्ष्मीचन्द्र और फिर श्री हगामीलाल जी महाराज का नाम आता है। श्री हरकचन्द्र जी के बाद इस परम्परा मे कोई आचार्य नही हुआ। सम्प्रदाय का समस्त उत्तरदायित्व मुख्य सतो के हाथो मे रहता आया है।

—x—

पूज्य श्री लवजी ऋषिजी म० की परम्परा

सत्रहवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे होने वाले क्रियोद्धारको मे पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म० का नाम प्रमुख रूप से आता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उन्हे महान् क्रियोद्धारक स्वीकार किया गया है। इनकी परम्परा मे अनेक प्रभावशाली, शास्त्रज्ञ और शास्त्रार्थकुशल महा मुनिराज हुए हैं। धर्मप्राण श्री लोकाशाह को शुद्ध साधुत्व की परम्परा को जागृत करने का श्रेय इन्ही महापुरुष को मिला था। विष पी कर समाज को अमृत का प्रसाद

श्री मलूकचन्द्र जी के शिष्य श्री नानकराम जी हुए। इनके बाद वि० स० १८३६ मे श्री निहालचन्द जी विक्रम स० १८५८ मे श्री वीरभान जी म० हुए। श्री वीरभान जी के बाद पूज्यश्री सुखलाल जी म० हुए। ये पुष्कर के पास किलागांव के निवासी थे। इनका गोत्र लुनावत था। वि० स० १८६१ भा० शु० १० को इनकी दीक्षा हुई थी।

पूज्य श्री वीरभान जी के शिष्य लक्ष्मणदासजी और उनके श्री मगनमल जी हुए। श्री मगनमल जी के श्री मोतीराम जी म० हुए। वर्तमान श्रमण सघ के प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज इन्ही के शिष्य हैं।

प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज

आपका जन्मस्थान 'कीतलसर' (डेगाना) है। जाति से आप माली है। आपका गोत्र भाटी है। आपके पिता श्री बालूराम जी एक प्रसिद्ध राज्य-कर्मचारी थे। आपकी माता का नाम श्री तुलसा जी था। वि० स० १९४५ भाद्र शुक्ला ३ शनिवार के दिन आपका जन्म हुआ। कीतलसर के ठाकुर मे अन-बन होने के कारण आपके पिताजी थावला (मेडता) आ गये थे। यही पर विक्रम सम्वत् १९५६ मे आपको श्री मोतीराम जी महाराज के दर्शन हुए। इस समय आपकी अवस्था ग्यारह वर्ष की थी। सत्सग की रुचि आपको बचपन से ही थी। सत-समागम प्राप्त होते ही आप का वैराग्य भाव जाग उठा। विक्रम सम्वत् १९५७ वैशाख शुक्ला ६ को आपने दीक्षा ग्रहण कर ली। आपकी दीक्षा कालू (मारवाड) मे श्री चन्दनमल जी पाटनी की व्यवस्था मे हुई थी। श्री गुरुदेव का शीघ्र ही स्वर्गवास हो जाने के कारण आपकी शिक्षा-दीक्षा का समस्त उत्तरदायित्व श्री गजमल जी म० तथा श्री फूलचद

जी म० ने निभाया। ये दोनो ही सत आगम-साहित्य के उद्भट विद्वान् थे।

श्री पन्नालाल जी म० आरम्भ से ही सुधारवादी रहे है। अहिंसा प्रचार तो आपके जीवन का मुख्य उद्देश्य है। जाति-सुधार के आपने अनेक महत्त्वपूर्ण काम किये है। आप शास्त्रो के सूक्ष्म तत्त्वज्ञ है। आपकी व्याख्यानशैली बडी ही आकर्षक है। स्वाध्याय के प्रति आपकी विशेष रुचि है। ज्योतिष विद्या के भी आप ज्ञाता है। वर्तमान श्रमण-सघ मे आपका एक विशेष स्थान है।

पूज्यश्री सुखलाल जी म० के बाद यह परम्परा दो धाराओ मे विभक्त हो गई। एक धारा के प्रमुख पूज्यश्री अभयराज जी हुए और दूसरी धारा के पूज्य श्री हरकचन्द्र जी हुए। इनके बाद दयालुचन्द्र लक्ष्मीचन्द्र और फिर श्री हगामीलाल जी महाराज का नाम आता है। श्री हरकचन्द्र जी के बाद इस परम्परा मे कोई आचार्य नही हुआ। सम्प्रदाय का समस्त उत्तरदायित्व मुख्य सतो के हाथो मे रहता आया है।

—×—

पूज्य श्री लवजी ऋषिजी म० की परम्परा

सत्रहवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे होने वाले क्रियोद्धारको मे पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म० का नाम प्रमुख रूप से आता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उन्हे महान् क्रियोद्धारक स्वीकार किया गया है। इनकी परम्परा मे अनेक प्रभावशाली, शास्त्रज्ञ और शास्त्रार्थकुशल महा मुनिराज हुए हैं। धर्मप्राण श्री लोकाशाह का शुद्ध साधुत्व की परम्परा को जागृत करने का श्रेय इन्ही महापुरुष को मिला था। विष पी कर समाज को अमृत का प्रसाद

श्री मलूकचन्द्र जी के शिष्य श्री नानकराम जी हुए। इनके बाद वि० स० १८३६ मे श्री निहालचन्द जी विक्रम स० १८५८ मे श्री वीरभान जी म० हुए। श्री वीरभान जी के बाद पूज्यश्री सुखलाल जी म० हुए। ये पुष्कर के पास किलागाँव के निवासी थे। इनका गोत्र लुनावत था। वि० स० १८६१ भा० शु० १० को इनकी दीक्षा हुई थी।

पूज्य श्री वीरभान जी के शिष्य लक्ष्मणदासजी और उनके श्री मगनमल जी हुए। श्री मगनमल जी के श्री मोतीराम जी म० हुए। वर्तमान श्रमण सघ के प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज इन्ही के शिष्य है।

प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी महाराज

आपका जन्मस्थान 'कीतलसर' (डेगाना) है। जाति से आप माली है। आपका गोत्र भाटी है। आपके पिता श्री बालूराम जी एक प्रसिद्ध राज्य-कर्मचारी थे। आपकी माता का नाम श्री तुलसा जी था। वि० स० १९४५ भाद्र शुक्ला ३ शनिवार के दिन आपका जन्म हुआ। कीतलसर के ठाकुर से अन-बन होने के कारण आपके पिताजी थावला (मेडता) आ गये थे। यही पर विक्रम सम्वत् १९५६ मे आपको श्री मोतीराम जी महाराज के दर्शन हुए। इस समय आपकी अवस्था ग्यारह वर्ष की थी। सत्सग की रुचि आपको बचपन से ही थी। सत-समागम प्राप्त होते ही आप का वैराग्य भाव जाग उठा। विक्रम सम्वत् १९५७ वैशाख शुक्ला ६ को आपने दीक्षा ग्रहण कर ली। आपकी दीक्षा कालू (मारवाड) में श्री चन्दनमल जी पाटनी की व्यवस्था मे हुई थी। श्री गुरुदेव का शीघ्र ही स्वर्गवास हो जाने के कारण आपकी शिक्षा-दीक्षा का समस्त उत्तरदायित्व श्री गजमल जी म० तथा श्री फूलचद

जी म० ने निभाया। ये दोनो ही सत आगम-साहित्य के दृभट विद्वान् थे।

श्री पन्नालाल जी म० आरम्भ से ही सुधारवादी रहे हैं। अहिंसा प्रचार तो आपके जीवन का मुख्य उद्देश्य है। जाति-सुधार के आपने अनेक महत्त्वपूर्ण काम किये है। आप शास्त्रो के सूक्ष्म तत्त्वज्ञ है। आपकी व्याख्यानशैली बडी ही आकर्षक है। स्वाध्याय के प्रति आपकी विशेष रुचि है। ज्योतिष विद्या के भी आप ज्ञाता है। वर्तमान श्रमण-सघ मे आपका एक विशेष स्थान है।

पूज्यश्री सुखलाल जी म० के बाद यह परम्परा दो धाराओ मे विभक्त हो गई। एक धारा के प्रमुख पूज्यश्री अभयराज जी हुए और दूसरी धारा के पूज्य श्री हरकचन्द्र जी हुए। इनके बाद दयालुचन्द्र लक्ष्मीचन्द्र और फिर श्री हगामीलाल जी महाराज का नाम आता है। श्री हरकचन्द्र जी के बाद इस परम्परा मे कोई आचार्य नही हुआ। सम्प्रदाय का समस्त उत्तरदायित्व मुख्य सतो के हाथो मे रहता आया है।

—x—

पूज्य श्री लवजी ऋषिजी म० की परम्परा

सत्रहवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे होने वाले क्रियोद्धारको मे पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म० का नाम प्रमुख रूप से आता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उन्हे महान् क्रियोद्धारक स्वीकार किया गया है। इनकी परम्परा मे अनेक प्रभावशाली, शास्त्रज्ञ और शास्त्रार्थकुशल महा मुनिराज हुए हैं। धर्मप्राण श्री लोकाशाह को शुद्ध साधुत्व की परम्परा को जागृत करने का श्रेय इन्ही महापुरुष को मिला था। विष पी कर समाज को अमृत का प्रसाद

देना आपकी एक अनुपम विशेषता थी। शासन-प्रभावक पूज्य श्री सोम जी ऋषि जैसे सत्पुरुषो ने आपकी चरण-शरण मे शिष्यत्व लिया था। इस शिष्यरत्न ने ही एक ऐसे पुण्यश्लोक व्यक्ति को अपने श्रमणसमाज मे दीक्षित किया था, जिसने अपने ज्ञानबल, तपोबल, और प्रचारबल से अपने पूर्वजो की कीर्ति को दिग्दिगन्तव्यापिनी बना दिया। हमारे पाठक तथा पाठिकाए उस महात्मा का नाम जानने के इच्छुक होगे। अगली पंक्तियाँ उसी धर्मपुंज के नामाकन से अपने शाब्दिक शरीर को कृतकृत्य मान रही हैं।

पूज्यश्री कहान जी ऋषि जी महाराज

पूज्य श्री लवजी ऋषिजी म० के द्वितीय पट्टधर पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी के शिष्यो मे श्री कहान जी म० का नाम विशेष रूप से आता है। इनका जन्म सूरत नगर मे हुआ था।

बचपन से ही इन्हे विशेष धार्मिक रुचि थी। सत-समागम से लाभ लेना आप कभी नही चुकते थे। यही कारण था कि बचपन मे ही आपको बहुत सा शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त हो गया। वि स. १८१० के सूरत चातुर्मास मे आप पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म० के व्याख्यानो मे नियमित रूप से आया करते थे। उनकी वैराग्यपूर्ण वाणी से प्रभावित होकर आपने श्रावक के बारह व्रत स्वीकार कर लिये। इस चातुर्मास मे आपने खूब धर्म-ध्यान किया। धर्म के प्रभाव से आपके हृदय मे वैराग्य भावना का उदय हो गया। आप दिन-रात धार्मिक चिंतन मे तल्लीन रहने लगे।

वि स १८१३ मे पूज्यश्री सोमजी ऋषि सूरत पधारे। पूज्य म० श्री के सत्समागम से आपकी वैराग्य अपूर्ण भावना और प्रबल

हो गई। अब आप दीक्षित होना चाहते थे। ससार की क्षण-भगुरता को आप अच्छी तरह पहचान चुके थे। सयम-पालन की दृढ भावना देखकर पूज्य श्री जी ने सूरत के श्रीसघ के समक्ष बडे ही समारोहपूर्वक दीक्षाव्रत प्रदान कर दिया। सोना और सुहागा दोनो मिल गए। स्वर्ण चमक उठा। उसका मैल छूट चुका था। नवदीक्षित श्री कहान जी ऋषि बचपन से ही शास्त्राभ्यासी थे। सद्गुरु की शरण मे आकर आपने अपने आगम अभ्यास को और मनोयोगपूर्वक चलाया। थोडे ही समय मे आप काव्य, व्याकरण, न्याय तथा आगमो के विशिष्ट विद्वान् हो गए। एक अनुश्रुति के अनुसार आपको चालीस हजार श्लोक-प्रमाण सामग्री कण्ठस्थ थी। विक्रम सम्वत् १८१६ मे आप अपने गुरुदेव श्री के साथ अहमदाबाद आये। यहाँ आपके श्रीमुख से निरियावलिका सूत्र का प्रवचन सुनकर श्री धर्मदास जी के हृदय मे वैराग्य भावना जागृत हो गई। किंतु वे किसी कारणवश दीक्षा नही ले सके।

धर्म-प्रचार और शिष्य-परिवार

श्री कहानजी ऋषिजी विद्वान् होने के साथ-साथ एक सफल धर्म-प्रचारक भी थे। उन्होने अपने गुरुदेव की आज्ञासे अनेक प्रान्तो मे जा-जा कर धर्म-प्रचार किया। उनके सच्चे उपदेशो से प्रभा-वित होकर सेकडो व्यक्तियो ने सम्यक्त्वरत्न' प्राप्त किया। मालवा देश मे तो आपके प्रचारो ने नवीन जागृति फूँक दी। ज्ञान और चारित्र की आप अप्रतिम मूर्ति थे। दुर्धर तपोव्रत-पालन मे भी सर्वदा अग्रणी रहे थे। निरन्तर बेले–बेले की तप-स्या करने का तो आपका नियम था। अपने गुरुदेवश्री के स्वर्ग-वास के बाद आप ही ने उनके 'पद' को सुशोभित किया। आप मालवा प्रात मे ऋषि-सम्प्रदाय के सर्वप्रथम महापुरुष माने

जाते है। रतलाम, जावरा, मन्दसौर, प्रतापगढ, शाजापुर, शुजालपुर, और भोपाल आदि क्षेत्रो मे आज भी आपका यश विद्यमान है। आपका शिष्यपरिवार बडा ही विशाल था। सभी शिष्यो का पूर्ण वृत्त उपलब्ध नही है। केवल कुछ विशिष्ट शिष्यो की नामावलि प्राप्त हो पाई है। जो निम्न प्रकार से है —

(१) श्री ताराऋषि जी (२) श्री रणछोड जी (३) श्री गिरधर ऋषि जी (४) श्री माणक ऋषिजी (५) श्री कालू ऋषि जी।

पूज्य श्री कहान जी ऋषि ने २३ वर्ष की आयु मे दीक्षा ग्रहण की थी और सत्ताइस वर्ष तक शुद्ध सयम पालन किया। आपके बाद श्री तारा ऋषि जी पाट पर विराजमान हुए। आपका प्रचार-क्षेत्र विशेष रूप से मालवा माना जाता है। श्री रणछोड जी म० अधिकतर गुजरात तथा काठियावाड मे विचरे। पूज्य श्री तारा ऋषिजी म० के २२ प्रमुख शिष्य हुए है। उनमे से श्री काला ऋषि जी तथा श्री मगल ऋषि जी के नाम महत्त्वपूर्ण माने गये हैं। श्री काला ऋषि जी से 'मालवा शाखा' का तथा श्री मगल ऋषि जी से खम्भात शाखा का उदय हुआ।

ऋषि सम्प्रदाय की पट्टावलि के अनुसार श्री लवजी ऋषि के पाँचवे पाट पर पूज्य श्री काला ऋषि जी माने गये है। इनके पश्चात् इन्ही के मुख्य शिष्य श्री बक्षु ऋषिजी महाराज आचार्यपद पर आये। पूज्य श्री बक्षु ऋषिजी की शिष्य-परम्परा मे से केवल दो शिष्यो के नाम ही उपलब्ध हो पाये है। श्री पृथ्वी ऋषिजी तथा श्री धनजी ऋषिजी। ये दोनो ही गुरुभ्राता थे। पूज्य श्री बक्षु ऋषिजी के बाद पूज्य पदवी श्री धनजी ऋषिजी को प्राप्त हुई। किसी शास्त्रीय धारणा के आधार पर दोनो मुनिराजो मे मतभेद की दीवार खडी हो गई। ऋषि-सम्प्रदाय की अखण्ड भूमिका दो

भागो मे विभक्त हो गई। कुछ साधु तथा साध्वियाँ इधर सम्मिलित हो गई और कुछ उधर श्री पृथ्वीऋषिजी के सगठन मे सम्मिलित हो गई। दो पृथक्-पृथक् सगठन होने पर भी एक महत्त्वपूर्ण नियम दोनो दलो ने निभाया। आचार्य श्री धनजी ऋषि ही रहे। सगठन को भावना से दूसरे दल ने अपना पृथक् आचार्य नही बनाया। सत्य तो यह है कि यह उस समय के उन भविष्यद्रष्टा मुनिराजो का महान् बलिदान था। सघ-एकता के लिए किया गया आदर्श त्याग था। दोनो दलो ने अपने पूर्वजो के मार्ग पर चलने के सकल्प के साथ-साथ यह दृढ निश्चय कर लिया था कि भले हा आपस मे कितने ही मतभेद हो जावे, पर एक दूसरे की निन्दा नही करेगे। अपनी-अपनी गुरु परम्परा के अनुसार दृढ सयम पालते रहेगे।

श्री पृथ्वी ऋषिजी की शिष्य-परम्परा मे अनेक प्रभावक सत हुए है। उनमे श्री जीवा ऋषिजी और श्री भीम ऋषिजो आदि सतो के नाम विशेष है। श्री सोम ऋषिजी के शिष्य श्री हरखा ऋषि जी हुए। इन्हे शास्त्र-विशारद श्री पृथ्वी ऋषिजी ने स्वय अपने करकमलो द्वारा दीक्षित किया था। ये अपने समय के महा प्रभावक सत थे विक्रम सम्वत् १९३१ मे श्री हरखा ऋषिजी के चरणो मे मालवाप्रान्तीय 'गुडा मोगरा' नामक ग्राम के निवासी श्री स्वरूप चन्द्रजी के पुत्र श्री सुखानन्द जी ने भागवती दीक्षा स्वीकार की। गुरुदेव ने इनका नाम श्री सुखा ऋषिजी रखा। इनका जन्म वि० स० १९२३ की श्रावणी पूर्णिमा के शुभ दिन हुआ था। केवल आठ वर्ष की लघु आयु मे आप जैन साधु हो गए थे। आप बडे मेधावी सत थे। पूरे सत्ताईस वर्ष तक आपने भारत की जनता मे धर्म-प्रचार किया। विक्रम सम्वत् १९५८ श्रावणी पूर्णिमा के दिन ३५ वर्ष की आयु मे आपका स्वर्गवास हो गया। आपके सात

शिष्यो मे श्री अमी ऋषिजी म० का नाम विशेष रूप से उल्लेख-नीय है।

कविवर्य श्री अमी ऋषिजी महाराज

आपका जन्म वि० स० १९३० मे हुआ था। आपके पिताजी श्री भैरूलाल जो दलोट (मालवा) के निवासी थे। आपको माता का नाम श्री प्यारा बाई था। वि० स० १९४३ की मार्गशीर्ष कृष्णा ३ के दिन आपने मगरदा (भोपाल) मे पण्डितराज श्री सुखा ऋषिजी से श्रमण-दीक्षा लो थो। आप बडे हो मेधावी मुनि राज थे। आपकी प्रवचन-शैली बडी हो प्रभावोत्पादक थो। जैना-गमो के अतिरिक्त आप अन्य धर्मो के ग्र थो के भी विशिष्ट विद्वान् थे। शास्त्रार्थ-कला मे आप अत्यन्त निपुण थे। अनेक कष्टो को सहकर भी आप अपने लक्ष्य तक पहुँचे विना नही रहते थे। काव्य साहित्य से आपको बडा प्रेम था। वे दार्शनिक भी थे और कवि भी। दोनो विरोधी धाराओ का उनमे स्पष्ट दर्शन होता था। उन्होने अनेक चरित्र-काव्यो, शिक्षा-काव्यो तथा ऐतिहासिक काव्यो का निर्माण किया था। लगभग ३० कृतियाँ उनकी आज भी उप-लब्ध है। चित्रकाव्य के तो वे सफल निर्माता थे। सत साहित्य मे आपकी रचनाओ का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपकी लेखन-शैली भी बडी ही सुन्दर थी। आपके हाथ के लिखे हुए अनेक शास्त्र मिलते है। कहते है कि तेरह आगम आपको कण्ठस्थ थे।

मालवा, मेवाड, मेरवाड, मारवाडा, गुजरात, काठियावाड, देहली तथा महाराष्ट्र आदि अनेक प्रातो मे विचर कर आपने धर्म-प्रचार किया था। वि० स० १९८८ वैशाख शुक्ला १४ के दिन शुजालपुर (मालवा) मे आपका स्वर्गवास हुआ। इस समय आपका

आयु ५८ वर्ष की थी। आप समूचे स्थानकवासी समाज की एक दिव्य विभूति थे। अपने जीवन-काल मे आपने चतुर्विध सघ की शक्तिभर सेवा की थी। जिन-शासन के आप अनमोल रत्न थे। वे 'अमी' अर्थात् अमृत के भण्डार थे। शुद्ध सयम-पालन करना उनकी सबसे बडी विशेषता थी। उनका व्यक्तित्व बडा ही विशाल था। उदयपुर सीतामऊ और उन्डेल आदि क्षेत्रो मे आज भी लोग उनकी कविताओ के गुण गाते है।

हम पीछे बता आये है कि पूज्य श्री धनजी ऋषिजी महाराज श्री पृथ्वी ऋषिजी के गुरुभाई थे। पूज्य श्री धनजी ऋषिजी वडे ही प्रभावक आचार्य हुए है। उनके अनेक शिष्यो मे परम पूज्य श्री अयवता ऋषिजी का-नाम प्रमुख रूप से आता है। आपके जन्म आदि के विषय मे विशेष सामग्री उपलब्ध नही हो सकी है। इतना अवश्य है कि आप स्वाध्यायशील, उच्च तपोव्रत आराधक महा-महिम सत थे। देश के अनेक प्रान्तो मे विचरण करके आपने भगवान् महावीर के पवित्र सन्देश को घर-घर पहुँचाया था। प्रतापगढ, भोपाल, देवास, मगरदा, आप्टा, और सीहोर आदि क्षेत्रो मे आपका विशेप भ्रमण हुआ है। वि स १६२२ की आषाढशुक्ला नवमी को 'भैंसरोज' में आपका समाधिपूर्वक स्वर्गवास हुवा। आपके सात शिष्य हुए है। उनमे कवि-कुल-भूषण श्री तिलोक ऋषि जी म० का नाम विशेष प्रसिद्ध है।

कविमूर्धन्य श्री तिलोक ऋषिजी महाराज

आपका जन्म विक्रम सम्वत् १६०४ की चैत्र कृष्णा २ रवि-वार के दिन रतलाम नगर मे हुआ था। आपके पिता का नाम श्री दुलीचन्द जी सुराणा और माता का नाम श्रीमती नानूबाई था। श्री दुलीचन्द जी की चार सन्तानें थी। तीन पुत्र और एक

पुत्री, पुत्री का नाम हीराबाई था। वि स. १६१४ मे पं श्री अयवता ऋषिजी रतलाम पधारे । आपके वैराग्यपूर्ण उपदेश को सुनकर माता श्री नानूबाई, तथा उनकी पुत्री हीराबाई को वैराग्य हो गया । उनके दीक्षा के विचार देखकर श्री तिलोक चन्द्र जी भी दीक्षा लेने के लिए तैयार हो गये । आपके बडे भाई श्री कुँवरमल जी को जब आपके सयम लेने की भावना का पता चला तो वे भी अपने छोटे भाई के साथ दीक्षित होने को तैयार हो गए ।

रतलाम के इतिहास मे वह वि स. १६१४ माघ कृष्णा प्रतिपदा का दिन कितना महत्त्वपूर्ण था, जब एक परिवार के चार दीक्षार्थी सतशिरोमणि श्री अयवता ऋषिजी के चरणो मे दीक्षित हुए । श्री कुँवर ऋषिजी तथा श्री तिलोक ऋषिजी पूज्यपाद श्री अयवता ऋषिजी के शिष्य हुए । श्रीमती नानूबाई तथा श्री हीराबाई, तत्कालीन सतीशिरोमणि श्री दयाजी सरदारा जी म० की शिष्या बनी ।

नवदीक्षित श्री तिलोकऋषिजी आरम्भ से ही बडे मेधावी थे। प्रथम वष मे ही आपने दशवैकालिक सूत्र कण्ठस्थ कर लिया ।दूसरे वर्ष मे सम्पूर्ण उत्तराध्ययन सूत्र कण्ठस्थ कर लिया। अठारह वर्ष की उम्र मे आपने अनेक शास्त्रो का अध्ययन कर लिया। आपका भाषाज्ञान भी पूरी प्रगति पा चुका था। इन्ही दिनो वि स १६२२ मे आपके गुरुदेव का स्वर्गवास हो गया।

इसके बाद आप स्वतन्त्र रूप से धर्म-प्रचार मे जुट पडे। गुरुदेव के स्वर्गवास के बाद पहिला चातुर्मास आपने शुजालपुर मे किया। यहाँ से ज्यो-ज्यो आपके चातुर्मासो का क्रम बढता

गया त्यो-त्यो आपके धर्म-प्रचार का क्रम भी बढ़ता चला गया। मालवा, मेवाड, मारवाड आदि अनेक प्रान्तो मे आपके धर्म-उपदेश को गूँज रही है। दक्षिण प्रात मे तो आपका पचार सर्वाधिक मफल हुआ था। यहाँ के अनेक तारणपथो दिगम्बर बन्धुओ ने आपके उपदेशो से प्रभावित होकर शुद्ध साधु मार्गी सिद्धान्त स्वीकार कर लिया था। अनेक मुमुक्षुजनो ने आपके चरणो मे भागवती दीक्षा ग्रहण की थो। आपकी शिष्य-परम्परा मे अनेक विद्वान् सत हुए है। साध्वी-समाज की अभिवृद्धि मे भो आपका विशेष योग-दान रहा था। अनेक नारीरत्नो ने आपके उपदेशो से दीक्षा ग्रहण की थी। मन्दसौर जोवागज, कोटा, शुजालपुर और रतलाम आदि अनेक क्षेत्रो मे आपने चातुर्मास किये थे। विक्रम सम्वत् १९२५ का चातुर्मास आपने जावरा मे किया था। इसके बाद घोडनदी, अहमदनगर, वाम्बेरी, पुन घोडनदी मे आपका १९३९ का चातुर्मास हुवा। विक्रम सम्वत् १९४० का चातुर्मास करने के लिए आप अहमदनगर पधारे। यहीं पर श्रावण कृष्णा द्वितोया को आपका समाधिपूर्वक स्वर्गवास हो गया। सारे जन-समाज मे शोक की लहर दौडगई। पूज्यश्री हुक्मीचद जी म० की सम्प्रदाय के तत्कालीन पूज्यश्री उदय सागर जो म० ने रतलाम श्रीसघ के सन्मुख अपने विचार रखते हुए कहा था कि आज जैन समाज का सूर्य अस्त हो गया।

स्वर्गीय श्री तिलोक ऋषि जी म० सचमुच ही ज्ञान के सूर्य थे। आपकी प्रतिभा बहुमुखी थी। काव्यकला के तो आप कुशल कलाकार थे। आपको कवित्व-शक्ति बडो ही विलक्षण थी। आपने अपने जोवन मे अनेक काव्यग्रन्थो का निर्माण किया था। प्रचार को दृष्टि से उनका समाज मे एक विशिष्ट स्थान है। स्थानकवासी समाज का बच्चा-बच्चा आज प्रात साय पांच पदो

पुत्री, पुत्री का नाम हीराबाई था। वि सं. १६१४ मे पं श्री अयवता ऋषिजी रतलाम पधारे। आपके वैराग्यपूर्ण उपदेश को सुनकर माता श्री नानूबाई, तथा उनकी पुत्री हीराबाई को वैराग्य हो गया। उनके दीक्षा के विचार देखकर श्री तिलोक चन्द्र जी भी दीक्षा लेने के लिए तैयार हो गये। आपके बडे भाई श्री कुंवरमल जी को जब आपके सयम लेने की भावना का पता चला तो वे भी अपने छोटे भाई के साथ दीक्षित होने को तैयार हो गए।

रतलाम के इतिहास मे वह वि स. १६१४ माघ कृष्णा प्रतिपदा का दिन कितना महत्त्वपूर्ण था, जब एक परिवार के चार दीक्षार्थी सतशिरोमणि श्री अयवता ऋषिजी के चरणो मे दीक्षित हुए। श्री कुंवर ऋषिजी तथा श्री तिलोक ऋषिजी पूज्यपाद श्री अयवता ऋषिजी के शिष्य हुए। श्रीमती नानूबाई तथा श्री हीराबाई, तत्कालीन सतीशिरोमणि श्री दयाजी सरदारा जी म० की शिष्या बनी।

नवदीक्षित श्री तिलोकऋषिजी आरम्भ से ही बडे मेधावी थे। प्रथम वष मे ही आपने दशवैकालिक सूत्र कण्ठस्थ कर लिया। दूसरे वर्ष मे सम्पूर्ण उत्तराध्ययन सूत्र कण्ठस्थ कर लिया। अठारह वर्ष की उम्र मे आपने अनेक शास्त्रो का अध्ययन कर लिया। आपका भाषाज्ञान भी पूरी प्रगति पा चुका था। इन्ही दिनो वि स १६२२ मे आपके गुरुदेव का स्वर्गवास हो गया।

इसके बाद आप स्वतन्त्र रूप से धर्म-प्रचार मे जुट पडे। गुरुदेव के स्वर्गवास के बाद पहिला चातुर्मास आपने शुजालपुर मे किया। यहाँ से ज्यो-ज्यो आपके चातुर्मासो का क्रम बढता

गया त्यो-त्यो आपके धर्म-प्रचार का क्रम भी बढ़ता चला गया। मालवा, मेवाड़, मारवाड़ आदि अनेक प्रान्तो मे आपके धर्म-उपदेश की गूँज रही है। दक्षिण प्रात मे तो आपका प्रचार सर्वाधिक सफल हुआ था। यहाँ के अनेक तारणपथी दिगम्बर बन्धुओ ने आपके उपदेशो से प्रभावित होकर शुद्ध साधु मार्गी सिद्धान्त स्वीकार कर लिया था। अनेक मुमुक्षुजनो ने आपके चरणो मे भागवती दीक्षा ग्रहण की थी। आपकी शिष्य-परम्परा मे अनेक विद्वान् सत हुए हैं। साध्वी-समाज की अभिवृद्धि मे भी आपका विशेष योग-दान रहा था। अनेक नारीरत्नो ने आपके उपदेशो से दीक्षा ग्रहण की थी। मन्दसौर जीवागज, कोटा, शुजालपुर और रतलाम आदि अनेक क्षेत्रो मे आपने चातुर्मास किये थे। विक्रम सम्वत् १९३५ का चातुर्मास आपने जावरा मे किया था। इसके बाद घोडनदी, अहमदनगर, वाम्बेरी, पुन घोडनदी मे आपका १९३९ का चातुर्मास हुवा। विक्रम सम्वत् १९४० का चातुर्मास करने के लिए आप अहमदनगर पधारे। यही पर श्रावण कृष्णा द्वितीया को आपका समाधिपूर्वक स्वर्गवास हो गया। सारे जैन-समाज मे शोक की लहर दौडगई। पूज्यश्री हुक्मीचद जी म० की सम्प्रदाय के तत्कालीन पूज्यश्री उदय सागर जी म० ने रतलाम श्रीसघ के सन्मुख अपने विचार रखते हुए कहा था कि आज जैन समाज का सूर्य अस्त हो गया।

स्वर्गीय श्री तिलोक ऋषि जी म० सचमुच ही ज्ञान के सूर्य थे। आपकी प्रतिभा बहुमुखी थी। काव्यकला के तो आप कुशल कलाकार थे। आपकी कवित्व-शक्ति बडी ही विलक्षण थी। आपने अपने जीवन मे अनेक काव्यग्रन्थो का निर्माण किया था। प्रचार की दृष्टि से उनका समाज मे एक विशिष्ट स्थान है। स्थानकवासी समाज का बच्चा-बच्चा आज प्रात साय पाँच पदो

की वन्दना मे "कहत है तिलोकऋषि" इन शब्दो के साथ आपके पवित्र नाम का स्मरण करता है। आपके ज्ञानकुञ्जर और चित्रालकार काव्य आज के कवि-समाज के लिए विशेष आदर की वस्तु बने हुए है। लेखनकला मे भी आप बडे ही कुशल थे। एक ही पन्ने पर दशवैकालिक सूत्र के दश अध्ययन लिखना और केवल डेढ इञ्च स्थान मे सारी आनुपूर्वी अकित करना आपकी विशिष्ट लेखनप्रतिभा के द्योतक है, आपको १८ आगम कण्ठस्थ थे। नित्यप्रति उत्तराध्ययन सूत्र का स्वाध्याय करना तो आपका एक स्वाभाविक नियम बन गया था। आप आसुकवि थे। जहाँ भी अवसर प्राप्त हुआ वही आपने कविता बना दी। आपके अनेक काव्यो के अन्त मे अधिकतर काव्य निर्माण-स्थलो का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। छत्तीस वर्ष की अवस्था मे आपका स्वर्गवास हुवा था। अपने जीवनकाल मे अनुमानत ७० हजार ग्रन्थो की रचना की थी। आपकी कुछ रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी है, और कुछ अभीतक अप्रकाशित ही है। उनकी समस्त रचनाएँ जैन साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

विक्रम सम्वत् १९२५ की बात है। कविचूडामणि जी श्री तिलोक ऋषिजी महाराज घोडनदी पधारे। पूज्य गुरुदेव के धर्मोपदेश आरम्भ हुए। जनता की भक्ति का ज्वार-भाटा उमड पडा। अनेक भव्य जीव सन्मार्गानुगामी हो गए। महाराज श्री के उपदेशो से प्रभावित होकर घोडनदी-निवासी श्री गभीरमल जी लोढा की धमपत्नी तथा पुत्री ने दीक्षा लेने का दृढ सकल्प कर लिया। उ ही दिनो मानक दौडी (अहमद नगर) निवासी श्री स्वरूप चंद्रजी घोडनदी मे ही निवास करते थे। उनकी स्त्री का देहान्त हो चुका था। केवल एक पुत्र ही उनके पास था। माता और पुत्री के दीक्षा-सकल्प ने इन पिता-पुत्र के हृदय को झकझोर दिया। वे

सम्यक्त्वी श्रावक थे। उनका पुत्र रत्नचन्द्र भी बडा होनहार था। पिता-पुत्र दोनो ने दृढ निश्चय के साथ अपना जीवन गुरुदेव श्री की सेवा मे अर्पित कर दिया। यह दीक्षा वि० स० १९३६ आषाढ शुक्ला नवमी को हुई थी। पिता का नाम श्री स्वरूप ऋषिजी म० रखा गया और पुत्र का नाम श्री रत्न ऋषिजी म० रखा गया। श्री रत्न ऋषिजी कविकुल-भूषण श्री तिलोक ऋषिजी की शिष्य-परम्परा मे एक प्रकाशमान नक्षत्र थे। ज्ञान और भक्ति दोनो की आप साक्षात् प्रतिमा थे।

शास्त्रोद्धारक श्री अमोलक ऋषिजी महाराज

जन्म और दीक्षा

मेडता (मारवाड) निवासी कास्टियागोत्रीय ओसवाल श्री कस्तूर चन्दजी के पुत्र श्री केवलचन्दजी उन दिनो भोपाल मे रहा करते थे। आप मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के अनुयायी थे। श्री केवलचदजी की दूसरी पत्नी श्री हुलासाबाई की कुक्षि से वि० स० १९३४ मे एक बालक का जन्म हुआ। माता पिता ने उसका नाम अमोलक चन्द्र रख दिया। अमोलक चन्द्र के एक छोटा भाई भी था। उसका नाम अमीचन्द्र था। कुछ दिनो बाद ही आपकी माता का देहान्त हो गया।

एकबार कविवर श्री तिलोकऋषिजी के सहोदर एव गुरु-भ्राता श्री कुँवर ऋषिजी भोपाल पधारे। उनके उपदेश से श्री केवल चन्द्रजी को वैराग्य हो गया। कुछ समय के बाद इन्होने प० मुनि श्री पूनम ऋषिजी के करकमलो से दीक्षा ग्रहण कर ली। आपको स्थविर-पद-बिभूषित श्री सुखाऋषिजी का शिष्य बना दिया गया। उनके दोनो पुत्र अपने मामा जी के पास रहने

लगे। एक दिन अमोलक चन्द्रजी अपने पिताजी श्री केवल ऋषिजी के दर्शनो के लिए खेडी ग्राम से इच्छावर आये। श्री रत्न ऋषिजी म० तथा श्री केवल ऋषिजी म० उन दिनो इच्छावर मे विराजमान थे। पिताजी को त्यागमार्ग मे देख कर पुत्र का हृदय एकदम ससार से उदासीन हो गया। उन्होने दीक्षा लेने का दृढ निश्चय कर लिया। दोनो मुनिराजो ने खूब सोच-विचार कर आपको वि० स० १९४४ की फाल्गुण कृष्णा द्वितोया गुरुवार के दिन दीक्षित कर लिया। जब आपके परिवार के लोगो को पता चला तो उन्होने कानून का सहारा लेकर श्री अमोलकचन्द्रजी को वापिस घर ले आना चाहा। किन्तु न्यायाधीश ने निर्णय दिया कि पुत्र यदि पिता के साथ रहना चाहता है तो उसे कोई भी कानून नही रोक सकता।

तीनो मुनि इच्छावर से भोपाल आये। यहाँ विराजित स्थविर-पद-विभूषित श्री खूबाऋषिजी ने नव दीक्षित मुनि को अपने शिष्य श्री चेना ऋषि के शिष्य पद पर नियुक्त कर दिया। मुनिजी का नाम श्री अमोलक ऋषिजी महाराज रख दिया गया। नव दीक्षित मुनिराज बडे ही प्रतिभा-सम्पन्न थे। पाँच वर्ष के लघु काल मे ही आपने सस्कृत, प्राकृत, काव्य साहित्य तथा आगमो का विशद ज्ञान प्राप्त कर लिया। आपकी भाषण-शैलो बडी ही रोचक थी। सिद्धहस्तलेखक होने के साथ-साथ आप एक सफल कवि भी थे। आपकी कविता बडी प्रभावपूर्ण होती थी। आपका स्वभाव बडा ही नम्र था। श्री केवल ऋषिजी, श्री भैरव ऋषिजी तथा श्री रत्न ऋषिजी आदि मुनिराजो के साथ आपने भारत के अनेक प्रातो मे धर्म-प्रचार किया। अनेक भव्य प्राणियो ने आपसे साधु-धर्म तथा श्रावक धर्म के नियम स्वीकार किये थे। आपके मन मे शिष्य-लोलुपता नाममात्र भी नही थी। जब किसी को भी आप दीक्षा देते थे—बहुत सोच विचार कर देते थे। वि० स० १९६० के

लगभग श्री रत्न ऋषिजी म० के साथ आप दक्षिण मे पधारे। इन्ही दिनो श्री केवल ऋषिजी भी इस प्रदेश मे आ चुके थे। स० १९६१ और १९६२ के चातुर्मास आपने क्रमश. बम्बई और इगतपुरी मे किये। यहाँ से विहार कर के वि० स० १९६२ चैत्र शुक्ला प्रतिपदा के दिन आपने हैदराबाद मे प्रवेश किया। यहाँ अपने ससार पक्ष के पिताजी श्री केवल ऋषिजी की अस्वस्थता के कारण आपको नौ वर्ष तक ठहरना पडा। यहाँ तीन मुमुक्षुओ को आपने दीक्षा दी। (१) श्री देव ऋषिजी (२) श्री राज ऋषिजी (३) श्री उदय ऋषिजी। वहाँ से आप सिकन्दराबाद पधारे।

बत्तीस शास्त्रों का हिन्दी अनुवाद

यहाँ आपने एक ऐसा विलक्षण कार्य किया, जो आज तक कोई भी स्थानकवासी जैन सत नही कर पाया था। हम बत्तीस शास्त्रो को प्रामाणिक मानते हैं। सभी आगम प्राकृत-अर्धमागधी भाषा मे है। जन साधारण आगमज्ञान को आसानी से नही प्राप्त कर सकता था। आगमो के हिन्दी भाषानुवाद की अत्यन्त आवश्यकता थी। इस आवश्यकता की पूर्ति श्री अमोलक ऋषिजी म० ने की। तीन वर्ष के लघु काल मे सात २ घण्टे नित्य प्रति अबाध रूप से आपने लेखन श्रम किया। इस पर भी सबसे बडी बात यह है कि अनुवाद काल मे आप सदा एकासन तपस्या करते रहे। उन दिनो सहायक सामग्री की बडी असुविधा रहती थी। आज तो वह असुविधा बहुत कुछ हल हो चुकी है। दृढ सकल्प के साथ किया हुआ कार्य कभी असफल नही होता। शास्त्रोद्धार का यह कार्य भी सानन्द सफल हो गया।

राजा बहादुर दानवीर सेठ सुखदेवसहायजी ज्वालाप्रसाद जी की भव्य उदारता के लस्वरूप सभी आगम प्रकाशित भी

हो गये और भारत के विभिन्न श्रीसघो को बिना मूल्य भेट कर दिये गये। हैदराबाद, बैगलोर तथा रायचूर आदि के अन्य अनेक दानवीरो ने जैन-साहित्य के प्रकाशन तथा प्रचार मे आप को पूरा-पूरा सहयोग दिया था। आपके साहित्य-निर्माण मे समाज को एक परिपूर्ण नई दिशा मिली थी। बत्तीस आगम-सहित अनुमानत आपके द्वारा रचित अथवा अनूदित ग्र थो की सख्या १०२ के लगभग है। इनमे जैनतत्त्वप्रकाश, परमात्म मार्गदर्शन, धर्मतत्त्वसग्रह, मुक्तिसोपान, अघोद्धार कथागार तथा ध्यानकल्पतरु आदि ग्र थ बडे ही महत्त्वपूर्ण है।

पिछले कुछ वर्षों से ऋषिसम्प्रदाय मे आचाय-पदपरम्परा बन्द सी थी। वि० स० १९८९ मे इस विषय मे ऋषिसम्प्रदाय के साधु तथा साध्वियो ने इन्दौर मे विशेष प्रयत्न किया। परिणामत वही पर ज्येष्ठ शुक्ला १२ गुरुवार के दिन आपको सवगुण-सम्पन्न समझ कर आचार्य पद पर नियुक्त कर दिया। आपकी व्यवस्था-शैली बडी ही उपयोगी होती थी।

मतभेद से आप सदा दूर रहते थे। जहाँतक होता था समीप आने का उनका विशेप प्रयत्न रहता था। अजमेर मे होने वाले बृहत्साधु-सम्मेलन मे किये गये आपके सत्प्रयत्न को कोई भी स्थानक वासी भूल नही सकता। मेवाड मारवाड आदि अनेक प्रान्तो के अतिरिक्त आप दिल्ली तथा पञ्जाब भी पधारे थे। दिल्ली चातुर्मास के बाद आप कोटा, बूँदी, रतलाम और इन्दौर आदि क्षेत्रो मे होते हुए धूलिया (खानदेश) पधारे। यही पर वि स १९९३ के चातुर्मास मे भाद्रपद कृष्णा १४ के दिन समाधि-पूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया। श्री मोहन ऋषिजो, श्री पन्ना ऋषिजो तथा श्री कल्याण ऋषिजो आदि आपके बारह शिष्य हुए है।

पूज्यश्री आनन्द ऋषिजी महाराज

चिचोडी (अहमद नगर) मे श्रीमान् देवीचन्द जी गुगलिया श्रावक रहते थे। उनकी धर्म-पत्नी का नाम 'हुलास' बाई था। गुगलिया जी के दो पुत्र थे। (१) श्री उत्तमचन्द जी और (२) श्री नेमीचन्द जी। दूसरे पुत्र का जन्म वि स १६५८ मे हुआ था। बचपन मे ही पितृ-वियोग होने के कारण पुत्र पालन का सारा भार माताजी पर आ पडा था। वे बडी धार्मिक प्रवृत्ति की नारी-रत्न थी। पांचो तिथियो मे उपवास तथा नित्य सामायिक का उनका दृढ नियम था। एक बार वि स १६६६ मे श्री रत्नऋषि जी म० चिचोडी पधारे। माता की प्रेरणा से नेमीचन्द्र बालक उनके पास सामायिक प्रतिक्रमण सीखने जाने लगा। बालक की विलक्षण बुद्धि तथा प्रतिभा को देखकर गुरुदेव बडे प्रभावित हुए। उन्होने अवसर देखकर एक दिन हुलासबाई के सन्मुख पुत्रदान का प्रसग उपस्थित कर दिया। धर्म श्रद्धालु होने के कारण माता उनकी मांग को अस्वीकार न कर सका। प्रसन्नतापूर्वक माता ने अपने पुत्र को गुरुदेव श्री रत्नऋषि जी के चरणो मे समर्पित कर दिया।

गुरुदेव ने कुछ दिनो तक बालक नेमीचन्द्र को धार्मिक शिक्षण दिया और जब वह दीक्षाधारण के योग्य हो गया तो वि स १६७० की मार्गशीर्ष शुक्ला नवमी रविवार के दिन मीरी ग्राम मे दीक्षाविधि सम्पन्न करदी गई। आपका दीक्षानाम श्री आनन्दऋषिजी रख दिया गया। इस समय आपकी अवस्था १३ वर्ष की थी।

दीक्षा लेने के बाद आपका विद्याध्ययन प्रारम्भ हुवा। बौद्धिक प्रतिभा के तो आप आरम्भ से ही धनी थे थोडे ही समय मे आपने

प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, और गुजराती, महाराष्ट्री आदि भाषाओ पर समुचित अधिकार प्राप्त कर लिया। आपका कण्ठ बडा ही मधुर है। गायन-विद्या मे भी आप पूर्ण पारगत है। इस समय आप आगम साहित्य का भी अध्ययन कर चुके थे। अब आपके व्याख्यानो मे एक अद्भुत चमत्कार आ चुका था। जो भी सुनता था वही मुग्ध हो जाता था। वि स १९७९ मे आवलकुटी ग्राम मे अपना चातुर्मास व्यतीत करके क्रमश आपने अहमदनगर, पाथर्डी, कलम और पुन अहदनगर मे चातुर्मास किये। वि. स १९८१ मे गुरुदेव रत्नऋषि जी तथा शास्त्रोद्धारक श्री अमोलक ऋषिजी म० के साथ सम्मिलित चातुर्मास हुवा। इसके अनन्तर ज्यो-ज्यो आपके चातुर्मासो का क्रम बढता गया, त्यो-त्यो आपका धर्म-प्रचार, साहित्य-निर्माण तथा शिक्षा-प्रसार आदि सत्कार्यो की भी आशातीत वृद्धि होने लगी। आपके सदुपदेशो से अनेक भव्यप्राणी कल्याण-मार्ग के पथिक बने है। श्री तिलोकरत्न स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड का जो आज अखिल भारतीय रूप हमे दीख रहा है, यह सब आपके ही प्रयत्नो और उपदेशो का फल है। पहिले यहाँ पर एक छोटी सी पाठशाला चलती थी। इसकी स्थापना पूज्यपाद श्री रत्नऋषि जी म० ने की थी। युग प्रभावक श्री आनन्द ऋषिजी म० जैसे सतपुरुषो के सकेत से यहाँ धार्मिक परीक्षा बोर्ड की स्थापना हुई है। आज सारे स्थानकवासी समाज मे इस बोर्ड का विशेष महत्त्व है। अब तक हजारो को सख्या मे छात्र-छात्राएँ इस बोर्ड को परीक्षा मे बैठ चुके है। गृहस्थो के अतिरिक्त त्यागी मुनिराज भी धार्मिक परीक्षाएँ देते हैं। बोर्ड अखिल भारतीय श्वे० स्था जैन कान्फ्रेंस से मान्यता प्राप्त है। वि स. १९९३ मे इसकी स्थापना हुई थी। तबसे अब तक यह निरन्तर प्रगति करता चला आ रहा है।

आचार्य श्री अमोलक ऋषिजी के स्वर्गवास के बाद तपस्वी

श्री देवऋषिजी म० आचार्य पद पर नियुक्त हुए। उसी समय भुसावल मे आपको श्रीसघ ने युवाचार्य पद पर स्थापित कर दिया। सदा मे आप स्वभाव के बडे मिलनसार रहे है। जो भी व्यक्ति एक बार आपका दर्शन कर लेता है, वह अत्यन्त भक्तिविभोर हो जाता है। वि स १९९९ मे आचार्य श्री देवऋषि जी के स्वर्गवास के बाद पाथर्डी मे माघ कृष्णा ६ को आप श्रीसघ की आग्रहभरी प्रार्थना पर आचार्यपद पर विराजमान हो गये।

जब-जब समाज की ओर मे 'सघ ऐक्य' की योजनाएँ आपके सन्मुख रखी गई, आपने उनका अपने पूर्ण सहयोग से स्वागत किया। वि स २००६ के चैत्र कृष्णा १ को ब्यावर मे नौ सम्प्र-दायो के सतो का एक सम्मेलन हुवा। इसमे पाँच सम्प्रदाएँ एक रूप मे सगठित हो गई। सभी मुनिराजो ने सघ ऐक्य के लिए अपनी पूर्व पदवियो का परित्याग कर दिया। आपने भी अपना आचार्य पद छोड दिया। श्रीसघ मे एकता की नई लहर दौड गई सैकडो वर्षों की अनेकता, एकता मे परिणत हो गई। यह सब आपके सफल नेतृत्व का ही फल था। सभी दूरदर्शी सतो ने इस नये सगठन मे आपको प्रधानाचार्य पद के लिए मनोनीत किया। वि स २००९ के सादडी मुनिसम्मेलन तक आपने अपने उत्तरदायित्व को बडो ही योग्यता के साथ निभाया। पिछले ३९ वर्ष के मुनि-जीवन के इतिहास मे आपने जो जो अभूत-पूर्व शासन-प्रभावक कार्य किये है वे सब स्थानकवासी समाज के इति-हास मे अपना एक प्रमुख स्थान रखते है। आप जैसी दिव्य विभूतियाँ किसी भी समाज अथवा राष्ट्र को उसके महान् पुण्यो-दय से ही प्राप्त होती हैं। वर्तमान मे आप श्रमण सघ के आचार्य पद को अलकृत कर रहे है।

पिछली पक्तियो मे हमने जो ऋषि सम्प्रदाय के पाँच प्रमुख महापुरुषो का परिचय दिया है, उसके मध्य की कडियो मे अनेक दिव्य विभूतियाँ हुई है। उनमे ज्योतिर्विद् प० मुनि श्री दौलत ऋषिजी म० का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वर्तमान मे उनके सुयोग्य शिष्य आत्मार्थी मुनि श्री मोहन ऋषिजी म० तथा प० मुनि श्री विनय ऋषिजी म० श्रमण सघ के विशिष्ट सतो मे माने जाते हे। इन विभूतियो ने मानव समाज पर असीम उपकार किये है। अत्यन्त विनम्र शब्दो मे श्रद्धा तथा कृतज्ञता पूर्वक इन सब के पुनीत चरणो मे अपना हार्दिक वन्दन करना हम अपना आवश्यकीय कर्त्तव्य समझते है।

पूज्यवर श्री धर्मसिह जी महाराज की परम्परा

पूज्य श्री धर्मसिह जी महाराज अठारवी शताब्दी के महान् युग स्रष्टा थे। आपका शास्त्रीय ज्ञान बडा ही विशाल था। साधु धर्म की साधना के प्रति वे बडे ही सचेत रहते थे। आगम-ज्ञान के सरलीकरण मे आपका जो महान् योग रहा है, उससे धर्म-जिज्ञासु जनता का बडा ही उपकार हुआ है। आपके द्वारा लिखे हुए २६ शास्त्रो के टब्बे 'सक्षिप्त टिप्पणियाँ) इस बात के जीते जागते प्रमाण है। सक्षिप्त आगम टिप्पणियो के अतिरिक्त आपने और भी अनेक तात्त्विक ग्र थ लिखे है। आपकी सम्प्रदाय दरिया-पुरी के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। इस युग के क्रियोद्धारको मे आपका नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता है। तत्कालीन शिथिलाचार के प्रति आपने जो सघर्ष छेडा था, उसने समूचे श्रमण-समाज को एक नवीन चेतना दी थी। 'काल प्रभाव' के नाम से जो शिथिलता पनप रही थी आपने अपने विशुद्ध साधुत्व के द्वारा उसे समूल नष्ट करने का सफल प्रयत्न किया था। आप

समस्त श्री जैन सघ के एक आदर्श तथा प्रकाशमान नक्षत्र थे। आपकी क्षमा, करुणा, समता और ज्ञान-गरिमा सर्वोत्कृष्ट थी। विरोध को शाति से समाप्त करना आपका विशेष गुण था। आपकी परम्परा मे अनेक विद्वान् शास्त्रज्ञ तथा क्रिया-पात्र सत हुए है। पूज्यपदवी-क्रम के अनुसार आपके बाद क्रमश श्री सोम जी स्वामी, श्री मेघ जी, द्वारकादास जी, श्री मुरार जी, श्री नाथ जी, श्री जयचन्द जी और दूसरे मोरार जी स्वामी हुए है। मोरार जी के शिष्य श्री सुन्दर स्वामी के तीन शिष्य हुए। (१) नाथा जी (२) जीवन ऋषि जी (३) श्री प्राग जी ऋषि। ये तीनो ही महात्मा बडे भारी प्रभावक थे। गुरुदेव की उपस्थिति मे ही श्री मोरार जी का स्वर्गवास हो गया था। अत उनके बाद श्री नाथा ऋषि जी पाट पर विराजमान हुए। इनके बाद श्री जीवन ऋषि जी के हाथो मे गच्छ का उत्तरदायित्व आ गया।

पूज्यपाद श्री प्राग ऋषिजी महाराज

आप वोरम गाँव के निवासी थे। जाति से भावसार थे। आपके पिता का नाम रणछोड़दास जी था। उन्नीसवी शताब्दी के प्रथम चरण के लगभग आपको श्री सुन्दरदास जी महाराज के सत्सग का लाभ प्राप्त हुआ। सुलभबोधि होने के कारण आपके जीवन पर श्री सुन्दरदास जी के धार्मिक प्रवचनो का आशातीत प्रभाव पडा। आपने उनसे श्रावक के बारह व्रत स्वीकार कर लिए। बहुत समय तक आपने शुद्ध श्रावक व्रतो का पालन किया। अत मे वि० स० १८३० मे अपने माता-पिता की आज्ञा लेकर आप साधु हो गये। आपकी दीक्षा बडी धूम-धाम से हुई थी।

शास्त्र-अध्ययन के प्रति आपकी रुचि बहुत थी। इस लिए

थोडे ही काल मे आपने अनेक शास्त्रो का अध्ययन कर लिया। पूज्य श्री जीवन ऋषिजी का स्वर्गवास हो जाने पर आपको आचार्यपद दे दिया गया। आप बडे ही प्रभावशाली सत पुरुष थे। आपने धर्मप्रेमी श्रावको की प्रार्थना पर प्रातिज, ईडर बीजापुर और खरोलु आदि अनेक क्षेत्रो मे विचरण करके सत्य धर्म का प्रचार किया था। एक बार आप अहमदाबाद से ७ कोस दूर विसलपुर ग्राम के श्रावको का विनती पर वहाँ गये थे।

आपके समय मे अहमदाबाद मे चैत्यवासियो का बडा जोर था। ये लोग शुद्ध साधुवो को बहुत ही परीसह देते थे। उन दिनो बहुत कम मुनिराज इधर पधारते थे, मुनिराजों की तो बात ही क्या है, जो कोई श्रावक भी शुद्ध श्रावक धर्म का पालन करता था, चत्यवासी उसे अनेक प्रकार से तग करते थे। ऐसी विकट स्थिति म पूज्य श्री प्रागजी स्वामी वहाँ पधारे। यहाँ सारगपुर तलिया की पोल मे श्री गुलाबचन्द, हीराचन्दजी के मकान मे आप विराजमान हुए। आपका शुद्ध तथा सत्य उपदेश सुनकर गिरधर, शकर पानाचन्द झवेरचन्द, रायचन्द झवेरचन्द और उनके परिवार वालो ने शुद्ध सम्यक्त्वव्रत धारण कर लिया। आपकी इस सफलता से वहाँ मन्दिरमार्गी लोग आपसे ईर्ष्या करने लगे। उन्हे ऐसा लगा कि यदि श्री प्रागजी कुछ काल यहाँ ठहर गये तो अनेक मन्दिरमार्गी भाई उनके सिद्धान्त के अनुयायी हो जायेगे। इसी विचार से उन्होने साधुमार्गी श्रावको से और साधुवो से झगडा करना आरम्भ कर दिया। यह झगडा बढते बढते कोर्ट तक पहुँच गया। साधुमार्गियो की ओर से पूज्य श्री रूपचन्द जी के शिष्य श्री जेठमल जी महाराज तथा विपक्षियो की ओर से श्री वीरविजय आदि मुनि कोर्ट मे आये। अतिम निर्णय साधुमार्गियो के पक्ष मे हुआ। श्र. जेठमल जी म० का 'समकितसार' नामक

ग्रन्थ पठनीय है। पूज्य श्री प्रागजी म० के समय इस सम्प्रदाय मे ७५ साधु और अनेक साध्वियाँ थी। सभी एक आम्नाय मे विचर कर धर्म-साधना करते थे।

पूज्य श्री प्रागजी महाराज का विक्रम स० १८६० मे विसलपुर मे स्वर्गवास हुआ था। उनके बाद उनके पाट पर श्री शकर जी स्वामी, श्री खुशाल जी, श्री हर्षसिंह जी, और श्री मोरार जी हुए। इसके बाद इस परम्परा मे अनेक विद्वान् आचार्य हुए। उन्नीसवे पाट पर श्री मलूकचन्द्र जी म० बड़े ही प्रभावक महापुरुष हुए। यह सम्प्रदाय २१ पाट तक व्यवस्थित रूप से चलती आई है। आदि से लेकर अंत तक इसमे कही पर भी विभाजन नही हुआ। वर्तमान मे इस सम्प्रदाय के श्री शान्तिलाल जी म० बड़े ही सुन्दर व्याख्याता और दृढधर्मी व्यक्ति है

क्रियोद्धारक श्री धर्मदासजी महाराज की परम्परा

पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज एक प्रतिभासम्पन्न महापुरुष थे। पाँचो क्रियोद्धारको मे उनका शिष्य-परिवार सबसे विशाल था। अकेले श्री धर्मदास जी म० के ९९ शिष्य माने जाते है। शिष्यो का प्रतिशिष्य-परिवार इससे पृथक् कितना विशाल होगा ? यह तो पाठक स्वय ही अनुमान लगा सकते है। उनके सभी शिष्यो तथा प्रतिशिष्यो का परिचय लिखना तो शक्य नही है। यहाँ केवल हम उनके मुख्य-मुख्य शिष्य और उनके परिवार का नाम-निर्देशपूर्वक सक्षिप्त परिचय देने का प्रयत्न करेगे। हममे जहाँ तक सभव हो सकेगा, शिष्यो-प्रतिशिष्यो की नाम-परम्परा के लिखने का पूरा प्रयत्न करेंगे। फिर भी यदि प्रमादवश कोई नाम रहजाय तो हम पूर्णरूपेण क्षमाप्रार्थी हैं। प्राचीन काल मे हमारे साधुमार्गी समाज के साधु मुनिराजो मे लिखने-लिखाने की

ग्रन्थ पठनीय है। पूज्य श्री प्रागजी म० के समय इस सम्प्रदाय मे ७५ साधु और अनेक साध्वियाँ थी। सभी एक आम्नाय मे विचर कर धर्म-साधना करते थे।

पूज्य श्री प्रागजी महाराज का विक्रम स० १८६० मे विसलपुर मे स्वर्गवास हुआ था। उनके बाद उनके पाट पर श्री शकर जी स्वामी, श्री खुशाल जी, श्री हर्षसिह जी, और श्र मोरार जी हुए। इसके बाद इस परम्परा मे अनेक विद्वान् आचार्य हुए। उन्नीसवे पाट पर श्री मलूकचन्द्र जी म० बडे ही प्रभावक महापुरुष हुए। यह सम्प्रदाय २१ पाट तक व्यवस्थित रूप से चलती आई है। आदि से लेकर अत तक इसमे कही पर भी विभाजन नही हुआ। वर्तमान मे इस सम्प्रदाय के श्री शान्तिलाल जी म० बडे ही सुन्दर व्याख्याता और दृढधर्मी व्यक्ति है

क्रियोद्धारक श्री धर्मदासजी महाराज की परम्परा

पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज एक प्रतिभासम्पन्न महापुरुष थे। पाँचो क्रियोद्धारको मे उनका शिष्य-परिवार सबसे विशाल था। अकेले श्री धर्मदास जी म० के ९९ शिष्य माने जाते है। शिष्यो का प्रतिशिष्य-परिवार इससे पृथक् कितना विशाल होगा ? यह तो पाठक स्वय ही अनुमान लगा सकते है। उनके सभी शिष्यो तथा प्रतिशिष्यो का परिचय लिखना तो शक्य नही है। यहाँ केवल हम उनके मुख्य-मुख्य शिष्य और उनके परिवार का नाम-निर्देशपूर्वक सक्षिप्त परिचय देने का प्रयत्न करेगे। हमने जहाँ तक सभव हो सकेगा, शिष्यो-प्रतिशिष्यो की नाम-परम्परा के लिखने का पूरा प्रयत्न करेगे। फिर भी यदि प्रमादवश कोई नाम रहजाय तो हम पूर्णरूपेण क्षमाप्रार्थी हैं। प्राचीन काल मे हमारे साधुमार्गी समाज के साधु मुनिराजो मे लिखने-लिखाने की

परम्परा बिलकुल नही के बराबर थी। सभी सतो का ध्यान 'आध्यात्मिक कल्याण की ओर रहता था। साहित्यिक इतिहास की अपेक्षा उनमे आत्मिक-इतिहास के निर्माण की विशेष लगन थी।

१ श्री मूलचन्द्र जी महाराज

पूज्य श्री धर्मदासजी म० के ९९ शिष्यो मे ३५ शिष्य तो सस्कृत तथा प्राकृत भाषा के प्रकाण्ड पण्डित थे। शेष शिष्य साधारण पाण्डित्य के साथ-साथ यथाशक्ति ज्ञान-ध्यान तथा तपस्या आदि मे सलग्न रहते थे। उन ३५ शिष्यो मे (१) श्री मूलचन्द्र जी (२) श्री धनजी (३) छोटे पृथ्वीराज जी (४) श्री मनोहरदस जी (५) और श्री रामचन्द्र जी ये पाँच महात्मा मुख्य रूप से प्रसिद्ध हुए है। अधिकतर इन्ही के शिष्य-परिवारो से श्री धर्मदास जी के सम्प्रदाय की वृद्धि हुई। श्री मूलचन्द्र जी महाराज अपने समय के बडे ही प्रभावशाली मुनिराज थे। उनके सात शिष्य हुए है—(१) श्री पचाण जी (२) श्री गुलाब चन्द्र जी (३) श्री बनारसी जी (४) श्री इच्छा जी (५) श्री विट्ठल जी (६) श्री बना जी (७) श्री इन्द्रजी।

इन सातो मे से श्री पचाण जी के दो शिष्य हुए—(१) श्री इच्छा जी म० (२) और श्री रतनशी जी महाराज। श्री इच्छा जी के पाट पर क्रमश श्री हीरा जी और छोटे कान जी महाराज विराजमान हुए।

श्री अजरामर जी स्वामी

आपका जन्म जामनगर के पास पडाणा ग्राम मे विक्रम सम्वत् १८०९ मे हुआ था। आपने केवल दश वर्ष की अवस्था मे

श्री कान जी स्वामी से दीक्षा ग्रहण की थी। आपकी धर्मशीला माता जी ने भी आपही के साथ दीक्षा ग्रहण करली थी। सूरत नगर के प्रसिद्ध यति श्री गुलाबचन्द्र जी के पास आपने दश वर्ष तक संस्कृत, प्राकृत आदि अनेक भाषाओ तथा आगम शास्त्रो का अध्ययन किया था। पूज्य श्री दौलतराम जी से आपने शास्त्रो के अनेक गहन अर्थो का रहस्य प्राप्त किया था। सत्ताइस वर्ष की अवस्था मे आप पूर्ण विद्वान् हो गए। विक्रम सम्वत् १८४१ मे आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित कर दिया गया। आप बडे ही क्रियाशील, सत्य-प्रचारक सत पुरुष थे। जैन धर्म के प्रचार तथा प्रसार मे आप जीवनभर पूरी लगन के साथ जुटे रहे। आपका वर्चस्व बडा ही प्रभावशाली था। आपके पाट पर क्रमश श्री देव राज जी, भाणा जी, करमशी जी और श्री अविचल जी स्वामी विराजमान हुए। यही से 'लीबडी मोटी सम्प्रदाय' का उदय माना जाता है। श्री अविचल जी के शिष्य हरचन्द्र जी स्वामी मे 'लीबडी मोटी सम्प्रदाय' का निर्माण हुआ। श्री हरचन्द्र जी के पाट पर देव जी, गोविन्द जी, कान जी, नथु जी, दीपचन्द जी, लाधा जी, मेघराज जी, देवराज जी, लव जी, गुलाबचन्दजी और घन जी स्वामी हुए।

शतावधानी प० श्री रत्नचन्द्र जी महाराज

आपका जन्म विक्रम सम्वत् १९३६ मे मोरार(कच्छ) मे हुआ था। आपका बचपन अत्यंत सस्कारित परिवारो मे बीता था। प्रथम पत्नी के स्वर्गवास होने के बाद परिवार के लोग आपका दूसरा विवाह करना चाहते थे। किन्तु श्री गुलाबचन्द जी स्वामी के सत्सग से आपका मन विषय-भोगो से उदासीन हो गया आपने बडे ही उग्र परिणामो से दीक्षा ग्रहण कर ली। गुरुदेव गुलाबचन्द्र जी महाराज ने बडी ही लगन के साथ आपको विद्य

ध्ययन कराया। थोडे ही दिनो मे आप सस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पण्डित हो गए। प्राकृत भाषा के तो आप अनुपम विद्वान् थे। समस्त जैन आगमो का मथन करके आपने "अर्ध-मागधी कोष" का निर्माण करके शास्त्रीय अध्ययन को अत्यत सुगम बना दिया है। जैन सिद्धान्त कौमुदी, कर्तव्य कौमुदी भावनाशतक तथा सृष्टिवाद और ईश्वर आदि ग्र थ आपकी अमूल्य रचनाएँ है। आप भारत-प्रसिद्ध शतावधानी थे। जयपुर मे आपको अवधान प्रयोग के समय 'भारत-रत्न' की उपाधि से अलकृत किया गया था। आप प्राणपण से सगठन के प्रेमी थे। घाटकोपर मे निर्मित 'वीरसघ' योजना मे आपका पूर्ण सहयोग था। आपका स्वर्गवास भी घाटकोपर मे ही हुआ था। आपकी स्मृति मे समाज ने अनेक शिक्षण-सस्थाओ की स्थापना की।

श्री अविचल जी स्वामी के दूसरे शिष्य श्री हीमचन्द्र जी से "लोम्बडी छोटी सम्प्रदाय" का उदय हुआ। इस सम्प्रदाय मे गोपाल जी मोहनलाल जी, मणिलाल जी और केशवलाल जी म० हुए।

श्री पचाण जी के दूसरे शिष्य श्री रतनशी जी, डू गरशी स्वामी, रव जी, मेघ जी आदि से लेकर आठवे पाट पर देव जी म० स्वामी हुवे श्री देवजी म० के दो शिष्य हुए —

(१) जयचन्द्र जी (२) जादव जी। जयचन्द्र जी के शिष्य प्राण लाल जी म० हुए और जादव जी के शिष्य पुरुषोत्तम जी महाराज हुए। यह सम्प्रदाय 'गोंडल सम्प्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

श्री गुलाबचन्द्र जी म० की सम्प्रदाय मे बाल जी, नाग जी, मूल जी, देवचन्द्र जी, मेघराज जी और पूज्य सघ जी महाराज यह "सायला सम्प्रदाय" की परम्परा है।

बनारसीजी की "चूडा सम्प्रदाय" और इच्छा जी की "उदयपुर सम्प्रदाय" कहलाई। इन सम्प्रदायो मे आजकल कोई साधु नही है।

श्री विट्ठल जी से 'धागध्रा सम्प्रदाय का उदय हुआ। इसमे मूलण जी, और वशराम जी हुए। इनके शिष्य श्री जसाजी बोटाद पधारे। यही से बोटाद सम्प्रदाय चली। इस सम्प्रदाय मे अमरचन्द जी और माणकचन्द्र जी हुए।

श्री बना जी की बरवाला सम्प्रदाय कहलाई। इसमे पुरुषोत्तम जी से लेकर श्री मोहनलालजी तक सात पाट-क्रम हुए है।

विक्रम सम्वत् १७७२ मे पूज्य श्री धर्मदास जी के शिष्य मूलचन्द्रजी और उनके शिष्य इन्द्रजी स्वामी प्रथम बार कच्छ मे पधारे। कच्छ मे पहिले एकल पात्रिया श्रावको का अधिक जोर था। इस प्रात मे एकल पात्रिया साधुवो का अधिक प्रचार के कारण आठ कोटि के त्याग प्रत्याख्यान की अधिक प्रवृत्ति थी।

पूज्य श्री सोमचन्द्र जी महाराज

श्री इन्द्र जी की परम्परा मे भगवान्जी, सोमजी, करसनजी, देवकरणजो और डाह्याजी हुए। इनमे श्री सोमजी का नाम अधिक प्रसिद्ध है। ये पूज्य धर्मसिहजी के टब्बो के तत्त्वार्थ ज्ञाता मुनिराज थे। इनकी श्रद्धा भी आठ कोटि प्रत्याख्यान मे थी। १७८६ मे आपने दीक्षा ग्रहण की थी। आपके पास कच्छ के महाराव श्री लखपत जी के कामदार श्री थोमणजी पारख तथा बलदीयग्राम के श्री कृष्णजी और उनकी माता मृगाबाई ने विक्रम स० १८१६ मे भुजग्राम मे दीक्षा ली थी। १८३१ मे देवकरणजी ने दीक्षा ली। वि० स० १८४२ मे श्री डाह्याजी ने सयम ग्रहण किया।

श्री देवजी की सम्प्रदाय 'आठ कोटि बडा पक्ष' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसमे रगजी, केशवजी आदि से लेकर श्री कृष्णजी महाराज तक दश पाटक्रम हुए। डाह्याजी के दूसरे शिष्य जसराज जी से आठ कोटि छोटा पक्ष' सघाडे का आरम्भ हुआ। इसमें

नथुजी, हंसराजजी, वृजपालजी, डूगरशी, शामजी और श्री लालजी स्वामी हुए है। यहां तक का क्रम पूज्य धर्मदास जी के शिष्य श्री मूलचद्रजी म० की परम्परा का है।

आचार्य श्री भूधरजी महाराज

आपने मारवाड नागोर के मुणोत खानदान मे सम्वत् १७०८ आसोज शुक्ला दशमी को (विजयादशमी के दिन) माणकचन्द जी के घर पर जन्म लिया। माता का नाम श्री रूपादेवीजी था। बाल्यकाल मे माता-पिता काल कर गये। आप बचपन मे ही, बडे वीर, साहसिक और युद्ध-कला मे निपुण थे। जिससे जोधपुर महाराज के फौजी अफसर नियुक्त हुए। वहा से आपका स्थानान्तर सोजत कर दिया गया। क्योकि उस समय सोजत के आस-पास डाकुओ का बडा जोर-शोर था। इसी कारण बडे बडे सरदारो के साथ भी उनका मेल था। श्री भूधर जी ने अपनी वीरता से सरदारो को भी दबाया, और डाकुओ का जोर-शोर भी कम कर दिया।

आपका विवाह सोजत मे रातडिया मूथा के यहा हुआ था। आपके तीन लडके और २ लडकिया हुई। सम्वत् १७५' का जिक्र है। (८४) ऊंटो से डाकुओ ने कटालिया नामक गाव पर धावा बोल दिया। कटालिया ठाकुर श्री शूरसिंह जी कुम्पावत के आमन्त्रण पर फौज लेकर सहायता के लिए पहुँचे डाकू लोग युद्ध मे परास्त होकर भाग गये। श्री भूधरजी ने उनका पीछा किया। सिरियारी के पास काजलवास के निकट फिर जमकर सामना किया। उसमे बहुत के डाकू मारे गये। रहे सहे को पकड लिया। उस युद्ध मे एक डाकू के द्वारा आपके सवारी के ऊँट पर तलवार का वार हुआ। जिससे ऊँट की गरदन लटकने लगी। ऊँट ने तडपते हुए प्राण को छोड दिया। इसमे आपको बडी भारी ग्लानि उत्पन्न हुई और आपके वैराग्य का मुख्य कारण यही ...

वापस लौटकर फौजी नौकरी से अवकाश ग्रहण कर लिया। और पोथियाबन्द धर्म मे दीक्षित हो गये। घूमते हुए मालवे मे पहुँचे। वहा आचार्य श्री धन्नाजी म० के पास सम्वत् १७५३ म घ शुक्ला तृतीया के दिन दीक्षित हो गये। उसी दिन से आप पाच पाच उपवास का पारणा करने लगे और पाचो विगय का त्याग किया। लेप और मिश्रण का आगार था।

आप श्री आतापना भी खूब लेते थे। एक समय का जिक्र है कि आनन्दपुर कालू के नदी मे आप आतापना ले रहे थे। उस समय रामा पडिहार जाट ने आपके मस्तक पर जेई (कुल्हाडी) की मार दी, काटो की पाई पर पैर पकड कर घसीटा, यह दृश्य पुरोहित रामसुखजी ने देखा और हल्ला करने पर वह भाग गया। क्षमा-श्रमण आचार्यश्री ने उसे कुछ भी नही कहा। जब उसे पकड कर जेल मे डाल दिया। तब यह खबर मिलते ही, आचार्यश्री ने फरमाया कि उस भाई को जब तक जेल मे मुक्त नही करेगे, तब तक मैं अन्न जल ग्रहण नही करूंगा। गाव के हवलदार ने उसे छोडकर आचार्य श्री जी के पास लाये। तब वह पैरो मे पडकर रोने लगा। उस समय आचार्य श्री जी ने कहा, तुम मद्य और मास का त्याग करो धर्म की श्रद्धा करो, सब आनन्द होगा। आप श्री के द्वारा दिल्ली के शाहजादा के प्राण बचे। आपके जीवन मे सामाजिक कई घटनायें घटी। यहा सक्षिप्त वृत्ता त दिया गया। आपके नव-शिष्य थे। श्री नारायण-जी स्वामी, श्री रूपचन्दजी, श्री गोरधनजी श्री जगरूपजी, श्री रतनचन्दजी, श्री रघुनाथजी, श्री जेतसीजी, श्री जयमल जी श्री कुशलोजी हुए। जिनमे से चार शिष्य अत्यन्त ही प्रतिष्ठा-सम्पन्न हुए। इस सम्बन्ध मे प्राचीन दोहा इस प्रकार है —

धन रघुपति धन जेतसी, धन जयमल, कुशलेश ॥
चारो शिष्य भूधर तणा, चावा देश विदेश ॥

आप आचार्य श्री सम्वत् १८०३ के आसोज शुक्ला विजया १० के

दिन पांच उपवास के पारणे, वीर-स्तुति का स्वाध्याय करते हुए मेडता मे स्वर्गवासी हुए।

आचार्य श्री रघुनाथजी महाराज

सवत् १७६६ माघ शुक्ला बसन्त पचमी के दिन सोजत के हाकिम शाह नथमलजी बलावत की धर्मपत्नी श्री सोमादेवी के कुक्षी से श्री रघुनाथ जी का जन्म हुआ। आप ऊर्ध्व-रेखा आदि शुभ-लक्षणो से सयुक्त गौरवर्णी रूप सम्पन्न सुन्दर आकृति वाले थे। आप सस्कृत, फारसी के अच्छे विद्वान् थे। १७ वर्ष की अवस्था मे आपको सोजत की हुकूमत मिली। एक दिन अपने मित्र की अकस्मात् मृत्यु सुनने पर मृत्यु से भयभीत हो चामुण्डा देवी के सन्मुख सिर चढाकर अमर होने की भावना से निकले। जिससे सारे परिवार वाले तथा ससुराल वालो (आपका सबध सोजत मे ही शाह कुन्दनमलजी वेदमुथा की सुपुत्री श्री रत्न-कु वर बाई के साथ हो चुका था) ने रोकने के लिए अनेक प्रयत्न किये। परन्तु वे सफल न हो सके। रास्ते मे पुण्योदय से आचार्य श्री भूधरजी महाराज का सयोग मिला। तीन दिन तक चर्चा होने से अन्ध-श्रद्धा को छोडकर सम्यक् तत्वो के उपासक बने। आप दीक्षा लेने के लिए तैयार हुए। किन्तु अपने परिवार का अत्यन्त आग्रह होने से चार वर्ष तक विरक्तावस्था मे घर पर ही रहना पडा। फिर भडारी खीवसीजी के द्वारा बडी धूम-धाम से सवत् १७८७ जेष्ठ कृष्णा द्वितीया बुधवार के दिन आचार्य श्री भूधर जी म० के पास दीक्षा सम्पन्न हुई। आपश्री ने दीक्षा ग्रहण करते ही पांच २ दिन की तपश्चर्या करके पारणा करने का, यावज्जीवन पर्यन्त नियम लिया। पारणे के दिन चार विगयो का त्याग भी कर लिया। आपने अपने जीवन मे चालू तपस्या के उपरान्त १५ दिन की तपस्या, एक मास, दो मास आदि तपस्याये अनेक बार की। आपकी वक्तृत्व-शक्ति सराहनीय थी। आप क्रियापात्र एव महान् विद्वान् थे। आप श्री ने ३२ आगमो

की हुण्डियो का निर्माण किया। आप चर्चावादी भी उच्चकोटि के थे। वेदानुयायियो, पोथियावन्द और मन्दिरमार्गियो से चर्चा करके अनेक बार विजय प्राप्त की थी। पोथियावन्द पन्थ का तो आपश्री के द्वारा उन्मूलन ही हो गया। आपका जीवन वृत्तान्त बडा ही विशाल है। वह मरुधर केशरी जी म० द्वारा स्वतन्त्र बना हुआ है। ३२ सूत्रो को हुण्डिया भी जोधपुर, सोजत सादडी, पाली व जयतारण के भडारो मे हस्तलिखित प्रतियाँ प्रस्तुत है। यतियो के साथ चर्चा करके मेडता मे विजय प्राप्त की उस समय का अम्बालाल सेवक का बनाया हुआ एक दोहा प्रचलित है।

जति धर्म जातो रह्यो थानक लागा टाठ ।
उपासरे आडा जडिया पडिया रह गया पाट ॥१॥

आपके धर्म प्रचार मे सात सौ गाव आये हैं। जिनमे मेडता, जालोर, सादडी, पाली, जयतारण' समदडी जोजावर, फिलाज, व सिरियारी का घाट, देवगढ और श्रीजी नाथद्वारा, आदि स्थानो पर अपने अत्यन्त कष्ट एवं भयकर उपसर्ग सहन किये।

आपके हाथो से साधु-साध्वियो की सैकडो दीक्षाये हुई। आपका विहार पजाब, जमनापार गुजरात,सौराष्ट्र आदि मे रहा। आपकी ससार पक्ष की धर्मपत्नी श्री रत्न कु वर देवी ने भी दीक्षा ली थी, और उनको ५२ शिष्याये हुई। आचार्य श्री जी ने ६० वर्ष तक सयम पालन किया। सवत् १८०४ के चैत्र शुक्ला ५ के शुभ दिन मे आपको आचार्य पद मिला। और सम्वत् १८४६ माघ शुक्ला एकादशी के दिन १७ दिन का सथारा करके पाली मे स्वर्गवासी हुए।

पूज्य श्री रघुनाथजी म० के शिष्य भीषण जी भी कटालिया निवासी शा० बलूजी सक्लेचा के पुत्र और टेकचन्द जी के कनिष्ठ भ्राता सवत् १८०८ मे हुए। सम्वत १८१६ चैत्र शुक्ल ६ शुक्रवार को बगडी मे जिनाज्ञा विरुद्ध श्रद्धावान् देखकर इन्हे सघ से पृथक् कर दिया।

मरूधरकेशरी श्री मिश्रीमल जी म०

पूज्य श्री रघुनाथजी म०, पूज्य श्री टोडरमलजी म०, स्वामी श्री इन्दरराजजी म०, तपस्वी श्री भूपतराजजी म० आचार्य श्री गिरवरलालजी म०, स्वामी जी श्री धरमचन्दजी म०, स्वामीजी श्री मानमलजी म०, स्वामी श्री बुधमलजी म०, के शिष्य प० रत्न भूतपूर्व मत्री मुनि श्री मिश्रीमल जी म० (मरुधर केशरी जी म०) ठाणे ५ मे विचर रहे है। आप साहित्य, सस्कृत प्राकृत व न्याय आदि के विद्वान् है। आपकी कविताएँ गद्य एव पद्य मे ग्र थाग्र थ, लाख के लगभग हैं। जिसमे मुख्यत महाभारत ५ खण्डो मे, लगभग ८२ बडो २ चतुष्पदियाँ है। और एक विविध विषयो पर खण्ड काव्य है। आप राजस्थान मे एक आशु कवि है। व्याख्यान आपका प्राभाविक है। आपका मुख्यत गुण स्पष्ट वक्ता है। इससे कई लोग विनोदवश कडक मिश्री के नाम से पुकारते है आपका चारो सम्मेलनो मे मुख्यत हाथ रहा है। आप संगठन के प्रबल समर्थक हैं। आपके उपदेशो से अनेक सस्थाएँ भी सुचारु रूप से चल रही है। श्री लोकाशाह जैन गुरुकुल सादडी, सोजत, श्री जिनेन्द्रज्ञान मदिर सिरियारी आदि २ स्थानो पर सस्थाएँ है।

आचार्य श्री चौथमल जी म०

आप आचार्य श्री रघुनाथ जी महाराज के प्रपौत्र शिष्य है। सम्वत् १८१३ मार्ग शीर्ष कृष्ण ७ को विवाह के विनोले खाते हुए वैराग्य उत्पन्न होने से आपने दीक्षा ली। आपका जन्म मेडता के पास भवाल नामक ग्राम मे हुआ। वहा श्री कु दनमलजी झामर के सुपुत्र श्री चुन्नी बाई के अ गजात थे। आपके मुख्य शिष्य दो, श्री सन्तोकचन्दजी म० और श्री हिम्मतरामजी म०, श्री अमरचन्दजी महाराज श्री लादुराम जी म० के शिष्य श्री शार्दूल सिहजी थे। श्री चोथमल जी म० ने १८७० को अपना अलग सघाडा स्थापित किया था। आप महान् कवि थे। आपने करीब चौरासी

छोटे बडे ग्र थ बनाये हैं। आपका व्याख्यान सुन्दर था। आचार्य श्री रघुनाथ जी म० के कृपापात्र थे। आपका स्वर्गवास सवत् १८७६ ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्थी के दिन पीपाड मे हुआ।

आचार्य श्री जयमल जी म०

आप मारवाड मे उदावतो की लाम्बिया ग्राम के निवासी थे। आपके पिता श्री मोहनदास जी समदडिया मुथा और माता का नाम महिमा देवी था। आपके बडे भाई का नाम रोडमलजी था। आपका विवाह कावनिया नामक ग्राम के जेतूजी कोठारी के यहा हुआ था। आपकी धर्मपत्नी लाछल देवी थी।

आपका जन्म सवत् १७६५ भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी के दिन हुआ था। आप बडे तेजस्वी होनहार पुरुष थे। आप व्यापार के निमित्त कार्तिक शुक्ला १५ के रोज मेडता मे आये वहा पर पूज्य श्री भूधर जी म० का चातुर्मास था। और आपके आदर्श शिष्य श्री रघुनाथ जी म० के १२८ उपवास का पूर था। जिससे बाजार का कारोबार बन्द होने के कारण जयमल जी व्याख्यान श्रवणार्थ वहा आये। सुदर्शन सेठ की शील विषय से परिपूरित कथा को श्रवण कर के वैराग्य रग से रजित हो गये। आज्ञा प्राप्त करने के लिए मिगसर वदो १ को बडे जोर शोर से मतभेद रहा। आखिर सायकाल को आज्ञा प्राप्त की। एक ही प्रहर मे प्रतिक्रमण कठस्थ कर मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया सवत् १७८० मे श्री रघुनाथ जी म० का पारणा होने के पश्चात् दीक्षा सम्पन्न हुई। आपने कई वर्षो तक एकान्तर तप किया। ५२ वर्षो तक आडा आसन करके सोये नही। बीकानेर, भदाणी, डेह, नागौर खीवसर, फलोदी, आदि क्षेत्रो मे धर्मप्रचार करते हुए महान कष्ट उठाये।

आप राजस्थान भाषा के प्रखर कवि थे। राजा परदेशी चरित्र चार मगल, बडी साधु वन्दना, जयमल-बावनी, आदि

आपने लगभग २४ हजार ग्र थाग्र थ निर्माण किया। आपकी बहुत सी कविताएँ जयवाणी मे प्रकाशित हो चुकी है। आपको ११ शिष्य हुए।

आचार्य श्री जयमल जी का स्वर्गवास विक्रम सम्वत् १८५२ वैशाख शुक्ला नरसिह चतुर्दशी के दिन नागोर मे एक मास का सथारापूर्वक हुआ था। आपके बाद आपके पद पर श्री रायचन्द जी म० विराजमान हुए। आप अपने समय के प्रसिद्ध कवि और व्याख्याता थे। आपके अनेक रचनाए, श्री जयमल भण्डार पीपाड मे आज भी उपलब्ध है। श्री जयमल जी म० की परम्परा मे आपके बाद अनेक प्रभावक तपोव्रती विद्वान् मुनिराज हुए है। इस परम्परा मे अनेक लेखक, कवि विद्वान सत हुए है। श्री रावतमल जी म० और प० मिश्रीमल जी म० "मधुकर" तथा श्री प० जीतमल जी म० प० श्री लालचन्द जी म० इसी सम्प्रदाय के उदीयमान नक्षत्र है।

आचार्य श्री कुशलो जी म०

आपका जन्म पीपाड के पास सेठ जी की रियाँ मे हुआ था। आपका गोत्र चगेरी था, आपके पिता का नाम भोपजी और माता का नाम धापीबाई था। आपका जन्म सम्वत् १७६७ चैत्र कृष्णा तृतीया को हुआ था। आपने सम्वत् १७९४ फाल्गुण सुदी ७ के दिन विलाडे मे पूज्य श्री भूधर जी म० के पास दीक्षा ग्रहण की थी। आपके अनेक शिष्य हुए है। उनमे श्री दापोजी, श्री तेजोजी आदि नव शिष्यो के नाम प्रमुख रूप मे मिलते हैं। आपकी पट्ट परम्परा मे श्री आचार्य जी, श्री गुमानचन्द जी, श्री रतनचन्द जी, श्री हमीरमल जी, श्री कजोडीमल जी, श्री विनयचन्द्र जी और श्री शोभाचन्द्र जी म० अपने समय के बडे प्रभावक पुरुष हुए हैं आपके पद पर प० रत्न उपाध्याय श्री हस्तीमल जी म० वर्तमान मे प्रसिद्ध है।

उपाध्याय श्री हस्तीमल जी महाराज

आपका जन्म स० १९६७ मे हुआ। आपके दीक्षागुरु श्री शोभाचन्द्र जी महाराज थे। आप सस्कृत, प्राकृत आदि अनेक भाषाओ के विद्वान् है। आपकी सयम-साधना बडी कठिन है। आगम साहित्य के तो आप उद्भट विद्वान् है। आप सदा शास्त्रीय दृष्टि से चलने के समर्थक है। अपनी सयम-क्रिया मे सदा व्यस्त रहते है। आप समय के बड़े पाबन्द है। जिस समय के लिए जो काम निश्चत है उस समय वही काम करते है। 'काले काल समायरे' का अमर उद्घोष आपके जीवन का आदर्श है। इन्ही सब विशेषताओ के कारण मात्र बीस वर्ष की अवस्था मे वि० स० १९८७ मे आपको आचार्य पद मे विभूषित कर दिया गया। आप आगम शोधन के भी बडे प्रेमी है। आपने श्री नन्दी-सूत्र का हिन्दी अनुवाद भी किया है। आप प्रभावशाली वक्ता, लेखक और विशुद्ध साहित्यकार है। स्वाध्यायसघ और सामायिकसघ आपकी प्रमुख धार्मिक योजनाएँ है। सादडी सम्मेलन मे सभी सप्रदायो ने अपनी-अपनी पदवियो का परित्याग किया, उस समय आपने भी अपनी पूज्य पदवी का त्याग कर दिया। श्रमण सघ की व्यवस्था मे प्रारम्भ से ही आपका बहुमोल सहयोग रहा है। प्रारम्भ मे आप श्री इस सघ के सह मन्त्री थे। वर्तमान मे सघ के उपाध्याय पद पर प्रतिष्ठित है। संघ-ऐक्य के आप सदैव समर्थक रहे है।

श्री रामचन्द्र जी म० की परम्परा मे श्री चिमनीरामजी, और श्री नरोत्तम जी म० हुए। ये अपने समय के बडे ही तपस्वी ज्ञानी ध्यानी पुरुष हुए है। इनकी परम्परा इस प्रकार है —

श्री नरोत्तमजी
श्री मेघराजजी
श्री चुन्नालालजी
श्री मगनमुनिजी
श्री माधवाचार्यजी
श्री मूल मुनिजी
श्री काशीरामजी
श्री रामरतनजी
श्री चम्पालालजी
तपस्वी केशरीमलजी
श्री घनचन्द्रजी महाराज
श्री गंगारामजी
तपस्वी जीवराजजी
श्री ज्ञानचन्द्रजी
गेन्दालालजी
लक्ष्मीचन्दजी
चिम्मनलालजी
श्री किशनलालजी
मगनमलजी
ऋषभचंदजी
पन्नालालजी
इन्द्रमलजी
मोतीलालजी आदि
पूरणमलजी
चुन्नीलालजी
केवलचन्द्रजी
रतनचन्द्रजी
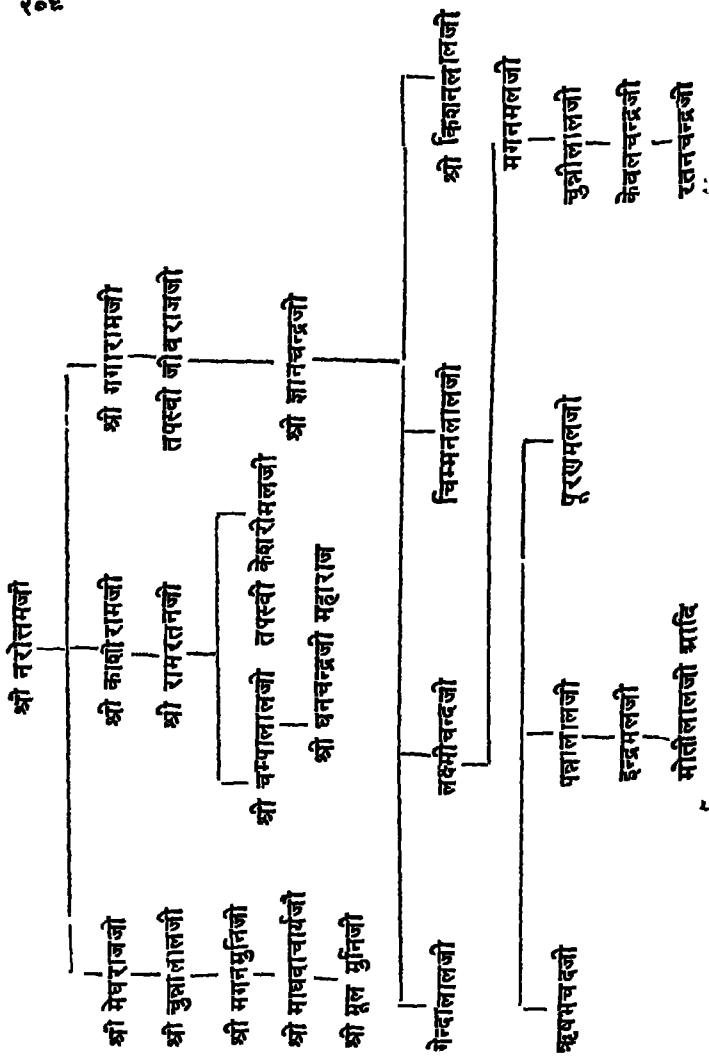
परम्परा-वादी मुनिराज श्री समर्थमल जी महाराज इसी नरोत्तम जी की परम्परा के संत है। आपका शास्त्रीय ज्ञान बडा ही विशाल है। शास्त्रो के गहन अध्येता होने पर भी आप मे अभिमान नही है। आप प्राचीनतावाद मे विशेष विश्वास रखते है। यह सम्प्रदाय आज कल आपके नाम से ही प्रसिद्ध है।

यहाँ तक का क्रम पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज के शिष्य श्री धन्ना जी की परम्परा का है।

३ श्री छोटे पृथ्वीराज जी महाराज

पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज के तीसरे शिष्य श्री छोटे पृथ्वीराज जी म० बडे ही प्रभावशाली महात्मा हुए है। इनके शिष्य श्री रामचन्द्र जी म० सर्वप्रथम मेवाड मे पधारे थे। इसी कारण इनकी सम्प्रदाय 'मेवाड सम्प्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इनकी परम्परा मे पूज्य श्री रोडादास जी म० बडे ही शासन-प्रभावक हुए है। ये देवपुर के निवासी लोढागोत्रीय थे। १८२४ विक्रमाब्द मे आपकी दीक्षा मानी जाती है। एक मास मे दो अठाई करने का आपका नियम था। आपने अपने जीवन मे ४३ मास-खमण और १५ कर्मचूर तप किये। बेले-बेले की तपस्या आपकी सदा चलती थी। आप प्रसिद्ध अभिग्रहधारी संत हुए है। आपने उदयपुर मे एक बार हाथी का और दूसरी बार सांड का अभिग्रह किया था। इनमे से पहला ३ दिन मे तथा दूसरा ४१ दिन मे सफल हुआ था। विक्रम सम्वत् १८६१ फाल्गुन कृष्णा ८ के दिन आपका समाधिपूर्वक स्वर्गवास हुआ। आपके बाद श्री नृसिंह जी महाराज हुए। इनके पिता का नाम गुमानचन्द और माता का नाम गुमानबाई था। ये रायपुर के निवासी थे। अपनी सुन्दर पत्नी को

छोड़कर आपने वि० स० १८५२ मार्गशीर्ष कृष्णा ६ को दीक्षा ग्रहण करली। आप राणा भीमसिंह जी के समय मे हुए है। आपके २७ शिष्य थे। सात सूत्र आपको कण्ठस्थ थे। वि० स० १६०१ मे उदयपुर मे आपका स्वर्गवास हुआ था। इनके पाट पर श्री मानमल जी आये। ये देवगढ के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम श्री तिलोकचन्द्र और माता का नाम धन्नाबाई था। इनका जन्म वि० स० १८६३ मे माना जाता है। ये गांधीगोत्रीय थे। वि० स० १८७२ मे आपने केवल नौ वर्ष की अवस्था मे आचार्य नृसिंह जी के पास दीक्षा ली थी।

पूज्य श्री एकलिंगदास जी महाराज

आप सागेसरानिवासी सहलोत गोत्री श्री शिवलाल जी के पुत्र थे। आपकी माता का नाम सुरताबाई था। वि० स० १६१७ ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या के दिन आपका जन्म हुआ था। वि स० १६४७ फागुण शु० १ मगलवार के दिन आपने अकोला शहर मे दीक्षा ली थी। वि० स० १६६६ ज्येष्ठ शु० ५ के दिन रासमी ग्राम में आपको आचार्य पद मिला। विक्रम सम्वत् ६८७ श्रावण शु० ३ के दिन ऊठाला (बल्लभ नगर) मे आपका स्वर्गवास हुआ। आप मेवाड के परम त्यागी तथा तपस्वी महात्मा थे। आपकी जीवन-चर्या समस्त मुनिराजो के लिए आदर्श थी। आपके ६ प्रमुख शिष्य हुए हैं। उनमे श्री मोतीलाल जी महाराज का नाम विशेष रूप से आता है। आप बल्लभ नगर निवासी साभर गोत्रीय श्री घूलचन्द्र जी के पुत्र थे। आपकी माता का नाम जडावबाई था। आपका जन्म १६४३ मे तथा दीक्षा १६६० मार्गशीर्ष शु० ७ के दिन सनवाड मे श्री एकलिंगदास जी महाराज के चरणो मे हुई थी। वि० स० १६६३ ज्येष्ठ शु० २ शुक्रवार के दिन सरदार

गढ मे आपको आचार्य पद से विभूषित किया गया। आपने अपने जीवन के लगभग पचास वर्ष तक भारत के सैकडो छोटे-बडे क्षेत्रो मे धर्म-प्रचार किया था। अतिम दिनो मे आप देलवाडा मे पांच वर्ष से स्थविरवास में थे। यही पर आपका ईस्वी सन् १९५८ अगस्त की २६ तारीख को सध्या के ६ बजकर ४५ मिनट पर स्वर्गवास हो गया। सचमुच ही आप समूचे जैन समाज के एक अनमोल मोती थे। वर्तमान मे आपके प्रसिद्ध शिष्य श्री अम्बालाल जी महाराज बडे ही दीर्घ द्रष्टा मुनिराज है। आपके पिताजी श्री किशोरीलाल जी तथा माता जी श्री प्यारबाई थी। आप 'थामला ग्राम' के ओसवाल वश के है। वि० स० १९६२ ज्येष्ठ शु० ३ को आपका जन्म हुआ था। वि० म० १९८१ मार्गशीर्ष कृष्णा ७ के दिन मगरवाड मे आपकी दीक्षा हुई थी। इस समय आप ५६ वर्ष के है। श्री मदन मुनिजी जैन सिद्धान्ताचार्य श्री सौभाग्य मुनिजी 'कुमुद' तथा श्री मगन मुनिजी आपके शिष्य है। आपकी सम्प्रदाय को मेवाड सम्प्रदाय अथवा एकलिगदास जी की सम्प्रदाय भी कहते है।

४ पूज्यश्री मनोहरदास जी महाराज

पूज्य श्री धर्मदास जी की पट्टावलियो मे श्री मनोहरदास जी महाराज श्री धर्मदास जी के शिष्य माने गये है। किन्तु मनोहर सम्प्रदाय के मुनिराज उन्हे स्वतत्र क्रियोद्धारक मानते है। आप नागौर के सुप्रसिद्ध ओसवाल जाति के सुराणा वश के अमूल्य रत्न थे। आपका परिवार सब प्रकार से सम्पन्न था। पहिले आप नागौरी लोकागच्छ के प्रसिद्ध यति श्री सदारग जी के पास दीक्षित हुए थे। बाद मे पूज्य श्री धर्मदास जी आदि क्रियोद्धारको के प्रभाव से आप अत्यत आकर्षित हुए। आपके जीवन मे एक दम

परिवर्तन आ गया। यति-परम्परा से पृथक् होकर आप शुद्ध साधु-परम्परा मे दीक्षित हो गए। नागौर की यह अमर ज्योति सारे भारत मे फैल गई।

पूज्य श्री मनोहरदास जी महाराज अपने युग के एक महान् तत्त्वज्ञ विचारक, एवं पवित्र क्रिया-काण्डी मुनिराज थे। ज्ञान तथा क्रिया, आचार और विचार दोनो मे ही आप अनुपम आदर्श थे आपके शिष्य-परिवार का प्रचार अन्य प्रातो के साथ-साथ यमुना पार के क्षेत्रो मे अधिक हुआ था। आपके अनेक शिष्य हुए है। उनमे श्री भागचन्द्र जी का नाम विशेष रूप से आता है। उत्तर-प्रदेश मे बडौत, बिनोली, और काधला आदि क्षेत्रो का उद्धार आपके उपदेशो से ही हुआ था। आपके शिष्य आचार्य श्री सीता राम जी म० हुए। आप भी अपने गुरुदेव के समान ही दृढ सयमी तथा धर्मप्रचारक मुनिराज थे इनके शिष्य श्री आचार्य शिव रामदास जी म० हुए। ये देहली के श्रीमाल थे। आपके अनेक शिष्य हुए। उनमे श्री देवकरण जी, श्री रामकृष्ण जी, पूज्य श्री नूनकरण जी और तपस्वी श्री हरजी मल जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है श्री लूणकरण जी महाराज ने वि० स० १८३५ मार्गशीर्ष कृष्णा १० के दिन पूज्य श्री शिवरामदास जी के पास दीक्षा ग्रहण की थी। आप आगमो के प्रकाण्ड पण्डित थे। आपकी शिष्य-परम्परा इस प्रकार है —

१--आचार्य लूणकरण जी म० २--पूज्य श्री रामसुख जी म०
३--तपस्वी श्री ख्यालीराम जी म० ४--पूज्य श्री मगलसेन जी म०

पूज्य श्री मगलसेनजी म० के बाद यह सम्प्रदाय दो भागो मे बट गई। एक भाग मे पूज्य श्री रघुनाथ जी म० तथा उनके शिष्य ज्ञान चन्द्र जी, प्रशिष्य खुशालचन्द्र जी हुए। दूसरे भाग के आचार्य

श्रीमोतीराम जी हुए। इनके बाद आचार्य पृथ्वीचन्द्र जी हुए। इनके दो शिष्य है। (१) कविरत्न उपाध्याय श्री अमरचन्द्र जी म० (२) सेवाभावी श्री अमोलकचन्द्र जी महाराज। कवि श्री जी के श्री विजय मुनि जी तथा श्री सुरेश मुनि जी ये दो शिष्य-रत्न है।

महामहिम श्री रत्नचन्द्र जी म०

आपका जन्म राजस्थान के जयपुर राज्यान्तर्गत 'तातीजा' नामक ग्राम के गुर्जर(राजपूत) परिवार मे हुआ था। वि० स० १८५० भाद्र मास की कृष्णा चतुर्दशी आपकी जन्म-तिथि मानी जाती है। आपके पिता का नाम गगाराम और माता का नाम सरूपाबाई था। माता-पिता के सस्कारो के कारण बचपन से ही आप सत्सग प्रिय थे। विद्याध्ययन मे आपकी अत्यत अभिरुचि थी। आप एक असाधारण बालक थे। एक दिन आपने जगल मे एक सिंह को गोवत्स पर आक्रमण करते देखा। सिंह ने क्षण के क्षण मे गोवत्स को मार गिराया। यह भयानक दृश्य देखते ही आपकी आँखो के सामने ससार की नश्वरता का सजीव चित्र घूमने लगा। अब आपको वैराग्य हो गया। आप गुरु की खोज मे निकल पडे और एक दिन नारनौल मे परम तपस्वी श्री हरजी मलजी म० जैसे ज्ञानी गुरु आपको मिल गये। माता-पिता की अनुमति मिल जाने पर वि० स १८६१ के भाद्र शुक्ला ६ शुक्रवार के दिन आपने दीक्षा स्वीकार कर ली। अब आपका अध्ययन आरभ हुआ। थोडे ही दिनो मे आप स्वमत तथा परमत के प्रकाण्ड पण्डित हो गये। संस्कृत, प्राकृत, और अपभ्रश आदि भाषाओ का भी आपने प्रचुर ज्ञान प्राप्त कर लिया। आपका व्यक्तित्व बडा ही प्रभावशाली था। आप जहाँ-जहाँ भी गये आपके धर्म-प्रचारो की धूम मच गई। यमुनापार के क्षेत्रो का निर्माण

आपके ही उपदेशो से हुआ था। आपकी अध्यापन शैली भी बडी आकर्षक थी। पजाब के आचार्य अमरसिह जी, महाकवि चन्द्र भान जी, श्री आत्माराम जी (जो बाद मे मूर्तिपूजक सम्प्रदाय मे विजयानन्द सूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए) आदि अनेक सतो तथा श्रावको ने आपके चरणो मे बैठकर ज्ञानाभ्यास किया था। आप स्वर शास्त्र के भी अद्भुत ज्ञानी थे। आप सुन्दर लेखक भी थे। श्री लूणकरण जी के बाद आचार्य तुलसी के पाट पर आपकी इच्छा न होते हुए भी आपको आचार्य स्वीकार कर लिया गया। साहित्य के क्षेत्र मे भी आपकी प्रगति प्रशसनीय रही है। आपने छोटे-बडे अनेक ग्र थो का निर्माण किया था। आपका कविताएँ भी प्राप्त होती हैं। वि० स० १६२१ वैशाख शुक्ला द्वादशी बुधवार के दिन लोहामण्डी आगरा मे आपका समाधिपूर्वक स्वर्गवास हुआ। आपकी शिष्यपरम्परा मे अनेक विद्वान् तपोव्रती सत हुए है। आपकी परम्परा इस प्रकार है —

श्रद्धेय श्री रत्नचन्द्रजी म० के दो शिष्य १ श्री कँवरसेनजी २ श्री विनयचद्रजी। श्री कँवरसेनजी के शिष्य १ श्री श्यामसुखजी २ श्री ऋषिराजजी। श्री ऋषिराजजी के भी दो शिष्य हुये। १ श्री प्यारेलालजी २ श्री श्यामलालजी। श्री श्यामलालजी म० के तीन शिष्य हुए। १ श्री प्रेमचन्दजी, २ श्रीचन्द्रजी ३ श्री हेमचन्दजी म०। श्री प्रेमचन्द्रजी म० के १ श्री कस्तूर-चन्दजी २ श्री कीर्तिचन्द्रजी और श्री उमेशचन्द्रजी म० ये तीन शिष्य हुये। श्रद्धेय श्री रत्नचन्द्रजी म० के द्वितीय शिष्य श्री विनयचन्द्रजी म० के तीन शिष्य, १ श्री चतुरभुजजी, २ श्री चेतनरामजी ३ श्री भरत मुनिजी। श्री भरत मुनि जी म० के १ श्री सुखानन्दजी २. श्री लालचन्द्रजी और, ३. श्री जयसीरामजी म ये तीन शिष्य थे। श्री लालचन्द्रजी म०के १ श्री विमल प्रसादजी २ श्री भजनलालजी और ३. श्री विनयमुनिजी ये तीन शिष्य हुए।

पूज्य श्री मनोहरदास जी की सम्प्रदाय ने समाज को अनेक प्रसिद्ध वक्ता, प्रचारक, विद्वान्, कवि, लेखक तथा त्यागी वैरागी मुनिराज दिये हैं।

प्रवर्त्तक श्री पृथ्वीचन्द्र जी महाराज

आपने पूज्य श्री मोतीराम जी महाराज के पास विक्रम सम्वत् १९५६ मे दीक्षाव्रत स्वीकार किया था। आप बडे ही सरल स्वभावी, शान्तमुद्रा सत हैं। आगम-शास्त्रो का आपने विशेष परिशीलन किया है। ज्ञान तथा क्रिया दोनो का आपके जीवन मे महान् सगम है। सयुक्त प्रात की जनता आपके तप त्याग और पाण्डित्य से विशेष प्रभावित है। आप अपने योग्य गुरु के योग्य शिष्य हैं। शिष्यत्व और गुरुत्व दोनो के ही आप अनुपम आदर्श है। अभिमान तो आपको छू तक नही गया है। विनय और विवेक की आप साकार मूर्ति है। आपके सद्गुणो के कारण ही विक्रम सम्वत् १९८३ मे नारनौल मे आपको समस्त श्री सघ ने आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया था। सादडी सम्मेलन मे श्रमण सघ के सगठन के लिए आपने आचार्य पद का त्याग कर दिया। आपने समाज मे फैलीहुई अनेक बुराइयो का सुधार किया है। वर्तमान मे आप श्री श्रमण-सघ के प्रवर्त्तक पद पर प्रतिष्ठित है।

उपाध्याय कविरत्न श्री अमरचन्द्र जी महाराज

आप श्री पृथ्वीचन्द्र जी महाराज के प्रधान शिष्य है। आगम साहित्य के आप उच्च कोटि के विद्वान् है। आप दार्शनिक सतो की श्रेणी के महान् सत हैं। स्वभाव के बडे ही सरल हैं। आपकी प्रवचन-शैली बडी ही आकर्षक है। साहित्यिकक्षेत्र मे आपने समाज को एक अभूतपूर्व नई दिशा दी है। स्थानकवासी जैन विचार

धारा के सत होते हुए भी आपके विचार पूर्ण रूप से असाम्प्रदायिक है। श्रमण सघ के निर्माण में आप का विशेष योग रहा है सप्रति इस सघ के आप उपाध्याय पद पर विराजमान हैं। आप प्रसिद्ध लेखक, कवि एव प्रवक्ता है। आपका साहित्य ब ा ही मननीय होता है। आपकी कविताएँ उच्च कोटि की होती है। नवीन और प्राचीन को साथ-साथ लेकर चलना आपकी सबसे बडी विशेपता है। आपका शिष्य-परिवार भी साहित्यिक क्षेत्र मे आपके चरण चिह्नो पर चलने का प्रयत्न कर रहा है।

५ पूज्य श्री रामचन्द्र जी महाराज

पूज्य श्री धर्मदास जी की परम्परा मे श्री रामचन्द्र जी महाराज का एक विशेष स्थान है। आप धारा नगरी के प्रसिद्ध गोसाईं जी के शिष्य थे। आपको गोसाईं जी ने बडे प्रयत्न के साथ सस्कृत आदि भाषाओ का अध्ययन कराया था। एक बार पूज्य श्री धर्मदास जी म० धारा नगरी पधारे। आपका उपदेश सुनकर श्री रामचन्द्र जी को वैराग्य हो गया। आपको गोसाईं जी ने बहुत समझाया। अपनी गद्दी के ऐश्वर्य का प्रलोभन भी दिया, पर आपके ऊपर उनका कोई प्रभाव नही पडा। आप अपने दीक्षा-ग्रहण करने के निश्चय पर पूरी तरह से अटल रहे। अत मे गोसाईं जी से आपको दीक्षा की आज्ञा मिल गई। वि० स० १७५४ मे आपने दीक्षा ग्रहण कर ली। इस समय आपकी आयु २० वर्ष की थी। दीक्षित होकर आगम साहित्य का गहन अध्ययन किया। पूर्ण विद्वान् होने पर आप धर्म-प्रचार में लग गए। वि० स० १७८८ मे आप उज्जैन पधारे। यहाँ पेशवा सरकार की माता जी ने आपसे अनेक कठिन श्लोको का अर्थ पूछा। आपने उन्हे बडी ही सीधी सरल भाषा मे अर्थ समझा दिया। माता जी आप पर बडी प्रसन्न हुई। वे आपको कुछ भेट देना चाहती थी, पर

निर्ग्रंथ नियम के कारण आपने लेने मे इन्कार कर दिया। आपको अपने जीवन काल मे अनेक अन्य मतावलम्बियो से सघर्ष करना पडा था। विजय हमेशा आपके ही हाथ मे रही। तत्कालीन महाराजा सिंधिया को आपके प्रति विशेष श्रद्धाभक्ति थी। आपका समस्त जीवन तप-त्याग और वैराग्य का आदर्श था। मालवा प्रात मे आपका विशेष प्रचार रहा था। इसी कारण आपकी शाखा को लोग 'मालवा शाखा' के नाम से पुकारने लगे। आप अपने समय के एक महान् युग-स्रष्टा महापुरुष थे। वि० स० १८०३ मे आपका स्वर्गवास माना जाता है। आप एक युग-प्रधान आचार्य थे। आपके बाद पूज्य माणकचन्द्र जी, श्री जीवराज जी, पृथ्वी चन्द्र जी, बडे अमरचन्द्र जी, केशव जी और श्री मोकमसिंह जी हुए। पूज्य मोकमसिंह जी म० एक दीर्घजीवी सत हुए हैं। आपका जन्म वि० स १८६६ माह शु० ५ मघा नक्षत्र में हुआ था। आपने वि० स १८६० मार्गशीर्ष कृष्णा ६ के दिन भागवती दीक्षा ग्रहण की थी। आपका स्वर्गवास वि० स० १९६१ चैत्र शु० ६ के दिन रात्रि के ग्यारह बजकर दश मिनट पर हुआ माना जाता है। आप बडे ही चमत्कारी सत थे।

पूज्य श्री मोकमसिंह जी के स्वर्गवास के बाद श्री नन्दलाल जी, श्री छोटे अमरचन्द्र जी, चम्पालाल जी और श्री माधवमुनि जी महाराज हुए।

आचार्य श्री माधव मुनि जी महाराज

आप स्थानकवासी श्रमण समाज की एक विरल विभूति थे। ज्ञान के आप अनुपम भण्डार थे। आप अपने युग के त्यागी वर्ग के प्रतिनिधि कवि थे। शास्त्रार्थ-कला मे आपकी विशेष प्रसिद्धि थी। प्रतिपक्षी लोग आपके नाम से ही कांपा करते थे। स्वभाव

के आप बडे ही विनोदप्रिय थे। आपका पाण्डित्य असाधारण था। आपके विषय मे एक अनुश्रुति है कि एक बार आप आगरे मे भगवती सूत्र का व्याखान दे रहे थे। व्याखान मे स्थानीय एक प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित जी भी बैठे थे। पण्डित जी को अपने पाण्डित्य का बडा घमण्ड था। वे जैनियो को नास्तिक कहकर उनको निन्दा किया करते थे। व्याख्यान सुनते २ वे महाराज श्री जी से शास्त्र का नाम पूछ बैठे। 'भगवती' नाम सुन कर पण्डित जी बोले–महाराज! आपका भगवती कन्या और हमारा भागवत वर दोनो का सम्बन्ध बडा ही अच्छा रहेगा। कुशाग्र बुद्धि श्री माधव मुनिजी ने तुरत ही उत्तर दिया–पण्डितजी! सम्बन्ध से तो हमे कोई इन्कार नही है। पर हमारी 'भगवती' तो बडी सुशीला है और आपका भागवत नपु सक है। भला नपु सक को कौन कन्या देगा? सस्कृत मे भागवत शब्द नपु सक लिंग मे होता है। पण्डित जी उत्तर सुनकर चुप हो गए।

आचार्य श्री माधव मुनि जी साधुक्रिया मे बडे ही दृढ थे। उस समय यह कहावत आम प्रसिद्ध थी कि–सौ साधो और एक माधो। आपकी भावपूर्ण कविताएँ आज भी जैन समाज मे बडी श्रद्धा के साथ पढी जाती हैं।

आचार्य श्री माधव मुनि जी म० के बाद श्री ताराचन्द्र जी का नाम आता है। आपने वि० स० १९४६ मे दीक्षा ग्रहण की थी। आप बडे ही सरलात्मा सत थे। प्रसिद्ध सत श्री किशनलाल जी महाराज आपके ही शिष्यरत्न थे।

प्रसिद्ध वक्ता श्री सौभाग्यमल जी महाराज

आप श्री किशनलाल जी महाराज के शिष्यरत्न है। आपका शास्त्रीय ज्ञान बडा ही विशाल है। आपकी प्रवचन-शैली बडी हा

मनोहर है। श्रमण-सगटन के आप प्रबल समर्थक है। आपने अपने उपदेशो से अनेक शिक्षण-सस्थाओ को जन्म दिया है। साहित्य सेवा मे भी आपकी विशेष अभिरुचि है। आपकी अनेक पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है। मालव प्रान्त पर आपका विशेष प्रभाव है। स्वर्गीय शत वधानी प० केवलचन्द्र जी महाराज आपके ही शिष्य थे। जो कि वि० स० २०११ मे रेल के आघात के कारण दुर्घटना के शिकार हो गये।

कविवर्य श्री सूर्यमुनि जी महाराज भी इसी सम्प्रदाय के रत्न है। आप बडे ही सरल स्वभावी मुनिराज है। प्राचीन शास्त्रो मे आपको विशेष प्रेम है। कवि होने के साथ-साथ आप कुशल प्रवक्ता भी हैं। सप्रति आप श्रमण सघ के प्रवर्तको मे है।

यहाँ आकर पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज की परम्परा का सक्षिप्त परिचय समाप्त होता है। इस परिचय मे हमने यथा-शक्य सभी सम्प्रदायो का उल्लेख करने का प्रयत्न किया है। फिर भी प्रमादवश किसी का रह जाना समव है। एतदर्थ हम तत्सम्प्र-दायो अनुयायावर्ग से क्षमा प्रार्थी है।

पूज्य श्री हरजी ऋषिजी की परम्परा

'स्थानकवासी' आध्यात्मिक परम्परा का समाज है। 'चैतन्य वाद' उसका मुख्य विषय है। आत्मा, महात्मा और परमात्मा की त्रिवेणी का यह अद्भुत सगम है। सदा से यह समाज 'अचेतन वाद' के विरुद्ध सघर्ष करता चला आया है। भूतकाल की अनेक शताब्दियो मे इसने 'आत्म-उद्धार' के अनेक अनुपम कार्य किये हैं। शुद्ध व्यवहार और शुद्ध आचार इस पवित्र सस्था का सर्वप्रथम लक्ष्य रहा है। यह आरम्भ से ही विश्वकल्याण की

भावना लेकर चला है, और आज तक अविरल गति मे चला आ रहा है। इसने अपने जीवन मे अनेक क्रांतियां देखी है। अनेक उत्थान पतन के चक्रो मे पार होता हुआ यह वर्तमान तक पहुँचा है। इसके अनुभव अपार है। साधुता के नाम पर होने वाले शिथिलाचार का इसने सदा ही विरोध किया है। यह महावीर भगवान् के धर्मवीरो का सेना का मुख्य केन्द्र है। अनेक सकट आने पर भी इसने अपने कर्तव्य को पूरी दृढता के साथ निभाया है। पूज्य श्री हरजी ऋषिजी महाराज इसी पवित्र समाज के एक प्रसिद्ध क्रियोद्धारक महापुरुष हुए हैं। उनकी परम्परा मे अनेको महापुरुष हुए हैं। जिन का पूरा विवरण उपलब्ध नही हो पाया है। जिन महात्माओ का परिचय मिल सका है उस हो यहाँ देने का प्रयत्न किया जा रहा है।

पूज्य श्री हुक्मीचन्द्र जी महाराज

कोटा सम्प्रदाय के विषय मे सभी विद्वान् एकमत नही हैं। कुछ का मत है कि यह सम्प्रदाय ऋषिसम्प्रदाय के महा प्रभावक पूज्य श्री सोमजी म० के आज्ञानुवर्त्ती श्री परशराम जी महाराज मे निकला है। श्री परशराम जी, श्री केशव जी यति-गच्छ से पृथक् होकर पुन दीक्षित हुए थे। शुद्धसयम लेने के बाद वे पूज्य श्री सोमजी म० की आज्ञा मे विचरने लगे थे। बाद मे उनके तीन शिष्य हुए। (१) श्री खेतसी जी (२) श्री खेमसी जी (३) श्री लोक मल जी महाराज। वि० स० १८१० की वैशाख शु० ५ मगलवार को पचेवर ग्राम मे जो चार सम्प्रदायो का सम्मेलन हुआ था, उसमे पूज्य श्री परशराम जी की परम्परा मे से श्री खेतसी जी म० तथा श्री खेमसी जी म० उपस्थित थे। इस सम्मेलन मे सम्मिलित होने वाले मुनिराजो ने अनेक बोलो की मर्यादाएँ निर्धारित की थी। अनुशासन की दृष्टि से यह सम्मेलन बड़ा ही सफल रहा

था। सयम मार्ग मे शिथिल साधुंवो से इस सम्मेलन मे सभी सम्भोग अलग कर लिए गये थे। साधु मुनिराजो के अतिरिक्त इसमे साध्वी समुदाय भी उपस्थित था। साध्वियो मे महा सती श्री केशर जो महाराज का नाम विशेष रूप से आता है।

प्राचीन परम्परा के इतिहास मे श्री लोकमल जी और खेतसी जी को अलग अलग सम्प्रदायो का उल्लेख मिलता है। श्री लोकमल जी के बाद उनके पाट पर श्री मयाराम जी तथा उनके बाद श्री दौलतराम जी हुए। श्री दौलतराम जी के श्री गोविंदराम जी और श्री लालचन्दजो म० ये दो शिष्य हुए।

दोनो की परम्पराएँ

श्री गोविन्दराम जी म०	श्री लालचन्द्र जी म०
श्री फतेचन्द्र जी म०	पूज्य श्री हुक्मीचन्द्र जी म०
श्री ज्ञानचन्द्र जी म०	पूज्य श्री शिवलाल जी म०
श्री छगनलाल जी म	पूज्य श्री उदयसागर जी म०
श्री रोडमल जी म०	पूज्य श्री चौथमल जी म०
श्री प्रेमराज जी म०	(पूज्य श्री चौथमलजी म० के बाद इस सम्प्रदाय मे दो पूज्य हुये—)
तपस्वी श्री गणेशीलालजी म०	
श्री मिश्रीलालजो म०	
पूज्य श्री श्रीलालजी म०	पूज्य श्री मन्नालालजी म०

पूज्य श्री हुक्मीचन्द्र जी म० की दीक्षा कोटा सम्प्रदाय के प्रसिद्ध मुनिराज श्री लालचन्द्र जी म० के चरणो मे विक्रम सम्वत् १८०९ में हुई थी। आपकी सयम-भावना बडी ही तीव्र थी। शुद्ध तथा कठोर सयम पालन की ओर आपका विशेष ध्यान था। इक्कीस वर्ष तक आप निरन्तर बेले बेले की तपस्या करते रहे थे। रसनाइन्द्रिय पर आपका विशेष नियन्त्रण था आप

भर के लिए आपने सभी मिठाई तथा तली हुई चीजो का त्याग कर दिया था। चाहे गर्मी हो, चाहे कडकडाती सर्दी हो, अधिक-तर आप एक ही चद्दर मे रहते थे। प्रति दिन दो हजार 'नमुन्थुण' पढने का आपका दृढ नियम था। आपके अक्षर बडे ही सुन्दर थे। शास्त्रो की प्रतिलिपियाँ कर के आप सत मुनिराजो को दान दिया करते थे। आपके हाथ की लिखी हुई १६ शास्त्रो की प्रति लिपियाँ आज भी विद्यमान है। आपका स्वर्गवास मध्यभारत के जावद नामक ग्राम मे हुआ था। आपके स्वर्गवास के बाद आपके पद पर आचार्य श्री शिवलाल जी महाराज आये। आप सोलह वर्ष तक आचार्य पद पर रहे। इसके बाद पूज्य श्री उदयसागर जी महाराज आचार्य हुए। आपका जन्म जोधपुर मे हुआ था। विक्रम सम्वत् १८६७ मे आपने दीक्षा ली थी। आचार्य पद पर आने के बाद अनेक वर्षो तक आपने धर्म-प्रचार किया था। अत मे श्री चौथमल जी महाराज को अपना उत्तराधिकार सौंप कर वि० स० १६५४ मे आप स्वर्गवासी हो गए।

श्री चौथमल जी म० केवल तीन वर्ष तक आचार्य पद पर रहे। आपका स्वर्गवास १६५७ मे माना जाता है। आप बडे ही क्रिया-कठोर सत थे। पूज्य श्री उदयसागर जी म० सदा सतो के सन्मुख आपकी उत्कृष्ट क्रिया का उदाहरण रखा करते थे। आपके स्वर्गवास के बाद सम्प्रदाय दो भागो मे विभक्त हो गई। एक भाग के आचार्य श्री श्रीलाल जी म० हुए और दूसरे भाग का पूज्य पद श्री मन्नालाल जी म० को प्राप्त हुआ।

आचार्य श्री श्रीलाल जी के संगठन मे उनके बाद श्रीमज्जैनाचार्य श्री जवाहर लाल जी म० हुए।

श्री जवाहिराचार्य

आपका जन्म थादला शहर मे हुआ था। माता-पिता का बचपन मे ही स्वर्गवास हो जाने के कारण आपका पालन-पोषण मामा के यहाँ हुआ था। आप विशुद्ध बाल ब्रह्मचारी थे। सोलह वर्ष की अवस्था मे आपने सयम व्रत स्वीकार किया था। जैन शास्त्रो के आप प्रकाण्ड विद्वान् थे। आपके व्याख्यान बडे ही तर्क पूर्ण होते थे। 'सूत्र कृताग' पर लिखो हुई आपकी हिन्दी टीका आधुनिक हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि मानी जाती है। लोक मान्य तिलक, महात्मा गांधी, सरदार बल्लभभाई पटेल पण्डित मदन-मोहन मालवीय और कवि श्री नानालाल जी जैसे राष्ट्र के प्रमुख नेताओ ने आपके प्रवचनो से लाभ लिया था। सचमुच आप जैन जगत के सच्चे जवाहर थे। महात्मा गांधीजी ने एकबार ठीक ही कहा था कि —भारत मे दो जवाहर है। एक राजनीति का जवाहर और दूसरा धर्म नीति का जवाहर। आपके प्रवचन बडे ही मार्मिक होते थे।

मारवाड के थली प्रात मे अनेक परीषह सहन करके आपने जिनवाणी का प्रचार किया था। तेरह पथी सम्प्रदाय के 'भ्रम विध्वसन' ग्र थका आपने सद्धर्म मण्डन' ग्र थ बनाकर समुचित उत्तर दिया। तेरह पथी लोग दान दया का विरोध करते है। उनको अनुकम्पा ढालो का आपने मारवाड की लोक भाषा मे ढाले रचकर भोली जनता को भ्रम मे फसने से बचाया। आपका वर्चस्व बडा ही प्रभावशाली था। आप श्रमण समाज का सुदृढ सगठन करना चाहते थे। इसके लिए आपने अनेक प्रयत्न भी किये। आपके अनेक शिष्यो मे श्री गणेशीलालजी म. श्रीघासीलाल जी म व श्री मलजो म के नाम प्रमुख है। श्री घासीलाल जी म०

संस्कृत भाषा के उद्भट विद्वान् है। आपने मूल आगमो पर अनेक सस्कृत टीकाएं लिखी हैं।

पूज्य श्री जवाहर लालजी म० २३ वर्ष तक आचार्य पद पर रहे। विक्रम सम्वत् २००० मे आपका समाधि पूर्वक स्वर्गवास हो गया। आपके बाद सम्प्रदाय का आचार्य पद श्री गणेशीलाल जी म० को मिला। श्रमण सघ का निर्माण होने पर सादडी सम्मेलन मे आपको अखिल भारतीय स्तर पर उपाचार्य पद दिया गया। आप बडे ही साधना प्रधान सत थे। कुछ समय बाद श्रमण सघ विचार धारा से कुछ मत भेद होने के कारण आपने उपाचार्य पद से त्याग पत्र दे दिया। वर्तमान समय मे पूज्य श्री नानालाल जी म० इस परम्परा मे विराजमान है।

आचार्य श्री मन्नालाल जी महाराज

आपका जन्म विक्रम सम्वत् १९२५ मे रतलाम मे हुआ था। आपके पिताजी का नाम श्री अमरचन्द्र जी नागोरी और माताजी का नाम नन्दीबाई था। तेरह वर्ष की छोटी सी आयु मे ही आप ससार से विरक्त हो गये। आपने श्री रत्नचन्द्र जी म० के चरणो मे दीक्षा ग्रहण की थी। वि० स० १९७३ मे आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया। इन दिनो आप जम्बू (काश्मीर) मे विराजमान थे, और आचार्य पद प्रदान उत्सव ब्यावर मे हुआ।

आपका आगम ज्ञान बडा ही विशाल था। प्रश्नो का उत्तर देते समय आप शास्त्रीय प्रसग मे प्रत्येक शास्त्र का अध्ययन, उद्देशक और गाथा सहित प्रमाण देते थे। प्रश्न करने वालो को ऐसा लगता था मानो आपको सारे शास्त्र कठस्थ हो। आपकी श्रुत ज्ञान प्रतिभा असाधारण थी। इसी लिए शास्त्र श्रद्धालु जनता

आपको "शास्त्रीय ज्ञान का समुद्र" मानती थी। संतो के विशिष्ट गुण आपमे विद्यमान थे। आपने मालवा, मेवाड, मारवाड और पंजाब आदि अनेक प्रांतो मे विचरण करके जनता को धर्म ज्ञान दिया था। ५२ वर्ष तक संयम पाल कर वि० स० १९६० मे आप ब्यावर मे स्वर्गवासी हो गए।

प्रतिवादी मानमर्दक श्री नन्दलालजी महाराज

आपका जन्म कनजेडा (मध्यभारत भूतपूर्व होल्कर स्टेट) मे वि० स० १९१२ भाद्रपद शुक्ला ६ के दिन हुआ था, आप जब दो वर्ष के थे तभी आपके पिता श्री रत्नचन्द्रजी व मामा श्रीदेवीलाल जो दिवगत होगए थे, वि स. १९२० मे आपके बड़े भाई श्रीजवाहर लाल जी, श्री होरालाल जी तथा आपकी धर्म निष्ठा माताजी श्री राज कुवर बाइ ने भी दीक्षा ग्रहण करली थी। आप दीक्षा मे अपने दोनो भाइयो से छोटे थे तो भी प्रभाव मे सबसे बडे थे। शास्त्रार्थ कला मे आप निष्णात थे। प्रतिवादी लोग आपका नाम सुन कर ही घबरा जाते थे। आपने अपने जीवन काल मे अनेक शास्त्रार्थ जीते थे। वास्तव मे शास्त्रार्थो मे विजय उनकी जन्म जात बपौती थी। आप अपने समय के बडे ही स्थित प्रज्ञ सत थे। जीवन के अन्तिम दिनो मे आप रतलाम मे स्थिरवास कर रहे थे। यही पर आपका स्वर्गवास हुआ।

आगमज्ञ श्री देवीलाल जी महाराज

आपका जन्म केरी नामक छोटे से गाव मे हुआ था। यह गाव टोंक रियासत मे स्थित है। आपके पिता बोरदियावशी श्री माणकचन्द्र जी थे। आपकी माताजी का नाम शृंगार बाईजी था। पिता, पुत्र और माता इन तीनो भव्यात्माओ ने एक साथ दीक्षा ग्रहण की थी। उस समय आप की आयु केवल ग्यारह वर्ष

की थी। आप आगम साहित्य के विशेष मर्मज्ञ थे ज्ञान और क्रिया मे आप सदा सबसे आगे रहते थे। तेरह पथ सम्प्रदाय के प्रसिद्ध सत श्री शेषमल जी आप से शास्त्रार्थ करके अत मे आपके शिष्य हो गये थे। यही श्री सहस्रमल जी म० आगे चलकर इस सम्प्रदाय के आचार्य पद पर आये।

शास्त्र विशारद पूज्य श्री खूबचन्द्र जी महाराज

आपका जन्मस्थान निम्बाहेडा (टोक) है। आपका जन्म वि० स० १६३० मे हुआ था। आपके पिता का नाम श्री टेकचन्द्र जी और माता का नाम गेदोबाई था। आपकी पत्नी का नाम साकर बाई था। भर यौवन मे आपने अपने प्राप्त वैभव को छोड कर दीक्षा ग्रहण की थी। आपका दीक्षा सम्वत् १६५२ माना जाता है। आपके दीक्षा गुरु त्रिपुटी के महान् सत श्री नन्दलाल जी महाराज थे। आपने सस्कृत, प्राकृत आदि अनेक भाषाओ का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया था। शाति और सरलता की तो आप अप्रतिम प्रतिमा थे। आगम साहित्य के तो आप महारथी थे। वक्ता होने के साथ २ आप राजस्थानी भाषा के उच्च कोटि के कवि भी थे। आपकी रचनाओ मे वैराग्य की विशेष पुट मिलती है। पूज्य श्री मन्नालाल जी म० के स्वर्गवास के बाद आपको वि० स १६६० मे आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया था। अपने आचार्य काल मे आपने अनेक आध्यात्मिक उन्नति के कार्य किये थे। दीर्घकाल तक विशुद्ध सयम व्रत पाल कर अत मे आपका ब्यावर मे स्वर्गवास हो गया। आप समूचे श्वे० स्थानकवासी जैन समाज की एक विरल विभूति थे।

पूज्य श्री सहस्रमलजी महाराज

आपका जन्म विक्रम सम्वत् १६५२ मे मेवाड के बरार ग्राम

में हुआ था। आपके पिता श्री हीरालाल जी बडे ही धर्म श्रद्धालु व्यक्ति थे। श्री सहस्रमलजी ने पहिले तेरह पथ सम्प्रदाय मे दीक्षा ली थी। इस सम्प्रदाय मे आप लगभग सात वर्ष तक रहे थे। शास्त्रमर्मज्ञ प० श्री देवीलाल जी महाराज के आगमानुकूल उपदेशो मे आपकी श्रद्धा तेरह पथ के दया दान विरोधी सिद्धान्तो से हट गई। विक्रम सम्वत् १९७४ मे तेरह पथ का त्याग कर के आप मुनिराज श्री देवीलाल जी म० के शिष्य हो गए। पूज्य श्री खूबचन्द्र जी महाराज के स्वर्गवास के बाद आप उनके पाट पर आचार्य हुए। श्रमण सघ की एकता के लिए बाद मे आपने आचार्य पद को छोड दिया। आप श्रमण सघ के बडे ही विद्वान् और सयम शील मुनिराज थे। आपका स्वर्गवास रूपनगढ (किशनगढ) मे हुआ था।

प्रसिद्धवक्ता जैन दिवाकर श्री चौथमल जी महाराज

स्थानक वासी जैन समाज के मुनिराजो मे श्री जैन दिवाकर जी महाराज का नाम बडी भारी श्रद्धा के साथ लिया जाता है। राजा महाराजो सेठ साहूकारो से लेकर मजदूरो की झोपडियो तक आपकी कल्याण कारिणी वाणी का प्रभाव पहुँचा था। आप वक्ता होने के साथ साथ प्रसिद्ध कवि भी थे। आपकी वक्तृत्व तथा कवित्व शैली बडी ही सरल थी। इस शताब्दी मे आपने जितना प्रचार किया था उसका उदाहरण अन्यत्र मिलना कठिन है। आपने अपने जीवन काल मे बहुत से ग्रन्थो का निर्माण किया था। आपका प्रसिद्ध सकलन निर्ग्रन्थ प्रवचन आज सभी जैन तथा अजैन घरो मे प्रसिद्ध है। आप सगठन के पूर्ण हिमायती थे। आपके पिता श्री गगाराम जी थे। आपके माताजी का नाम श्री मती केशर बाईजी था। आपकी जन्म भूमि नीमच (मालवा) है।

आपका जन्म विक्रम सम्वत् १९३४ कातिक शुक्ला १३ रवि-

वार को हुआ था। विक्रम सम्वत् १९५२ फाल्गुण शु० ५ को दीक्षा व्रत लिया। विक्रम सम्वत् २००७ मार्गशीर्ष शुक्ला नवमी को कोटा मे आपका स्वर्गवास हुआ।

आपके प्रचारो से प्रभावित होकर अनेक महानुभावो ने आपके चरणो मे दीक्षा व्रत स्वीकार किया था। वर्तमान काल के साधुओ मे आपकी शिष्य सम्पदा सर्वाधिक मानी जाती है। आपके शिष्यो मे साहित्य प्रेमी उपाध्याय श्री प्यारचन्द्र जी महाराज का नाम विशेष प्रसिद्ध है। आपने भी अपने गुरुदेव के साहित्य सम्पादन मे विशेष योग दिया था। श्रमण सघ के मुनिराजो मे आपका एक विशिष्ट स्थान था। आप श्रमण सघ के उपाध्याय पद पर विराजमान थे। श्री दिवाकर जी महाराज के सन्तो मे ज्योतिर्विद स्थविर मुनि श्री कस्तूरचन्द जी म०, प्रवर्त्तक मुनि श्री हीरालाल जी म०, तपस्वी वक्ता मुनि श्री लाभचन्द जी म०, प्राभाविक कवि श्री केवल मुनिजी म०, अवधानी मुनि श्री अशोक मुनिजी म०, प मुनि श्री उदय मुनिजी म० के नाम विशेष उल्लेखनीय है।

श्री परशुराम जी महाराज के शिष्य श्री खेतसी जी की परम्परा मे भी अनेक विद्वान् मुनिराज हुए हैं। जिनके शुभ नाम क्रमश इस प्रकार है—श्री खेमशी जी म०, श्री फतहचन्द जी म०, श्री अनोपचन्द जी म०, श्री बलदेव जी म०, श्री चम्पालाल जी म० श्री चुन्नीलाल जी म०, श्री किशनलाल जी म०, श्री बलदेव जी म०, श्री हरिश्चन्द्र जी म० और श्री मांगीलाल जी म०।

स्वर्गीय मुनि श्री राम कुमार जी, प० मुनि श्री जीवराज जी म०, तपस्वी श्री मिश्रीलाल जी म० इस परिवार मे विराजमान हैं। हाडौती, डूगर प्रात और मद्रास प्रात मे आपका विशेष विचरण है।

———

प्रकरण आठवां

साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविका

जैन धर्म मे तीर्थ का विशेष महत्व माना गया है। भारतीय परम्परा मे दो प्रकार के तीर्थ माने जाते है। (१) जङ्गम तीर्थ और (२) स्थावर तीर्थ। वर्तमान काल के दिगम्बर तथा श्वेताम्बर मूर्ति पूजक समाज स्थावर तीर्थों मे विशेष विश्वास रखते हैं। श्वेताम्बर स्थानकवासी समाज स्थावर तीर्थों से आत्मिक लाभ नही मानता। उसका मूल विश्वास जगम तीर्थों मे है। तीर्थ शब्द की परिभाषा से ही यह बात अपने आप स्पष्ट हो जाती है कि कौनसा तीर्थ उपयोगी है और कौनसा अनुपयोगी है? जो ससार सागर से स्वय तिरे और दूसरो की आत्माओ को तिरने की प्रेरणा दे उसे तीर्थ कहते है। यह प्रेरणा हमे जगम तीर्थों से ही मिल सकती है। तीर्थ चार होते है —(१) साधु (२) साध्वी (३) श्रावक और (४) श्राविका। इन्ही चारो का सामूहिक नाम तीर्थ है। इसे आगम मे ' चतुर्विध सघ" भी कहा गया है।

पिछले समय मे जितने भी तीर्थङ्कर भगवान् हुए है, केवल ज्ञान उत्पन्न होने के बाद वे चार तीथ की स्थापना करते आये है। इसीलिए उनका नाम तीर्थङ्कर पड़ा है। अबतक जितने भी तीर्थङ्कर हुए है, सबने इस परम्परा को अपनाया है। और भविष्य मे अपनाते रहेगे।

वर्तमानकाल के अंतिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर के शासन मे जहां गौतम, सुधर्मा और अभय मुनि तथा मेघ मुनि जैसे सयम साधनाशील सत थे, वहां आनन्द, कामदेव और अरणक जैसे श्रावक भी अधिक सख्या मे थे। साध्वियो मे चन्दन बाला आदि ३६ हजार श्रमणिया व श्राविकाओ मे रेवती, जयन्ती सुलसा आदि का विशेष स्थान रहा है। अपने अपने कर्त्तव्य की दृष्टि से सभी के धार्मिक अधिकार समान थे। सघ व्यवस्था मे सबको समान अधिकार प्राप्त थे। आगम मे सघ का समस्त उत्तरदायित्व आचार्य को दिया गया है। वही धार्मिक दृष्टि से सत्ता का विकेन्द्रीकरण करता है। गणतन्त्र व्यवस्था का आरम्भ हमारी गणधर परम्परा से ही हुआ है। साधु-साध्वी, श्रावक और श्राविकाओ के व्यवस्थित जीवन के लिए सघ ने समय समय पर अनेक अभूतपूर्व काम किये हैं। सघ ने जहां सत्ता का दुरुपयोग देखा है वहां से सत्ता को वापिस भी लिया है। जब जब शासन व्यवस्था मे दोष आये है, आसघ ने उनके सुधार के लिये अनेक उचित शास्त्रानुकूल कदम उठाये है। हमारे प्राचीन सघ मे साधुवो के साथ साथ श्रावको के भी महत्वपूर्ण कार्य रहे हैं। सोलहवी शताब्दी मे जब श्रमण परम्परा मे शिथिलाचार ने पूर्ण रूप से प्रवेश पा लिया था, तब धर्म प्राण लोकाशाह जैसे कर्मठ श्रावको ने ही सघ व्यवस्था की सुरक्षा की थी।

वर्तमान काल के श्री सघ मे अनावश्यक रूप से सम्प्रदाय वाद के नाम पर जब पृथक् पृथक् टोले तथा गच्छ बनाये, मेरा गुरु और मेरा शिष्य की ममता साधुवो और श्रावको के मानस मे घुस बैठी तब वाडीलाल, मोतीलाल शाह जैसे कर्मठ श्रावको के सत्प्रयत्न से अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेस की स्थापना की गई। अजमेर के रायसाहब सेठ चांदमल

जी की प्रमुखता मे ईस्वी सन् १९०६ की २६, २७ २८ फरवरी मे कान्फ्रेन्स का प्रथम अधिवेशन समारोह पूर्वक 'मोरबी' मे मनाया गया। इस अधिवेशन मे धर्म तथा समाज के लिए अनेक उपयोगी प्रस्ताव पास किये गये। इस अधिवेशन की बौद्धिक व्यवस्था मे श्री वा० मो० शाह का उत्साह एव कार्य विशेष महत्त्व का रहा था। आपके द्वारा समाज को अखिल भारतीय स्तर पर साधु-सस्था एव श्रावक सघ का विशाल परिचय प्राप्त हुआ। इसके बाद कान्फ्रेंस के जो महत्त्व पूर्ण अधिवेशन हुए उनका सक्षिप्त नामाङ्कन इस प्रकार है —

द्वितीय अधिवेशन
स्थान—रतलाम
तिथि—२७-२८-२९ मार्च १९०८
प्रमुख—श्री केवलचन्द्र जी, त्रिभुवनदास जी
प्रस्ताव—शिक्षा प्रचार एव समाज सगठन

तृतीय अधिवेशन —
स्थान—अजमेर
तिथि—१०-११-१२ मार्च १९०९
प्रमुख—सेठ बालमुकुन्द जी मूथा सतारावाले
प्रस्ताव—नवीन समाज निर्माण, स्कालरशिप व्यवस्था

चतुर्थ अधिवेशन—
स्थान—जालंधर पजाब
तिथि—२७-२८-२९ मार्च १९१०
प्रमुख—श्री उम्मेदमल जी लोढा
प्रस्ताव—जैन ट्रेनिंग कालेज की स्थापना
स्त्री शिक्षा, समाज उन्नति के प्रयत्न

वर्तमानकाल के अंतिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर के शासन मे जहाँ गौतम, सुधर्मा और अभय मुनि तथा मेघ मुनि जैसे सयम साधनाशील सत थे, वहाँ आनन्द, कामदेव और अरणक जैसे श्रावक भी अधिक सख्या मे थे। साध्वियो मे चन्दन बाला आदि ३६ हजार श्रमणिया व श्राविकाओ मे रेवती, जयन्ती सुलसा आदि का विशेष स्थान रहा है। अपने अपने कर्त्तव्य की दृष्टि से सभी के धार्मिक अधिकार सम न थे। सघ व्यवस्था मे सबको समान अधिकार प्राप्त थे। आगम मे सघ का समस्त उत्तरदायित्व आचार्य को दिया गया है। वही धार्मिक दृष्टि से सत्ता का विकेन्द्रीकरण करता है। गणतन्त्र व्यवस्था का आरम्भ हमारी गणधर परम्परा से ही हुआ है। साधु-साध्वी, श्रावक और श्राविकाओ के व्यवस्थित जीवन के लिए सघ ने समय समय पर अनेक अभूतपूर्व काम किये है। सघ ने जहाँ सत्ता का दुरुपयोग देखा है वहाँ से सत्ता को वापिस भी लिया है। जब जब शासन व्यवस्था मे दोष आये है, श्रासघ ने उनके सुधार के लिये अनेक उचित शास्त्रानुकूल कदम उठाये है। हमारे प्राचीन सघ मे साधुवो के साथ साथ श्रावको के भी महत्त्वपूर्ण कार्य रहे है। सोलहवी शताब्दी मे जब श्रमण परम्परा मे शिथिलाचार ने पूर्ण रूप से प्रवेश पा लिया था, तब धर्म प्राण लोकाशाह जैसे कर्मठ श्रावको ने ही सघ व्यवस्था की सुरक्षा की थी।

वर्तमान काल के श्री सघ मे अनावश्यक रूप से सम्प्रदाय वाद के नाम पर जब पृथक् पृथक् टोले तथा गच्छ बनाये, मेरा गुरु और मेरा शिष्य की ममता साधुवो और श्रावको के मानस मे घुस बैठी तब वाडीलाल, मोतीलाल शाह जैसे कर्मठ श्रावको के सत्प्रयत्न से अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेस की स्थापना की गई। अजमेर के रायसाहब सेठ चाँदमल

पारित किये गये। स्था० जैन समाज की पूना बोर्डिंग, स्त्री सहायता कोष, जैन धर्म शिक्षण संस्था तथा साहित्य प्रकाशन विभाग को लगभग एक लाख रुपये की सहायता के प्रस्ताव कार्यान्वित किये गये।

भारत भूषण शतावधानी श्री रत्नचन्द्र जी म०, आचार्य श्री काशीराम जी म० तथा प्रवर्तक श्री ताराचन्द्र जी महाराज ने घाटकोपर बम्बई मे 'वीरसंघ" योजना बनाई थी उस पर पूर्ण रूप से निश्चयात्मक विचार किया गया। साधु साध्वी श्रावक तथा श्राविकाओ के हित के लिए पृथक् पृथक् कमेटियो का निर्माण किया गया।

सम्मेलन के अवसर पर ही अखिल भारतीय श्वे० स्था० जैन युवक परिषद् तथा स्था० जैन महिला परिषद् का भी उत्साहपूर्ण आयोजन किया गया। युवक परिषद् की अध्यक्षता पंजाब के प्रसिद्ध समाज सेवी लाला हरजसराय जी जैन बी० ए० ने की, तथा महिला परिषद् का कार्य श्रीमती नवलबेन हेमचन्द्र भाई रामजी भाई मेहता की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुआ।

इस अधिवेशन के आठ वर्ष बाद सन् १९४९ ता० २४-२५-२६ को ग्यारहवा अधिवेशन बम्बई लेजिस्लेटिव असेम्बली के स्पीकर माननीय श्री कुन्दनमल जी फिरोदिया की अध्यक्षता मे हुआ। इस अधिवेशन का उद्घाटन मद्रास राज्य के मुख्य मन्त्री श्री कुमारस्वामी राजा ने किया था। अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष सेठ मोहन लाल जी चौरडिया मद्रासवाले थे।

इस अधिवेशन मे लगभग १९ प्रस्ताव पास किये गये। जिनमें दिगम्बर, श्वेताम्बर तथा स्थानकवासी एकता, पशु-वध

 तिथि-निर्णय, आगम-प्रकाशन, बाल दीक्षा-विरोध

पाचवा अधिवेशन—

स्थान—सिकदराबाद
तिथि—१२-१३-१४ अप्रेल १६१३
प्रमुख—श्री लक्ष्मणदास जी, मुलतानमल जी श्रीश्रीमाल जलगाव
प्रस्ताव—पिछले प्रस्तावो को कार्य रूप मे देना आदि

इसके बाद कान्फ्रेस की व्यवस्था मे कुछ निरुत्साह सा आ गया। पिछले वर्षो मे उत्पन्न हुआ उत्साह मन्द पड गया। इसके सुधार के लिए ईस्वीसन् १६२४ ता० ७-८-६ मे श्री सेठ मेघजी थोभण की अध्यक्षता मे मलकापुर मे छठा अधिवेशन हुआ। श्री प्रमुख महोदय के आर्थिक सहयोग के वचन से कान्फ्रेस का वातावरण फिर से जागृत एव उत्साहित हो गया। इस सम्मेलन मे अनेक समाजोपयोगी प्रस्ताव पारित किये गये। इसके बाद सातवा बम्बई मे आठवा बीकानेर मे और नववा अधिवेशन अजमेर मे हुआ।

अजमेर का यह सम्मेलन बडा महत्त्वपूर्ण रहा। इसमे कान्फ्रेस को श्रावको के अतिरिक्त साधु सस्था का विश्वास भी प्राप्त हो गया। इस अधिवेशन मे मुनि सघ ऐक्य समिति का निर्माण किया गया, तथा आगामी अजमेर सम्मेलन मे एक बृहत् साधु सम्मेलन करने का सर्व सम्मति से प्रस्ताव पारित किया गया। कान्फ्रेस के सैकडो गण्य मान्य कार्य कर्ता 'बृहत् सम्मेलन' के पवित्र कार्य मे जुट गये। भारत के कोने कोने मे श्रावक तथा सत मुनिराजो की सेवामे आमन्त्रण समिति के द्वारा आमंत्रण भेजे गये। इस कार्य मे श्री दुर्लभजी भाई जवेरी तथा श्री धीरजलाल तुरखिया का विशेष योग दान रहा। भारत भर के वोर पुत्र सत

मुनिराज अजमेर की ओर पधारने लगे। अजमेर एकबार भारतीय जैन जनता का तीर्थ धाम बन गया।

इन दिनो भारत मे स्थानकवासी समाज की लगभग ३० सम्प्रदाये प्रचलित थी। इनमे से २६ सम्प्रदायो के प्रतिनिधि सम्मेलन मे पधारे। भारत के मुनियो की ४६३ की सख्या मे से और साध्वी समाज की ११३२ की संख्या मे से सम्मेलन मे २३८ मुनिराज और ४० महासतियाँ जी पधारी। इनमे ७६ के लगभग प्रतिनिधि मुनिराज थे। यह सम्मेलन ५ अप्रेल १६३३ ईस्वी को प्रारम्भ हुआ और १६-४-३३ को सफलता पूर्वक सम्पूर्ण हुआ।

अजमेर सम्मेलन का महत्त्व

मथुरा तथा वल्लभी के श्रमण सम्मेलनो के बाद अजमेर का यह बृहत् साधु सम्मेलन वर्तमान काल का प्रथम सम्मेलन था। इसमे भारत के कोने कोने से लगभग एक लाख श्रावक तथा श्राविकाएँ मुनिराजो के दर्शनार्थ एकत्रित हुई थी। स्थानकवासी समाज के लिए यह सम्मेलन किसी भी विशाल धार्मिक मेले से कम महत्त्व का नही था। जनता की इस अपार भीड भाड मे कान्फ्रेस ने बडी ही योग्यता से अपना कार्य आरम्भ किया।

आबाल वृद्ध सभी नर नारियो में एक अभूत पूर्व उत्साह था। जो मुनिराज सदियो से "टोलावाद" के कारण पृथक् पृथक् गुटो मे बटे हुए थे, आज एक मच पर आ गए। आपस के मतभेद कुछ कुछ शात हो गए। प्रत्येक साधु और श्रावक के मन मे एकता की लहर उग्र रूप से दौडने लगी। एक दूसरे के समीप आने के लिए सबके हृदय लालायित हो उठे। सभी सम्प्रदायो के लोग अन्य सभी सम्प्रदायो के साधु साध्वियो को वन्दनीय, एवं पूजनीय

मानने लगे। विचार भेद होने पर भी सब साधु सगठन के लिए पूर्ण रूप से उत्सुक थे।

काफी समय से पंजाब में जो पत्री परम्परा का सघर्ष चल रहा था, सम्मेलन मे आकर वह संघर्ष सदा के लिए समाप्त हो गया। आचार्य श्री सोहनलाल जी महाराज ने बडे परिश्रम से एक जैन धर्म तिथि पत्रिका का निर्माण किया था। समाज का एक वर्ग उसे प्रामाणिक नही मानता था। इसी कारण पजाब का साधु वर्ग तथा श्रावक वर्ग दो विचार धाराओ मे बट गया। अजमेर साधु सम्मेलन के निर्णय को मान्यता देकर पूज्य श्री सोहन लाल जी म० ने इस सघर्ष को सदा के लिए समाप्त कर दिया। इसी प्रकार और भी अनेक विवादास्पद विषय सम्मेलन के निःस्वार्थ कार्य कर्ताओ के सत्प्रयत्नो से शात हो गए। पजाब के "अजीवपथी" मुनिराजो का विवाद भी सम्मेलन मे आकर ही समाप्त हुआ। सम्मेलन मे अनेक मूर्धन्य मुनिराजो ने एक आचार्य की छत्र छाया मे मुनिसघ के निर्माण हेतु 'वीरसघ ऐक्य योजना" का सर्वोपयोगी प्रस्ताव भी रखा। किंतु वह अनेक प्रयत्न करने पर भी सफल न हो सका। इस प्रस्ताव का इतना फल तो अवश्य हुआ कि सभी सम्प्रदायो के साधुओ मे आपसी सद्भावना के बीज उदय हो गए। सघ मे एकता की भावना जागृत हो गई।

सम्मेलन के सक्रिय सहयोग से कान्फ्रेस के वातावरण मे एक नया उत्साह आ गया। कान्फ्रेस समस्त श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज के लिए एक विश्वास पात्र सस्था बन गई। इसके बाद कान्फ्रेन्स का दशवा अधिवेशन घाटकोपर बम्बई मे दानवीर सेठ वीरचन्द्र भाई, मेघजी थोभण की अध्यक्षता मे ईस्वी सन् १९४१ मे हुआ। इस अधिवेशन मे अनेक समाजोपयोगी प्रस्ताव

पारित किये गये। स्था० जैन समाज की पूना बोर्डिंग, स्त्री सहायता कोष, जैन धर्म शिक्षण सस्था तथा साहित्य प्रकाशन विभाग को लगभग एक लाख रुपये की सहायता के प्रस्ताव कार्यान्वित किये गये।

भारत भूषण शतावधानी श्री रत्नचन्द्र जी म०, आचार्य श्री काशीराम जी म० तथा प्रवर्तक श्री ताराचन्द्र जी महाराज ने घाटकोपर बम्बई मे 'वीरसघ" योजना बनाई थी उस पर पूर्ण रूप से निश्चयात्मक विचार किया गया। साधु साध्वी, श्रावक तथा श्राविकाओ के हित के लिए पृथक् पृथक् कमेटियो का निर्माण किया गया।

सम्मेलन के अवसर पर ही अखिल भारतीय श्वे० स्था० जैन युवक परिषद् तथा स्था० जैन महिला परिषद् का भी उत्साहपूर्ण आयोजन किया गया। युवक परिषद् की अध्यक्षता पजाब के प्रसिद्ध समाज सेवी लाला हरजसराय जी जैन बी० ए० ने की, तथा महिला परिषद् का कार्य श्रीमती नवलबेन हेमचन्द्र भाई रामजी भाई मेहता की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुआ।

इस अधिवेशन के आठ वर्ष बाद सन् १९४९ ता० २४-२५-२६ को ग्यारहवा अधिवेशन बम्बई लेजिस्लेटिव असेम्बली के स्पीकर माननीय श्री कुन्दनमल जी फिरोदिया की अध्यक्षता मे हुआ। इस अधिवेशन का उद्घाटन मद्रास राज्य के मुख्य मन्त्री श्री कुमारस्वामी राजा ने किया था। अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष सेठ मोहन लाल जी चोरडिया मद्रासवाले थे।

इस अधिवेशन मे लगभग १६ प्रस्ताव पास किये गये। जिनमे दिगम्बर, श्वेताम्बर तथा स्थानकवासी एकता, पशु-वध बन्दी करण, तिथि-निर्णय, आगम-प्रकाशन, बाल दीक्षा-विरोध

और श्राविकाश्रम स्थापना आदि के अतिरिक्त सभी सम्प्रदायों के विलीनीकरण का महा प्रयास किया गया। सभी कार्य कर्ताओ ने सक्रिय प्रयत्नो का सकल्प किया। समाज के आगेवान मुनिराजो एव श्रावको ने इसे सफल बनाने के लिए अपने सहयोग का हार्दिक आश्वासन दिया। श्रमण वर्ग की एकता को अतिम रूप देकर सफल बनाने के लिए बारहवा अधिवेशन सादडी मे करने का निश्चय किया।

सादडी का -महासम्मेलन

यह सम्मेलन स्था० जैन समाज के लिए एक अभूत-पूर्व महान् ऐतिहासिक सम्मेलन था। इसमे भारत के अनेक भागो से लगभग ८५ हजार नर नारी आये थे। अधिवेशन की अध्यक्षता श्रीमान् सेठ चम्पालाल जी बांठिया ने की और उद्घाटन राजस्थान के मुख्य मन्त्री श्री टीकाराम जी पालीवाल ने किया। इस सम्मेलन मे लगभग २२ सम्प्रदायो के प्रतिनिधि मुनिराजो ने भाग लिया। सभी मे एकता की लहर दौड रही थी। सम्मेलन मे उपस्थित त्यागी वर्ग ने सर्व प्रथम एक सविधान का निर्माण किया। जिसके अनुसार नव निर्मित मुनि सघ का नाम " श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण सघ" रखा गया। वैशाख शुक्ला अक्षय तृतीया के दिन यह सम्मेलन आरम्भ हुआ और वैशाख शुक्ला नवमी को सभी महा मुनिराजो ने अपनी पूर्व सम्प्रदायो के पदो का त्याग करके सघ प्रवेश फार्म पर हस्ताक्षर किये। आगम साहित्य के उद्भट विद्वान्, जैन धर्म दिवाकर, आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज को सर्व-सम्मति से अखिल भारतीय स्तर पर प्रधान आचार्य मान लिया गया। शास्त्र विशारद क्रियापात्र मुनिशिरोमणी श्री गणेशीलाल जी महाराज को 'उपाचार्य' नियुक्त किया गया। पूर्ण सोच विचार कर एक मुनि-मन्त्रि-मण्डल का निर्माण कर लिया

गया। व्यवस्था की दृष्टि से मन्त्री-मण्डल को पृथक् पृथक् कार्य सौंप दिया गया। जिसका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है —

१	श्री आनन्दऋषिजी महाराज	प्रायश्चित्त
	श्री हस्तीमलजी महाराज	और
२	श्री सहस्रमलजी महाराज	दीक्षा
३	श्री शुक्लचन्द्रजी महाराज	
	श्री किशनलालजी महाराज	सेवा
४	श्री प्यारचन्द्रजी महाराज	चातुर्मास
	श्री पन्नालालजी महाराज	
५	श्री मोतीलालजी महाराज	विहार
	श्री मिश्रीलालजी म० (मरुधर केशरी)	
६	श्री पृथ्वीचन्द्र जी महाराज	आक्षेप निवारक
	श्री मिश्रीलाल जी म० (मरुधरकेशरी)	
७	श्री हस्तीमल जी महाराज	साहित्य शिक्षण
	श्री पुष्कर मुनि जी महाराज	
८	श्री प्रेमचन्द्र जी महाराज	प्रचार
	श्री फूलचन्द्र जी महाराज	

मुनि मन्त्री-मण्डल ने श्री आनन्दऋषिजी महाराज को प्रधान-मन्त्री तथा श्री हस्तीमलजी म० और श्री प्यारचन्द्रजी महाराज को सहमन्त्री के रूप मे चुना।

कार्य व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए प्रांतो का विभागी-करण भी किया गया।

१ अलवर, भरतपुर, युक्तप्रान्त मन्त्री मुनि श्री पृथ्वीचन्द्र जी म०
२. पंजाब, जंगल प्रदेश „ „ श्री शुक्लचन्द्र जी म०

३ दिल्ली,बांगर,खादर,हरियाणा , „ श्री प्रेमचन्द्र जी म०
४ बीकानेर, स्थलीप्रांत , „ श्री सहस्रमल जी म०
५ मारवाड, गोडवाड , „ श्री मिश्रीमल जो म०
६ अजमेर, मेरवाड, किशनगढ , „ श्री पन्नालाल जो म०
जयपुर टोक माधोपुर आदि
प्रदेश
७ मध्यप्रदेश (सी पी) महाराष्ट्र , „ श्री किशनलाल जी म०
८ मध्यभारत, बम्बई, ग्वालियर , „ श्री प्यारचन्द्र जी म०
कोटा आदि
६ कर्नाटक, मद्रास, आ घ्र, मैसूर , „ श्री फूलचन्द्र जी म०
१० मेवाड, पचमहाल , „ श्री पुष्कर मुनि जी म०
११ गुजरात, काठियावाड केन्द्र व्यवस्था

इसके अतिरिक्त पाठ्यक्रम-निर्माण के लिए श्रमण एव श्रावको को एक सम्मिलित समिति का गठन किया गया। जिसमे सर्व श्री कविरत्न म०, श्री अमरचन्द्रजो म०, सहमन्त्री श्री हस्तीमल जी म० पण्डित श्री श्रीमलजा म०, पण्डित श्री सुशीलकुमार जी म०, प० शोमाचन्द्र जो भारिल्ल, डॉ इन्द्र एम ए , प० पूर्णचन्द्र जी दक, प० श्रीधीरज भाई तुरखिया, और प० श्री बदरीनारायण जो शुक्ल को लिया गया।

समाज के अनेक पौषधर शाला, धर्मस्थानक आदि स्थानो के साथ उनको अपनी अपनी सम्प्रदाय के नाम जुडे हुए थे। इसके लिये निर्णय किया गया कि समाज को समस्त स्थावर सम्पत्ति न होकर "वर्द्धमान स्था जैन श्रावक सघ" की मानी जाय। जो स्थान सघ के अधिकार म न आये, उनमें साधु साध्वी न ठहरे इस निर्णय से समाज का सम्पत्ति विजयक विवाद समाप्त हो गया। धार्मिक क्रियाओ के आराधन के लिए तिथियो का विवाद

भी साम्प्रदायिक मान्यताओ का कारण बना हुआ था। इसके निबटारे के लिए उपाचार्य श्री गणेशीलालजी म, प्रधानमन्त्री श्रीआनन्द ऋषीजी म, सहमन्त्री श्री हस्तीमलजी म., प. श्री शुक्लचन्द्रजी म, प श्री कस्तुरचन्द्रजी म, कविवर्य श्री अमर-चन्द्रजी म, मरुधर केशरी श्री मिश्रीमलजी म, तथा मुनि श्री सुशील कुमारजी म, इन मुनिराजो की एक कमेटी नियुक्त कर दी गई।

सचित्त अचित्त निर्णय समिति

क्या सचित्त है ? और क्या अचित्त है ? इस प्रश्न का समाधान बडा ही जटिल है। इन प्रश्नो की पृष्ठ भूमि मे अनेक साम्प्रदायिक मान्यताएं जुडी हुई है। साम्प्रदायिक मान्यताओ की गुत्थिया आसानी से नही सुलझती। बिजली सचित्त है या अचित्त यह प्रश्न आज भी उसी प्रकार मुह बाये खडा है, जैसा कि पहिले था। यह विज्ञान का युग है। इस युग के कुछ ऐसे भी प्रश्न है जिनका उत्तर केवल साम्प्रदायिक परम्परा के आधार पर ही सही नही माना जा सकता। आज का युग प्रत्येक प्रश्न के उत्तर मे प्रत्यक्ष प्रमाण मागता है। आधुनिक विज्ञान ने अनेक ऐसे प्रश्नो के सप्रमाण उत्तर भी दिये हैं। जैन धर्म एक वैज्ञानिक धर्म होने पर भी इसके त्यागी मुनिराज वैज्ञानिक निर्णयो को स्वीकार नही करते हैं। सचित्त और अचित्त का प्रश्न भी एक वैज्ञानिक प्रश्न है। हम विज्ञान की उपेक्षा करके इन प्रश्नो का उचित समाधान न तो आज तक दे पाये हैं और न दे पायेंगे। इसके लिये हमे स्वतन्त्र रूप से जैनागमो के वैज्ञानिक सिद्धान्तो का अध्ययन करना होगा। तभी भगवान् महावीर की मान्यताओ का हम ठीक प्रकार से जनता में प्रचार कर सकते है। सम्मेलन

मे ऐसे ही अनेक प्रश्नो पर बडी गम्भीरता से सोच विचार किया गया। अत मे इनके निर्णय के लिए भी नौ मुनिराजो की एक समिति नियुक्त कर दी गई। समिति के सदस्यो की नामावली इस प्रकार है।

सर्व श्री आनन्दऋषिजी म०, श्री हस्तीमलजी म०, कवि श्री अमरचन्द्रजी म०, श्री प्रेमचन्द्रजी म०, श्री प्यारचन्द्रजी म० श्री श्रीमलजी म०, श्री मिश्रीमलजी म०, श्री सौभाग्यमलजी म० तथा श्री सुशीलकुमारजी महाराज।

श्रमण सघ मे दीक्षित होनेवाले वैरागी महानुभावो के लिए भी एक प्रस्ताव के द्वारा उद्घोषणा की गई कि भविष्य मे दीक्षा लेनेवाले व्यक्तियो की वय, योग्यता और शिक्षण आदि का उचित निर्णय होने पर प्रधानमन्त्रीश्रीजी की आज्ञा बिना किसी भी दीक्षार्थी को दीक्षा न दी जावे।

प्रस्तुत सम्मेलन और कान्फ्रेंस

सन् १९४८ से श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेस श्रमण सघ के सगठन के लिए जो प्रयत्न कर रही थी, सादडी सम्मेलन मे आकर प्रयत्न सफल हो गया। समस्त जैन समाज के लिए वह दिन कितना सौभाग्य का था जब सारा मुनिसमाज अपनी अपनी साम्प्रदायिक बाडाबन्दियो को त्याग कर एकसूत्र मे गुथ गया। पूरे आठ दिन के इस पवित्र कार्य-क्रम ने सारे समाज की काया पलट करदी। आपसी मत-भेद, फूट और ईर्ष्या के जहरीले कीटाणु सदा के लिए शात हो गए। समाज का मुनि-ऐक्य का स्वप्न आज साकार हो गया। सबके हृदय मे प्रेम, एकता और श्रद्धा की परमभूत भावना व्याप्त हो गई। श्रमण सघ के प्रस्तावो

को पलवाने के लिए ५१ श्रावक सदस्यो की एक समिति निर्वाचित करदी गई। मुनि-सम्मेलन और कान्फ्रेंस अधिवेशन की समस्त कार्यवाही पूर्ण उल्लास के साथ पूर्ण हो गई।

सोजत सम्मेलन

सोजत मारवाड मे विक्रम सम्वत् २०१० माघ कृष्णा तृतीया के दिन पुनः एक लघु सम्मेलन हुआ। इसमे अनेक प्रश्नो पर खुल कर चर्चाएँ हुई। पिछले सादडी सम्मेलन मे अपूर्ण रहे हुए अनेक विषयो पर मुनिराजो ने विचार-विमर्श किया। श्रमण-सघ मे असम्मिलित मुनिराजो के लिए इस सम्मेलन मे विशेष रूप से "मैत्री सम्बन्ध" का प्रस्ताव स्वीकृत किया गया। ध्वनिवर्धक-यन्त्र जैसे विवादास्पद विषयो को आगामी सम्मेलन तक के लिए छोड दिया गया। निश्चित निर्णय होने तक के लिए सभी विवादास्पद वस्तुओ के उपयोग का निषेध कर दिया गया। आगम-मर्मज्ञ श्री समथमलजी महाराज को सघ मे लाने का पूरा प्रयत्न किया गया, परन्तु विचार-भेद होने के कारण इसमे सफलता न मिल-सकी। इतना अवश्य हुआ कि उनके साथ सौहार्द पूर्ण पारस्परिक सम्बन्ध की बात स्वीकार कर ली गई।

भीनासर (बीकानेर) सम्मेलन

यह सम्मेलन विक्रम सम्वत् २०१२ चैत्र कृष्णा द्वितीया को हुआ था। इसमे ५१ प्रतिनिधि मुनि, तथा १३६ अन्य मुनिराज तथा १६६ महासतियाँ जी पधारी थी। इस सम्मेलन का वातावरण भी दर्शनीय था। बीकानेर से भीनासर-सम्मेलन के लिए मुनिराजो एव साध्वियो के विशाल जलूस का दृश्य सचमुच ही अपने रूप मे भव्य था। भगवान् महावीर के शासन के ये सैकडो

"धर्मवीर सैनिक" अपने साधु-गण वेश मे,शिथिलाचार तथा मत अनैक्य को एक खुली चुनौती दे रहे थे। हजारो की सख्या मे उपस्थित हुआ श्रावक तथा श्राविकाओ का जन-समुदाय जय जय कार के गगनभेदी नारो मे अपनी श्रद्धा भक्ति का परिचय दे रहा था।

अपने निश्चित समय पर सम्मेलन का कार्य आरम्भ हुआ। गरम और नरम अनेक प्रकार की चर्चाएँ हुई। इन चर्चाओ मे श्रमण-सघ की भूमिका और भी ठोस हो गई—ध्वनिवर्द्धक यन्त्र के विषय मे एक सर्वसम्मत निर्णय स्वीकार कर लिया गया। सघ-की एकता को दृष्टि मे रखकर विशेप अवस्था मे ध्वनिवर्द्धक यत्र के लिए दण्ड-विधान लागू कर दिया गया। इस प्रस्ताव से नव-युवक समाज मे एक बार नई चेतना आ गई। प्राचीन विचार-धारा के मुनिवरो प्रति उनके मन मे दृढ आस्था जागृत हो गई। सम्मेलन मे सर्व सम्मति मे व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी महाराज को श्रमण सघके प्रधानमत्री पद पर निर्वाचित किया गया और सर्वश्री आनन्दऋषिजी महाराज, कविरत्न श्री अमरचन्दजी महाराज, पण्डितराज श्री हस्तीमलजी महाराज और पण्डित श्री प्यारचन्द्रजी महाराज इन चारो महामुनियो को 'उपाध्याय' पद से विभूषित किया गया। शासन-मगल की पवित्र भावना के साथ मगलमय-वातावरण मे यह मगलमय-सम्मेलन सम्पूर्ण हो गया।

एक बार फिर अजमेर मे

अजमेर का श्रमण सघ के जीवन मे एक विशेष स्थान है। विक्रम सम्वत् १९९० मे यही पर सर्वप्रथम बृहद् मुनि-सम्मेलन हुवा था। इसी सम्मेलन में वर्तमान कालीन मुनिराजो की एकता

का बीज-वपन हुवा था। यह सम्मेलन वास्तव मे सघ-ऐक्य योजना के महान् कार्य का शुभारम्भ हुवा था। ठीक १९ वर्ष के पश्चात् यह एकता का बाज विक्रम स २००९ के सादडी सम्मेलन मे श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण सघ' के रूप मे विकसित हुवा। इस कल्प वृक्ष के बीज-वपन की मूल-भूमि अजमेर ही रही है। उस समय अजमेर सम्मेलन मे ७६ प्रतिनिधि मुनि, २५१ अन्यमुनि तथा ८० साध्वियो ने भाग लिया था। समाज कर्णधारो ने पूर्ण सद्भावना से "एक आचार्य परम्परा" के बीज बोया था। समय समय पर अनेक प्रान्तीय-सम्मेलनो द्वारा इस-एकता की भूमिका को प्रेम सौहार्द, तथा आध्यात्मिक भावना के जल से सीचा गया। फलत एक विशाल-सफल सघनच्छाया-च्छादि महान् वृक्ष आज हमारे सन्मुख है। जिसकी छत्र छाया मे चतुर्विध सघ अपने आत्मोद्धार मे सलग्न है। उस दिन के वातावरण मे कौन कल्पना कर सकता था कि एक युग से ऊसर रही हुई भूमि मे ऐसा आध्यात्मिक वसत भी लहलहा उठेगा। स्थान की दृष्टि से इस सफलता का प्रारम्भिक श्रेय अजमेर को ही प्राप्त हुवा। तब से लेकर अबतक क्रमश अजमेर सादडी, सोजत और भीनासर मे छोटे बडे ४ सम्मेलन हो चुके है। इन सभी सम्मेलनो ने समाज को एक नई चेतना दी है। एक नयी दिशा दी है। इस बार यह पाचवा सम्मेलन वि० स० २०२० फालगुन शुक्ल ३ के दिन फिर अजमेर मे हुवा इससम्मेलन मे मुनिराजो ने बडी दीर्घदर्शिता से काम लिया। पूर्व के निर्वाचित व्यवस्था मण्डल मे एक नवीन सुधार किया गया। इस सम्मेलन मे ९८ सत तथा १४४ महासतियां जी उपस्थित थी।

नवीनता ने प्राचीनता को अपना लिया

नवीनता और प्राचीनता के नामपर आये दिनो समाज मे

अनेक सघर्ष होते हैं। नवीन विचार-धारा के व्यक्ति कुछ प्राचीन परम्पराओ को अनुपयोगी मानते है। उधर प्राचीनता-वाद मे विश्वास रखनेवाले कहते है कि पुराण पुरुषो का आचरण ही अनुकरणीय है। नवीनता के जोश मे प्राचीनता की अवहेलना करना कोरी आत्म प्रवचना है। किसी हद तक ये दोनो ही विचार धाराएँ सत्य है। यदि दोनो विचारो के व्यक्ति कुछ समझ मे काम ले, तो समाज का बहुत कुछ भला हो सकता है। एकान्त-वाद तो झगडे ही उत्पन्न करता है। भगवान् महावीर का मार्ग तो अनेकान्तवाद मे है। ससार मे नया क्या है और पुराना क्या है ? यह एक विचारणीय प्रश्न है। आज जो कुछ भी नवीनता दीख पड रही है, वह हमारी प्राचीनता की ही देन है। आज का नया युवक हमारे कल के वृद्ध प्राचीन पिता से ही उत्पन्न हुआ है। आज से लाखो वर्ष पूर्व हमारे पूर्वज तीर्थङ्कर भगवान् ने जो कुछ तत्त्व निरूपित किये है, वे हमारे लिए सभी प्रकार से ग्राह्य है। उन पर चलना नये और पुराने सभी का कर्त्तव्य है। सभी तीर्थंकरो का उपदेश द्रव्य क्षेत्र काल और भाव के अनुसार एक समान होता है। उसमे सभी कुछ नया होता है और सभी कुछ पुराना।

प्रस्तुत सम्मेलन मे 'मन्त्री' आदि आधुनिक युग शब्दो पर पूरी गम्भीरता से विचार किया गया। अत मे निश्चय हुवा कि साधुवो की व्यवस्था मे मन्त्री पद न रख कर शास्त्रीय पदो का उपयोग किया जाना अत्यन्त आवश्यक तथा मुनिपरम्परा के लिए उपयोगी है। इसी निर्णय के अनुसार 'मन्त्री पदो' को प्रवर्तक के रूप मे बदल दिया गया। प्रवर्तक परिवार का निर्वाचन इस प्रकार हुआ —

(१) प्रवर्तक श्री पृथ्वीचन्द्रजी म०

(२) प्रवर्तक श्री पन्नालालजी म०
(३) ,, श्री सूर्यमुनिजी म०
(४) ,, श्री शुक्लचन्द्रजी म०
(५) ,, श्री लक्ष्मीचन्दजी म०
(६) ,, श्री हीरालालजी म०
(७) ,, श्री मगनमुनिजी म०
(८) ,, श्री अम्बालालजी म०
(९) ,, श्री विनय ऋषिजी महाराज

पिछले सम्मेलन मे निर्वाचित उपाध्यायो मे से प श्री प्यार-चन्द्र जी म० के स्वर्गवास के कारण तथा प्रधान मन्त्री श्री आनन्द-ऋषिजी म० आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने के कारण शेष उपाध्याय द्वय को ही शिक्षण व्यवस्था आदि के लिए उपाध्याय स्वीकार कर लिया गया।

सम्मेलन मे बडा प्रायश्चित्त तथा दीक्षा का अधिकार आचार्यश्री जी को सौप दिया गया। इसके साथ ही प्रवर्तक परि-वार को यह अधिकार दे दिया गया कि यदि व्यवस्था के लिए उन्हे उपप्रवर्तको की आवश्यकता पडे तो वे स्वय इसका चुनाव कर सकते है। एक परामर्श-समिति का भी गठन किया गया जो समय समय पर अपने परामर्शो से सामयिक समस्याओ के समाधान मे सहयोग देती रहेगी। श्रमण सघ विधान के विपरीत आचरण करनेवाले श्रमणो के लिए भी विचार किया गया। साधु तथा साध्वियो के लिए पूर्ण सादगी बरतने का भी निर्णय किया गय।

उपाध्याय कविरत्न श्री अमरचन्द्रजी म० के निर्देशन मे एक इतिहास-निर्माण-योजना-समिति का निर्माण भी किया गया। जो स्थानकवासी समाज का सप्रमाण इतिहास निर्माण

कर सके। इसके अतिरिक्त और भी अनेक श्रमण संघोपयोगी नियम उप नियमो का निर्माण किया गया।

श्रमणी सम्मेलन

भारतीय श्रमण सस्कृति मे श्रमणी-वर्ग का भी एक महत्त्व-पूर्ण स्थान है। धार्मिक अनुष्ठान और धर्म प्रचार मे साध्वी समाज का योगदान सदा से प्रशसनीय रहता आया है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि सदा सर्वदा से श्रमणी-वर्ग की सख्या श्रमण-वर्ग से अधिक रहती आई है। भारत का स्त्री-समाज धार्मिक सामाजिक और राष्ट्रीय कार्यों मे हमेशा पुरुषो के कधो से कधा मिला कर चलता आया है। भगवान् महावीर के शासन मे भी जहा साधु-पुरुषो की सख्या चौदह हजार थी, उस समय साध्वी समाज की सख्या छत्तीस हजार थी। इससे स्पष्ट है कि साध्वियां अपने कर्तव्य-पालन मे कभी भी पीछे नही रही है। इतना होने पर भी श्रमणी-वर्ग का पूर्वकालीन इतिहास अभी तक अन्धकार मे ही पड़ा है, यह बडे ही दुख की बात है। श्रमण वर्ग ने अपने इतिहास के साथ २ यदि श्रमणियो का इतिहास भी सुरक्षित रखा होता तो आज इस बात के कहने की आवश्यकता न पडती। महासती श्री चन्दन बाला जी के बाद कुछ समय तक का श्रमणी इतिहास क्रम-बद्ध मिलता है। आगे चलकर इस धारा का कही भी क्रमिक उल्लेख नही मिलता। प्राचीन इतिहास-से इतना तो स्पष्ट है कि पूर्व काल मे श्रमणो के समान ही श्रमणी वर्ग का भी सुदृढ सगठन था। भले ही उनकी सत्ता श्रमण वर्ग के हाथो मे केन्द्रित रही हो। आज उनके इतिहास को प्रकाश मे लाने की अत्यन्त आवश्यकता है।

अजमेर के इस सम्मेलन मे श्रमणी-सगठन के विचार पर भी

बडी ही तत्परता से विचार किया गया। आर्या चन्दन-बाला के आदर्श को पुन स्थापित करने का महान् विचार सबको अच्छा लगा। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए फाल्गुन शुक्ला तृतीया को मुनि-सम्मेलन के अवसर पर 'श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन चन्दनबाला श्रमणी संघ" की स्थापना का शुभ सकल्प किया गया। यह सकल्प अपने रूप मे बडा ही महत्व-पूर्ण था। इस सकल्प के पीछे कोई अधिकार लिप्सा नही थी। केवल श्रमणी-क्षेत्र के सुव्यस्थित संगठन का ही पवित्र विचार था।

यह सघ' निर्माण का कार्य ६० महासतियो के सामूहिक आय बिल तप के साथ अनुमानत १४४ महासतियो की उपस्थिति मे नो बाल ब्रह्मचारिणी महासतियो के द्वारा "सेवो सिद्ध सदा जयकार" इस प्रार्थना से आरम्भ किया गया। श्रमणी-वर्ग ने अपनी पूर्व-परम्परा के अनुसार अपने समस्त अधिकार आचार्य श्री जी की सेवा मे सौप दिये। नव निर्वाचित श्रमणी सघ ने एक जैन धर्म प्रचारिणी समिति का गठन कर लिया। इस सम्मति की मुख्यनेत्री विदुषी श्री सुमतिकुवर जी म० सर्व सम्मति से स्वीकार कर ली गई। साध्वी-समाज के अध्ययन-अध्यापन-आचार विचार सम्बंधी और अनेक महत्व पुर्ण धाराएँ निश्चित की गई। श्राविका-समाज को सगठित करने के लिए "महिला मण्डल" की योजना स्वीकार की गई।

इस श्रमणी सघ की स्थापना बाल ब्रह्मचारिणी, वयोवृद्धा श्री सोहन कुवर जी म० स्थविरा श्री बालकुवर जी म० बा० ब०—श्री नन्दा जी म०, बा० ब्र० उमरावकुवर जी म० और [illegible] ौभाग कुवर जी म० के नेतृत्व मे कार्यान्वित की [illegible] प्रचारिणी समिति मे २१ महासतियो को प्रतिनिधि

पू

मेल

के रूप मे चुना गया। साध्वी समाज की उन्नति के लिए कुल मिला कर १७ प्रस्ताव पारित किये गए। सबसे बडी विशेषता की बात यह थी कि प्रत्येक प्रस्ताव सवनुमति से सहर्ष स्वीकार किया गया। सभी साध्वियो ने आचार्य श्री जी, उपाध्याय तथ प्रवर्तक वर्ग की आज्ञा तथा अनुमति से अपने कार्य को चलाने का दृढ सकल्प किया।

इस प्रकार आत्म कल्याण के शुभ सकल्पो के साथ या अपने सम्मेलन सानन्द सफल हो गया। मुनिराजो ने अपनी अपनी इच्छित दिशाओ की ओर सुख समाधिपूर्वक विहार कर दिए।